VAC-15

अण्डरस्टैडिंग इण्डिया

Understanding India

इतिहास विभाग ,
समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा
डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी), इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

पाठ्यक्रम सम्पादन

विकास जोशी

इकाई लेखन

इकाई एक : 'भारतीय समाज की विशेषताऐं' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BASO(N)-102 से साभार प्राप्त
इकाई दो : 'भारत में विविधता में एकता ' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BASO(N)-102 से साभार प्राप्त
इकाई तीन : 'भारतीय संस्कृति की विशेषताऐं ' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार प्राप्त
इकाई चार : 'प्राचीन भारतीय कला की विशेषताऐं ' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार प्राप्त
इकाई पांच : 'भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताऐं' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAEC-102 से साभार प्राप्त
इकाई छह : 'आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAEC-102 से साभार प्राप्त
इकाई सात : ' कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BCM-104 से साभार प्राप्त
इकाई आठ : 'भारत में संवैधानिक विकास(1861,1909,1919 तथा 1935 के अधिनियम)'-उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-103 से साभार
इकाई नौ : 'भारतीय संविधान का स्वरुप' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAPS-202 से साभार प्राप्त
इकाई दस : 'स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व'- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAPA-104 से साभार प्राप्त
इकाई ग्यारह: 'आधुनिक भारत में लिंग भेद एवं जाति व्यवस्था' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार प्राप्त
इकाई बारह : 'समकालीन भारत की चुनौतियां' - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-205 से साभार प्राप्त

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक -भारतीय समाज की विशेषताऐं

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 विविधता में एकता

1.2.1 क्षेत्रीय या भौगोलिक विविधता

1.2.2 भाषायी विविधता

1.2.3 प्रजातीय विविधता

1.2.4 धार्मिक विविधता

1.2.5 जातिगत विविधता

1.2.6 सांस्कृतिक विविधता

1.2.7 जनांकिकीय विविधता

1.3 संयुक्त परिवार व्यवस्था

1.4 जाति-व्यवस्था

1.5 अध्यात्मिकता

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

भारत इतना विशाल देश है, जिसमें अनेकों विभिन्नताएं पाई जाती हैं। प्रकृति के विविध रूप जैसे ऊँचे-ऊँचे- पहाड़,महासागर,वन,मरुस्थल व पठार आदि हैं। इस प्रादेशिक व भोगोलिक विविधता वाले विशाल भूखंड पर निवास करने वाला भारतीय समाज, विश्व के अति प्राचीन समाजों में से एक है। सैकडों भाषाओं और बोलियों

का यह देश अनेक आदिवासीयों के सामाजिक जीवन की विचित्रताओं से युक्त है। भारतीय समाज के अध्ययन करने वाले विद्वानों ने भारतीय समाज की प्रमुख संरचनात्मक विशेषताऐं खोजने का प्रयास किया है। एम.एन. श्रीनिवास ने भारतीय सामाजिक संरचना कि प्रमुख विशेषता, इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को बताया है। ड्यूमो ने श्रेणी को भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण माना है। योगेन्द्र सिंह ने भारतीय समाज के प्रमुख संरचनात्मक व परम्परागत चार लक्षण बताये हैं: श्रेणी बेद्र्था, सम्ग्रगवाद (Holism), निरन्तरता (Continuity) तथा लोकातीत्व (transcendence)। प्रस्तुत इकाई में भारतीय समाज की विभिन्न विशेषता पर चर्चा की गई है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज की विभिन्न विशेषताओं के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करना है, ताकि भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं की पूर्ण जानकारी हो सके।

1.2 विविधता में एकता

भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, विविधता में एकता जैसा कि हम जानते हैं कि, भारतीय समाज की विभिन्नता को कई क्षेत्रों में देखा जा सकता है। हमारा देश भूमध्य गोलार्द्ध में स्थित है। उत्तर से दक्षिण तक भारतीय भूमि की लम्बाई 3,214 किलोमीटर और पूरब से पश्चिम तक यह 2,933 किलोमीटर है। इस प्रकार भारत का कुल क्षेत्र 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। भारतीय समाज और संस्कृति में हमें अनेक प्रकार की विविधताओं के दर्शन होते हैं, जिन्हें धर्म, जाति, भाषा, प्रजाति आदि में व्याप्त विभिन्नताओं के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।इन विभिन्नताओं को कुछ मुख्य बिन्दुओं में बाँटकर अब हम उन पर चर्चा करेंगे –

1.2.1 क्षेत्रीय या भौगोलिक विविधता

उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पूर्व में अरूणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक अनेक भौगोलिक विविधतायें हैं। कश्मीर में बहुत ठंड है तो दक्षिण भारतीय क्षेत्र बहुत गर्म है। गंगा का मैदान है जो बहुत उपजाऊ है तथा इसी के किनारे कई प्रमुख राज्य, शहर, सभ्यता और उद्योग विकसित हुए। हिमालयी क्षेत्र में अनेक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल जैसे- बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा गंगा, यमुना, सरयू, बह्मपुत्र आदि नदियों का उद्गम स्थल है। देश के पश्चिम में हिमालय से भी पुरानी अरावली पर्वतमाला है। कहीं रेगिस्तानी भूमि है तो वहीं दक्षिण में पूर्वी और पश्चिमी घाट, नीलगिरी की पहाड़ियाँ भी हैं।यह भौगोलिक विविधता भारत को प्राकृतिक रूप से मिला उपहार है।

1.2.2 भाषायी विविधता

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है, प्राचीन काल से ही भारत में अनेक भाषाओं व बोलियों का प्रचलन रहा है। वर्तमान में भारत में 18 राष्ट्रीय भाषाएँ तथा 1,652 के लगभग बोलियाँ पाई जाती हैं। भारत में रहने वाले लोग इतनी भाषाएँ

व बोलियाँ इसलिए बोलते हैं। क्योंकि, यह उपमहाद्वीप एक लम्बे समय से विविध प्रजातीय समूहों की मंजिल रहा है। भारत में बोली जाने वाली भाषाओं को मुख्य रूप से चार भाषा-परिवारों में बाँटा जा सकता है।

- **ऑस्ट्रिक परिवार**-इसके अन्तर्गत मध्य भारत की जनजातीय-पट्टी की भाषाएँ आती हैं जैसे-संथाल, मुण्डा, हो आदि।
- **द्रावीड़ियन परिवार**-तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, गोंडी, आदि।
- **साइनो-तिब्बतन परिवार**- आमतौर पर उत्तर-पूर्वी भारत की जनजातियाँ।
- **इंडो-यूरोपियन परिवार**-भारत में सबसे अधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषाएँ व बोलियाँ इण्डो आर्य-भाषा परिवार की हैं। जहाँ एक ओर पंजाबी, सिंधी भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं। वहीं दूसरी ओर मराठी, कोंकणी, राजस्थानी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी,उर्दू, छतीसगढ़ी, बंगाली, मैथिली, कुमाउंनी, गढ़वाली जैसी भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं।

भारतीय संविधान की 8 वीं अनुसूची में केवल 18 भाषाएँ ही सूचीबद्ध हैं। यह भाषाएँ असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, सिंधी, हिन्दी, नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 343(2) के रूप में हिन्दी के साथ अंग्रेजी भाषा को भी सरकारी काम-काज की भाषा माना गया। सभी भाषाओं में हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो 2001 की जनगणना के अनुसार सबसे ज्यादा लोग बोलते हैं अर्थात् 248 करोड़।

1.2.3 प्रजातीय विविधता

प्रजाति ऐसे व्यक्ति का समूह है जिनमें त्वचा का रंग, नाक का आकार, बालों के रंग के प्रकार आदि कुछ स्थायी शारीरिक विशेषताएं मौजूद होती हैं। भारत को प्रजातियों का अजायबघर इसीलिए कहा गया है क्योंकि, यहाँ समय-समय पर अनेक बाहरी प्रजातियाँ किसीनकिसी रूप में आती रहीं और उनका एक-दूसरे में मिश्रण होता रहा। भारतीय मानवशास्त्री सर्वेक्षण के अनुसार देश की प्रजातीय स्थिति को सही तरह से समझ पाना कठिन है। प्रजाति व्यक्तियों का ऐसा बड़ा समूह है जिसकी शारीरिक विशेषताओं में बहुत अधिक बदलाव न आकर यह आगे की पीढ़ियों में चलती रहती हैं। संसार में मुख्यतः 3 प्रजातियाँ कॉकेशायड, मंगोलॉयड, नीग्रॉयड पाई जाती हैं। सरल शब्दों में इन्हें हम ऐसे मानव-समूह के नाम से सम्बोधित करते हैं जिनके शरीर का रंग सफेद, पीला तथा काला हो। भारतीय समाज में शुरू से ही द्रविड़ तथा आर्य, प्रजातीय रूप से एक-दूसरे से अलग थे। द्रविड़ों में नीग्रॉयड तथा आर्यों में कॉकेशायड प्रजाति की विशेषताएं अधिक मिलती थीं। बाद में शक, हूण, कुषाण व मंगोलां के आने पर मंगोलॉयड प्रजाति भी यहाँ बढ़ने लगी व धीरे-धीरे यह सभी आपस में इतना घुल-मिल गई कि आज हमें भारत में सभी प्रमुख प्रजातियों के लोग मिल जाते हैं।

1.2.4 धार्मिक विविधता

भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। एक समय तक भारत में एक साथ विश्व के कई धर्म फले-फूले हैं जैसे- हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म, इसाई धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म। यहाँ हिन्दू धर्म के अनेक रूपों तथा सम्प्रदायों के रूप में वैदिक धर्म, पौराणिक धर्म, सनातन धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म, नानक पन्थी, आर्यसमाजी आदि अनेक मतों के मानने वाले अनुयायी मिलते हैं। इस्लाम धर्म में भी शिया और सुन्नी दो मुख्य सम्प्रदाय मिलते हैं। इसी प्रकार सिक्ख धर्म भी नामधारी और निरंकारी में, जैन धर्म दिगम्बर व श्वेतांबर में और बौद्ध धर्म हीनयान व महायान में विभक्त हैं। भारतीय समाज विभिन्न धर्मों तथा मत-मतान्तरों का संगम-स्थल रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है,जहाँ सभी को अपने-अपने धर्म का आचरण व पालन करने की छूट मिली है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में हिन्दू धर्म के अनुयायी सबसे ज्यादा अर्थात् 81.92 प्रतिशत, मुस्लिम धर्म के 12.29 प्रतिशत, इसाई धर्म के 2.16 प्रतिशत, सिक्ख धर्म 2.02 प्रतिशत, बौद्ध धर्म 0.79 प्रतिशत जैन धर्म के 0.40 प्रतिशत तथा अन्य 0.42 प्रतिशत हैं। इस प्रकार सभी धर्मों के लोगों की उपस्थिति को यहाँ देखकर यह कहा जा सकता है कि, देश की धार्मिक संरचना बहुधर्मी है।

1.2.5 जातिगत विविधता

'प्यूपिल ऑफ इण्डिया' के अनुसार भारत में लगभग 4,635 समुदाय हैं। यह भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है, जो और कहीं नहीं पायी जाती। यह व्यक्ति को जन्म के आधार पर एक समूह का सदस्य मान लेता है, जिसके अन्तर्गत समूह अपने सदस्यों के खान-पान, विवाह और व्यवसाय, सामाजिक सम्बन्धों हेतु कुछ प्रतिबन्धों को लागू करता है। आज बाहरी प्रजातियाँ भी हमारी जातियों में ही समाहित हो गई हैं, यह इस व्यवस्था की व्यापकता को ही दर्शाता है। यद्यपि कई विचारकों जैसे के॰ एम॰ पणिक्कर और ईरावती कर्वे ने माना है कि जाति-व्यवस्था ने हिन्दू समाज को खण्ड-खण्ड में बाँट दिया है।

1.2.6 सांस्कृतिक विविधता

भारतीय संस्कृति में हम प्रथाओं, वेश-भूषा, रहन-सहन, परम्पराओं, कलाओं, व्यवहार के ढंग, नैतिक-मूल्यों, धर्म, जातियों आदि के रूप में भिन्नताओं को साफ तौर से देख सकते हैं। उत्तर-भारत की वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन आदि अन्य प्रान्तों यथा दक्षिण, पूर्व व पश्चिम से भिन्न हैं। नगर और गाँवों की संस्कृति अलग है, विभिन्न जातियों के व्यवहार के ढंग, विश्वास अलग हैं। हिन्दुओं में एक विवाह तो मुस्लिमों में बहुपत्नी-प्रथा का चलन है, देवी-देवता भी सबके अलग-अलग हैं। भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 91 संस्कृति क्षेत्र हैं। गाँवों में संयुक्त परिवार प्रथा तथा श्रमपूर्ण जीवन है तो शहरों में एकांकी परिवार है। अतः स्पष्ट है कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक विविधताएँ लिए हैं।

1.2.7 जनांकिकीय विविधता

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 102 करोड़ से अधिक थी जो आज 121 करोड़ तक पहुँच चुकी है। देश के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या में बहुत विविधता मिलती है। उत्तर प्रदेश में जनसंख्या का कुल

16.17 प्रतिशत हिस्सा है तो उत्तर-पूर्वी राज्यों सिक्किम, मिजोरम, अरूणांचल प्रदेश, गोवा, मणिपुर आदि में कुल जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग रहता है। दिल्ली में औसतन 9,294 लोग एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में रहते हैं तो वहीं अरूणांचल प्रदेश में इतने में 13 लोग रहते हैं। साक्षरता की दृष्टि से भारत का अध्ययन करने पर चलता है कि,सबसे कम साक्षरता बिहार में 47 प्रतिशत तथा सबसे अधिक लोग 99.1 प्रतिशत केरल में साक्षर हैं। देश में 6.78 करोड़ के लगभग विभिन्न जनजातियों के लोग रहते हैं जिनकी जीवन शैली बिल्कुल अलग है। कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों की जनसंख्या 47 प्रतिशत है।

बोध प्रश्न 1

i) भारतीय संविधान की 8 वीं अनुसूची में केवल 15 भाषाएँ ही सूचीबद्ध हैं- **सत्य /असत्य**

.....

ii) प्रजाति ऐसे व्यक्ति का समूह है जिनमें त्वचा का रंग, नाक का आकार, बालों के रंग के प्रकार आदि कुछ स्थायी शारीरिक विशेषताएं मौजूद होती हैं। **सत्य /असत्य**

.....

1.3 संयुक्त परिवार व्यवस्था

वे परिवार जिनमें अनेक पीढ़ियों के रक्त संबंधी साथ–साथ रहते हैं, एक साथ भोजन ग्रहण करते हैं व सभी सदस्य द्वारा अर्जित आए आपस में सामन्य रूप से विभाजित करते है व सदस्यों की आवश्यकताओंको पूर्ण करते है उसे सयुंक्त परिवार या विस्तुत परिवार कहा जाता है। प्रारम्भ से ही संयुक्त परिवार व्यवस्था, भारतीय समाज की एक विशिष्ट विशेषता रही है लेकिन समय के साथ साथ ये व्यवस्था भी धूमिल होती जा रही है भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है और कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें अधिक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है इसी आवश्यकता के कारण भारतीय समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था विकसित हुई और आज भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

1.4 जाति व्यवस्था

भारतीय समाज कठोर श्रेणीबद्धता में बधा है। समाज चाहे किसी भी श्रेणी, काल-खण्ड या युग का हो, उसके स्वरूप में असमानता एवम् विभेदीकरण का किसी-न-किसी रूप में पाया जाना एक अनिवार्यता है। सामाजिक विभेदीकरण के अन्तर्गत व्यक्तियों को अनेक वर्गों, भाषा, आयु, सगे-सम्बन्धियों, नातेदारों, लिंग, धर्म, स्थान-विशेष इत्यादि का आधार लेकर अलग किया जाता है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो सामाजिक स्तरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग का जन्म, शिक्षा, व्यवसाय और आय के आधार पर विभाजन किया जाता है।

जाति-व्यवस्था की स्थापना हमारी भारतीय समाज की आधारभूत विशेषता है। भारत में सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया का मूल आधार जहाँ जाति और वर्ग रहे हैं तो वहीं पश्चिमी देशों में केवल वर्ग। भारत में हिन्दू-समाज

प्राचीन समय से ही जाति के आधार पर अनेक श्रेणियों में बँटा रहा है। जाति-व्यवस्था के आने के कारण हमारा समाज समस्तरीय और विषमस्तरीय रूप से अनेक भागों में बँटता चला गया। तुलनात्मक रूप से देखें तो जाति-व्यवस्था के अंतर्गत अनेक श्रेणियों में बँधे समूह वर्ग-व्यवस्था में श्रेणीबद्ध समूहों से कहीं अधिक संख्या में हैं। भारत की वर्तमान सामाजिक संरचना को देखें तो पता चलता है कि, वर्तमान में समाज न केवल जातीय आधार पर बल्कि वर्गीय आधार पर भी स्तरीकृत हो रहा है।

1.5 आध्यात्मिकता

भारतीय समाज की अन्य मुख्य विशेषता धर्म एवं नैतिकता की प्रधानता है धर्म व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलु को नियन्त्रित करता है विश्व के सभी प्रमुख धर्म विधमान है भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। एक समय तक भारत में एक साथ विश्व के कई धर्म फले-फूले हैं जैसे- हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म, इसाई धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म। यहाँ हिन्दू धर्म के अनेक रूपों तथा सम्प्रदायों के रूप में वैदिक धर्म, पौराणिक धर्म, सनातन धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म, नानक पन्थी, आर्यसमाजी आदि अनेक मतों के मानने वाले अनुयायी मिलते हैं। इस्लाम धर्म में भी शिया और सुन्नी दो मुख्य सम्प्रदाय मिलते हैं। इसी प्रकार सिक्ख धर्म भी नामधारी और निरंकारी में, जैन धर्म दिगम्बर व श्वेतांबर में और बौद्ध धर्म हीनयान व महायान में विभक्त है। भारतीय समाज विभिन्न धर्मों तथा मत-मतान्तरों का संगम-स्थल रहा है सभी जीवो के कल्याण एवं दया में विश्वास, परोपकार, सहानुभूति व सहनशीलता आदि विचारों की प्रधानता भारतीय समाज की एक अन्य विशेषता है भारतीय समाज की एक महत्यपूर्ण विशेषता है भारतीय समाज आध्यात्मिक विचारों में विश्वास रखता है जैसे की पुनर्जन्म, आत्मा, पाप, पुण्य, कर्म, धर्म और मोक्ष भारतीय समाज पर धर्म का बहुत गहरा प्रभाव है चाहे कोई भी समुदाय जैसे हिंदू, मुस्लिम, सिख, किसी भी समुदाय को लिया जाये सभी की प्रमुख सामाजिक संस्थाएं धर्म द्वारा प्रभावित होती है।

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने भारतीय समाज की विभिन्न विशेषताओं को स्पष्ट किया है। पहले यह बताया गया है कि भारत में पायी जाने वाली विविधताऐं किन-किन रूपों में विद्यमान हैं, उसके बाद इन सभी विविधताओं के बीच भारतीय समाज में देखी जा सकने वाली एकता की भावना को इन्हीं आधारों पर समझाया गया है। भारत देश में प्राचीन समय से ही अनेक संस्कृतियों, भाषाओं, स्थानों और प्रजातियों के लोगों का आना-जाना बना रहा। कालान्तर में इनमें से कई जातियाँ, संस्कृतियाँ यहीं रच-बस गईं और धीरे-धीरे यहाँ के वातावरण और संस्कृति में एकाकार होकर एक नई मिली-जुली संस्कृति का रूप ले लिया। आज भारत में जो लोग निवास कर रहे हैं, उनकी अलग-अलग बोलियाँ-भाषाऐं हैं, अलग धर्म-संस्कृति है, अलग नस्ल-प्रजातियाँ हैं और भिन्न मान्यताऐं, रिवाज़, प्रथाऐं, मत और विश्वास हैं। परन्तु इतनी भिन्नताओं के होने पर भी यह कहा जा सकता है कि, यह सभी एक भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं, एक ही माला के अलग-अलग फूल हैं जो एक ही धागे में पिरोये हुए हैं।भारत इतना

विशाल देश है, जिसमें विभिन्न भिन्नता पाई जाती हैं। भारत अपनी विविधता में एकता, जाति व्यवस्था, सयुक्त परिवार व्यवस्था, धर्म व आध्यात्मिकता के लिए विश्व भर में जाना जाता हैं।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

विविधता- इसका अर्थ सामूहिक अंतर है। समूहों और संस्कृतियों की विविधता ही विभिन्नता है।

जाति- एक वंशानुगत, अंतर्विवाही प्रस्थिति समूह जिसका एक विशिष्ट पारंपरिक पेशा होता है।

एकता- समाज के सदस्यों को आपस में जोड़कर रखने वाली भावना।

प्रजाति- समान आनुवांशिक और जैविकीय विशेषता वाले मनुष्यों का वह वर्ग जो उन्हें दूसरे वर्ग से अलग करता है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न के उत्तर

i) असत्य

ii) सत्य

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

मुकर्जी,रविन्द्रनाथ,1989, भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।

हसनैन, नदीम,2005, समकालीन भारतीय समाजः एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ।

महाजन एवं महाजन, 1989, सामाजिक संरचना एवं सामाजिक प्रक्रियाएं, शिक्षा सहित्य प्रकाशन, मेरठ।

1.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बोस, एन. के., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाज-संरचना एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान टी. एन.(संपा), 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम. टी., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. "भारतीय समाज में विविधता में एकता पाई जाती है" इस कथन की पुष्टि कीजिये।

2. भारतीय समाज की किन्हीं दो प्रमुख विशेषताओं की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

इकाई दो - भारत में विविधता में एकता

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 भारत में विविधता के रूप

- **2.2.1** क्षेत्रीय या भौगोलिक विविधता
- **2.2.2** भाषायी विविधता
- **2.2.3** प्रजातीय विविधता
- **2.2.4** धार्मिक विविधता
- **2.2.5** जातिगत विविधता
- **2.2.6** सांस्कृतिक विविधता
- **2.2.7** जनांकिकीय विविधता

2.3 भारत में एकता

- **2.3.1** धार्मिक एकता
- **2.3.2** भौगोलिक विविधता में एकता
- **2.3.3** भाषायी एकता
- **2.3.4** प्रजातीय एकता
- **2.3.5** राजनैतिक एकता
- **2.3.6** सांस्कृतिक विविधता में एकता
- **2.3.7** जातिगत एकता
- **2.3.8** ग्रामीण-नगरीय विविधता में एकता

2.4 सारांश

2.5 परिभाषिक शब्दावली

2.6 अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

भारत एक विशाल देश है जिसकी भौगोलिक स्थिति में भारी विविधता और अनेकता दिखाई पड़ती है। अनेक मतों, विचारों, बोलियों, रंग-रूपों, पहनावों और विश्वासों के होते हुए भी आपस में मिल-जुल कर रहते हुए एकता की भावना को प्रकट करना ही विविधता में एकता को दर्शाता है। विविधता में एकता को बताने से पहले यह देखना जरूरी है कि, आखिर भारत में रहने वाले लोग किस प्रकार एक-दूसरे से अलग हैं ?

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपके द्वारा यह समझना संभव होगा:

- भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जैसे धर्म, जाति, भाषा, प्रजाति आदि में विविधताओं को स्पष्ट करना,
- भारत में विविध भौगोलिक क्षेत्रों, धर्मों, जातियों, भाषाओं, और प्रजातिओं आदि में एकता के रूप को स्पष्ट करना।

2.2 भारत में विविधता के रूप

जैसा कि हम जानते हैं कि, भारतीय समाज की विभिन्नता को कई क्षेत्रों में देखा जा सकता है। हमारा देश भूमध्य गोलार्द्ध में स्थित है। उत्तर से दक्षिण तक भारतीय भूमि की लम्बाई 3,214 किलोमीटर और पूरब से पश्चिम तक यह 2,933 किलोमीटर है। इस प्रकार भारत का कुल क्षेत्र 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। भारतीय समाज और संस्कृति में हमें अनेक प्रकार की विविधताओं के दर्शन होते हैं, जिन्हें धर्म, जाति, भाषा, प्रजाति आदि में व्याप्त विभिन्नताओं के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।इन विभिन्नताओं को कुछ मुख्य बिन्दुओं में बाँटकर अब हम उन पर चर्चा करेंगे -

2.2.1 क्षेत्रीय या भौगोलिक विविधता

उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पूर्व में अरूणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक अनेक भौगोलिक विविधतायें हैं। कश्मीर में बहुत ठंड है तो दक्षिण भारतीय क्षेत्र बहुत गर्म है। गंगा का मैदान है जो बहुत उपजाऊ है तथा इसी के किनारे कई प्रमुख राज्य, शहर, सभ्यता और उद्योग विकसित हुए। हिमालयी क्षेत्र में अनेक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल जैसे बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा गंगा, यमुना, सरयू, बह्मपुत्र आदि नदियों का उद्गम स्थल है। देश के पश्चिम में हिमालय से भी पुरानी अरावली पर्वतमाला है। कहीं रेगिस्तानी भूमि है तो वहीं दक्षिण में पूर्वी और पश्चिमी घाट, नीलगिरी की पहाड़ियाँ भी हैं।यह भौगोलिक विविधता भारत को प्राकृतिक रूप से मिला उपहार है।

2.2.2 भाषायी विविधता

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है, प्राचीन काल से ही भारत में अनेक भाषाओं व बोलियों का प्रचलन रहा है। वर्तमान में भारत में 18 राष्ट्रीय भाषाएँ तथा 1,652 के लगभग बोलियाँ पाई जाती हैं। भारत में रहने वाले लोग इतनी भाषाएँ व बोलियाँ इसलिए बोलते हैं। क्योंकि, यह उपमहाद्वीप एक लम्बे समय से विविध प्रजातीय समूहों की मंजिल रहा है। भारत में बोली जाने वाली भाषाओं को मुख्य रूप से चार भाषा-परिवारों में बाँटा जा सकता है।

i)**ऑस्ट्रिक परिवार**-इसके अर्न्तगत मध्य भारत की जनजातीय-पट्टी की भाषाएँ आती हैं जैसे-संथाल, मुण्डा, हो आदि।

ii) **द्रावीड़ियन परिवार**-तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम, गोंडी, आदि।

iii)**साइनो-तिब्बतन परिवार**- आमतौर पर उत्तर-पूर्वी भारत की जनजातियाँ।

iv) **इंडो-यूरोपियन परिवार**-भारत में सबसे अधिक संख्या में बोली जाने वाली भाषाएँ व बोलियाँ इण्डो आर्य-भाषा परिवार की हैं। जहाँ एक ओर पंजाबी, सिंधी भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं वहीं दूसरी ओर मराठी, कोंकणी, राजस्थानी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी-उर्दू, छतीशगढ,बंगाली, मैथिली, कुमाउंनी, गढ़वाली जैसी भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं।

भारतीय संविधान की 8 वीं अनुसूची में केवल 18 भाषाएँ ही सूचीबद्ध हैं। यह भाषाएँ असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, सिंधी, हिन्दी, नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 343(2) के रूप में हिन्दी के साथ अंग्रेजी भाषा को भी सरकारी काम-काज की भाषा माना गया। सभी भाषाओं में हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो 2001 की जनगणना के अनुसार सबसे ज्यादा लोग बोलते हैं अर्थात् 248 करोड़।

2.2.3 प्रजातीय विविधता

प्रजाति ऐसे व्यक्ति का समूह है जिनमें त्वचा का रंग, नाक का आकार, बालों के रंग के प्रकार आदि कुछ स्थायी शारीरिक विशेषताएं मौजूद होती हैं। भारत को प्रजातियों का अजायबघर इसीलिए कहा गया है क्योंकि, यहाँ समय-समय पर अनेक बाहरी प्रजातियाँ किसी-न-किसी रूप में आती रहीं और उनका एक-दूसरे में मिश्रण होता रहा। भारतीय मानवशास्त्री सर्वेक्षण के अनुसार देश की प्रजातीय स्थिति को सही तरह से समझ पाना कठिन है। प्रजाति व्यक्तियों का ऐसा बड़ा समूह है जिसकी शारीरिक विशेषताओं में बहुत अधिक बदलाव न आकर यह आगे की पीढ़ियों में चलती रहती हैं। संसार में मुख्यतः 3 प्रजातियाँ काकेशायड, मंगोलॉयड, नीग्रॉयड पाई जाती हैं। सरल शब्दों में इन्हें हम ऐसे मानव-समूह के नाम से सम्बोधित करते हैं जिनके शरीर का रंग सफेद, पीला तथा काला हो। भारतीय समाज में शुरू से ही द्रविड़ तथा आर्य, प्रजातीय रूप से एक-दूसरे से अलग थे। द्रविड़ों में नीग्रॉयड तथा आर्यों में कॉकेशायड प्रजाति की विशेषताएं अधिक मिलती थीं। बाद में शक, हूण, कुषाण व

मंगोलों के आने पर मंगोलॉयड प्रजाति भी यहाँ बढ़ने लगी व धीरे-धीरे यह सभी आपस में इतना घुल-मिल गईकि, आज हमें भारत में सभी प्रमुख प्रजातियों के लोग मिल जाते हैं।

2.2.4 धार्मिक विविधता

भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। एक समय तक भारत में एक साथ विश्व के कई धर्म फले-फूले हैं जैसे- हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म, इसाई धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म। यहाँ हिन्दू धर्म के अनेक रूपों तथा सम्प्रदायों के रूप में वैदिक धर्म, पौराणिक धर्म, सनातन धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म, नानक पन्थी, आर्यसमाजी आदि अनेक मतों के मानने वाले अनुयायी मिलते हैं। इस्लाम धर्म में भी शिया और सुन्नी दो मुख्य सम्प्रदाय मिलते हैं। इसी प्रकार सिक्ख धर्म भी नामधारी और निरंकारी में, जैन धर्म दिगम्बर व श्वेतांबर में और बौद्ध धर्म हीनयान व महायान में विभक्त है। भारतीय समाज विभिन्न धर्मों तथा मत-मतान्तरों का संगम-स्थल रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है,जहाँ सभी को अपने-अपने धर्म का आचरण व पालन करने की छूट मिली है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में हिन्दू धर्म के अनुयायी सबसे ज्यादा अर्थात् 81.92 प्रतिशत, मुस्लिम धर्म के 12.29 प्रतिशत, इसाई धर्म के 2.16 प्रतिशत, सिक्ख धर्म 2.02 प्रतिशत, बौद्ध धर्म 0.79 प्रतिशत जैन धर्म के 0.40 प्रतिशत तथा अन्य 0.42 प्रतिशत हैं। इस प्रकार सभी धर्मों के लोगों की उपस्थिति को यहाँ देखकर यह कहा जा सकता है कि, देश की धार्मिक संरचना बहुधर्मी है।

2.2.5 जातिगत विविधता

'पीपल ऑफ इण्डिया' के अनुसार भारत में लगभग 4,635 समुदाय हैं। यह भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है जो और कहीं नहीं पायी जाती। यह व्यक्ति को जन्म के आधार पर एक समूह का सदस्य मान लेता है, जिसके अन्तर्गत समूह अपने सदस्यों के खान-पान, विवाह और व्यवसाय, सामाजिक सम्बन्धों हेतु कुछ प्रतिबन्धों को लागू करता है। आज बाहरी प्रजातियाँ भी हमारी जातियों में ही समाहित हो गई हैं, यह इस व्यवस्था की व्यापकता को ही दर्शाता है। यद्यपि कई विचारकों जैसे के॰ एम॰ पणिक्कर और ईरावती कर्वे ने माना है कि जाति-व्यवस्था ने हिन्दू समाज को खण्ड़-खण्ड़ में बाँट दिया है।

2.2.6 सांस्कृतिक विविधता

भारतीय संस्कृति में हम प्रथाओं, वेश-भूषा, रहन-सहन, परम्पराओं, कलाओं, व्यवहार के ढंग, नैतिक-मूल्यों, धर्मों, जातियों आदि के रूप में भिन्नताओं को साफ तौर से देख सकते हैं। उत्तर-भारत की वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन आदि अन्य प्रान्तों यथा दक्षिण, पूर्व व पश्चिम से भिन्न हैं। नगर और गाँवों की संस्कृति अलग है, विभिन्न जातियों के व्यवहार के ढंग, विश्वास अलग हैं। हिन्दुओं में एक विवाह तो मुस्लिमों में बहुपत्नी-प्रथा का चलन है, देवी-देवता भी सबके अलग-अलग हैं। भारतीय मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 91 संस्कृति क्षेत्र हैं। गाँववो में संयुक्त परिवार प्रथा तथा श्रमपूर्ण जीवन है तो शहरों में एकांकी परिवार है। अतः स्पष्ट है कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक विविधताएँ लिए हैं।

2.2.7 जनांकिकीय विविधता

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 102 करोड़ से अधिक थी जो आज 121 करोड़ तक पहुँच चुकी है। देश के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या में बहुत विविधता मिलती है। उत्तर प्रदेश में जनसंख्या का कुल 16.17 प्रतिशत हिस्सा है तो उत्तर-पूर्वी राज्यों सिक्किम, मिजोरम, अरूणांचल प्रदेश, गोवा, मणिपुर आदि में कुल जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग रहता है। दिल्ली में औसतन 9,294 लोग एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में रहते हैं तो वहीं अरूणांचल प्रदेश में इतने में 13 लोग रहते हैं। साक्षरता की दृष्टि से भारत का अध्ययन करने पर चलता है कि,सबसे कम साक्षरता बिहार में 47 प्रतिशत तथा सबसे अधिक लोग 99.1 प्रतिशत केरल में साक्षर हैं। देश में 6.78 करोड़ के लगभग विभिन्न जनजातियों के लोग रहते हैं जिनकी जीवन शैली बिल्कुल अलग है। कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों की जनसंख्या 47 प्रतिशत है।

बोध-प्रश्न-1

I) भारत को प्रजातियों का अजायबघर कहा गया है?उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट कीजिए?

.....
.....
.....
.....
.....

i) भारतीय भाषायी परिवार को कितने भागों में विभक्त किया गया है, यह पाँच पंक्तियों में उल्लेख कीजिए?

.....
.....
.....
.....
.....

2.3 भारत में एकता

भारतीय इतिहास के सभी कालों में देखा गया है कि,भारत में सभी समूहों के लोगों ने पारस्परिक सौहार्द्र को बनाए रखा और एक ऐसी समन्वयकारी संस्कृति को बनाया जो कि, अनेक धर्मों, जातियों, भाषा-भाषी लोगों को आपस में एक धागे में पिरोए रखती है। प्रख्यात मानवशास्त्री हरबर्ट रिज़ले के अनुसार "शारीरिक भिन्नताओं, सामाजिक विभेदों, रीति-रिवाजों और धर्मों की विभिन्नता के बाद भी भारतीय समाज में एक आश्चर्यजनक एकता मौजूद है जिसे हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक आसानी से देखा जा सकता है"। इसका प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति का लचीला दृष्टिकोण है जिसने सभी संस्कृतियों के साथ इतना अच्छा सामंजस्य स्थापित कर लिया कि, वह सभी समय के साथ भारतीय संस्कृति का ही अभिन्न अंग बन गईं। भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में

अनेक भारतीय राजाओं, हिन्दू और मुस्लिम सन्तों तथा समाज सुधारकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही कारण है कि बाहरी तौर पर भले ही इतनी भिन्नताओं के दर्शन होते हैं, पर फिर भी इन सबके बीच भारतीय संस्कृति में एक मौलिक एकता मिलती है, जो कि भारतीय संस्कृति का प्राण मानी जा सकती है। भारतीय संस्कृति और समाज में विविधता में एकता को निम्नलिखित कारकों द्वारा हम यहाँ पर और स्पष्ट करेंगे-

2.3.1धार्मिक विविधता में एकता

भारतीय समाज की यह अनुपम विशेषता है कि, यहां सभी धर्मों के मानने वाले साथ-साथ रहते हैं और एक-दूसरे की विशेषताओं को ग्रहण करते हैं। एक ही स्थान पर मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर, गुरूद्वारा होता है, जहाँ वह अपने धर्मानुसार पूजा करते हैं। सभी धर्मों के लोग होली,दीपावली, बुद्ध-पूर्णिमा, गुरू नानक जयन्ती, ईद, क्रिसमस को मनाते हैं और आपस में मिल-जुल कर साथ-साथ आनन्द लेते हैं। भारत में कुछ ऐसे धर्मस्थल हैं जो पूरे देश को एकता की कड़ी में बाँधते हैं। पूर्व में जगन्नाथपुरी तो पश्चिम में द्वारिका, उत्तर में बद्रीनाथ तो दक्षिण में रामेंश्वरम् भारत की एकता का ठोस प्रमाण है। राम तथा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन पूरे भारत में किया जाता है। ऊपरी तौर पर सभी धर्म भले ही अलग लगें पर सभी की मूल बातें एक ही हैं। सभी धर्म नैतिकता, दया, ईमानदारी, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, सत्य, अहिंसा, अध्यात्म में विश्वास रखते हैं। भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप इसकी एकता का सबसे बड़ा कारण माना जा सकता है।

2.3.2भौगोलिक विविधता में एकता

भारत उष्ण और समशीतोष्ण कटिबन्धों की जलवायु का प्रदेश है। यहाँ एक ही समय पर अलग-अलग भागों में सभी ऋतुओं की जलवायु मिलती है। चेरापूंजी में सालभर लगभग 600‘‘वर्षा होती है तो वहीं राजस्थान के थार-मरूस्थल में 5’’ से भी कम वर्षा होती है। कोई प्रदेश बहुत उपजाऊ है तो कुछ कम, तो कुछ बंजर भी है। परन्तु यह विभिन्नताएं सबको विभिन्न माध्यमों द्वारा आपस में जोड़ती भी हैं। गंगा, यमुना, कावेरी, नर्मदा, गोदावरी देश के अनेक भागों और उनके रहने वालों को आपस में जोड़ती हैं। विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु में उगी वनस्पतियां और खाने का सामान सारे देश में मिलता है। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोग मैदान से आने वाले पदार्थों तथा मैदान के निवासी पहाड़ से आने वाली कई वस्तुओं पर आश्रित हैं। देश की प्राकृतिक सीमाओं ने इसे अन्य देशों से अलग कर एक साथ रहने को प्रेरित किया है।

2.3.3 भाषायी विविधता में एकता

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इसीलिए भारतीय संविधान में 18 भाषाओं को मान्यता दी गई है। इतनी भाषाओं का प्रचलन होते हुए भी उनका मूल संस्कृत भाषा में होने के कारण सभी में एकरूपता पाई जाती है। भारत में वैदिक युग से लेकर ईसा के 400 साल पहले तक संस्कृत ही मुख्य भाषा थी। लगभग 2,200 वर्ष पहले संस्कृत से ही पाली भाषा निकली। हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, असमी, उड़िया तथा पंजाबी भाषाओं को भी संस्कृत का स्थानीय रूप माना गया है। तमिल, तेलुगू, कन्नड़ को भी इसने प्रभावित किया

है। इसी कारण सभी की वर्णमाला लगभग एक-सी ही है। उर्दू भाषा को भी फारसी और संस्कृत का मेंल माना गया है। विलियम के कथनानुसार "भारत में यद्यपि 500 से भी अधिक भाषाएँ और बोलियाँ पाई जाती हैं लेकिन यहाँ का सम्पूर्ण साहित्य, सामाजिक-मूल्य तथा नैतिकता संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य से ही प्रभावित हैं।" भाषा की यही समानता सभी को एकता के सूत्र में बांधे हुये है।

2.3.4 प्रजातीय एकता

भारत में अनेक प्रजातियां आईं तो अवश्य परन्तु अब सभी यहाँ मिश्रित रूप में मिलती हैं। यहाँ उत्तरी भारत में आर्य प्रजाति और दक्षिणी में द्रविड़ प्रजाति की बहुलता है। भारत में संसार की तीन प्रमुख प्रजातियों तथा उनकी उपशाखाओं (सफेद, पीले और काले) के लोग दिखाई देते हैं, जोकि भारत की सभी जगहों में पाए जाते हैं। अतः भारतीय संस्कृति विभिन्न प्रजातीय विशेषताओं से युक्त लोगों के मिश्रित समूह का प्रतिनिधित्व करती है।

2.3.5 राजनैतिक एकता

आजादी के पहले भारत में विभिन्न राज्यों और शासकों का अधिकार था। पर आजादी मिलने के बाद सारा देश एक ही सत्ता के आधीन हुआ और देश में प्रजातन्त्रात्मक शासक का प्रारम्भ हुआ जिसका अर्थ था "जनता का शासन, जनता के द्वारा, जनता के लिए।" विभिन्न प्रान्तों के द्वारा एक भारतीय संघ का निर्माण हुआ है। भारतीय संसद में सभी क्षेत्रों, धर्मों और जातियों के लोगों को प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला है। सरकार द्वारा जो भी कानून बनाया जाता है वह सभी के लिए एक समान होता है। समाज के दुर्बल और निम्न वर्गों के लिए योजना बनाना, महिलाओं के लिए पंचायत में आरक्षण कर एक-तिहाई भाग उनके लिए सुरक्षित करना, विकास योजनाओं को चलाना, यह सब पूरे भारत के लिए किए जाता है। राजनीतिक दृष्टि से भारत एक इकाई है, इस बात को विदेशी आक्रमणों के समय सभी भारतीयों के एक होकर लड़ने ने सही सिद्ध किया है।

2.3.6 सांस्कृतिक विविधता में एकता

भारत के सभी लोग चाहे वह हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, पारसी किसी भी संस्कृति-धर्म के अनुयायी हों, सभी एक ही रंग में रंग गए हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत पूरे देश में रूचिपूर्वक सुना जाता है। उत्तर-भारत में दक्षिण भारतीय भोजन बड़े चाव से खाया जाता है तो दक्षिण में भी उत्तर के व्यंजन प्रसिद्ध हैं। भारतीय कला भी सांस्कृतिक एकता का उदाहरण है। कई मन्दिरों में मस्जिदों की तरह गोलाकार रचना और कई मस्जिदों में मन्दिरों की कला का प्रयोग मिलता है। मुस्लिमों में भी अब एक विवाह प्रचलित होने लगा है। सभी धर्मों के लोगों का आपस में धर्म, खान-पान के तरीकों, वस्त्र-शैली, भाषा एवं साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में व्यवहार और लेन-देन बढ़ा है जिसने सांस्कृतिक एकता को स्थापित किया है।

2.3.7 जातीय विविधता में एकता

भारत में अनेक जातियाँ रहती हैं जिनके अपने अलग आचार-विचार, प्रथाऐं-परम्पराऐं हैं। यह केवल हिन्दुओं में ही नहीं वरन् मुस्लिमों, सिखों, इसाईयों और जैनियों में भी प्रचलित है। एम॰एन॰ श्रीनिवास के अनुसार "एक संस्था के रूप में जाति भारतीयों को एक सामान्य सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति जाति की परिधि में है तथा सभी धार्मिक समूहों में जाति-विभाजन पाया जाता है।''परन्तु यह बात भी सच है कि, सभी समुदायों में जाति-व्यवस्था के मौजूद होते हुए भी जातियों के बीच ऊँच-नीच और सामाजिक पाबन्दियों में बहुत तेजी से ढीलापन आता जा रहा है। यह सामाजिक एकता के लिए बहुत लाभदायक परिवर्तन है।

2.3.8 ग्रामीण-नगरीय विविधता में एकता

गाँव और शहर का जीवन पहले से ही काफी अलग रहा है। जहाँ गावों में अधिकांश लोगों का प्रमुख रोजगार कृषि-कार्य था, परिवारों का स्वरूप संयुक्त था, महिलाओं का जीवन घरेलू कार्यों तक सीमित था तो वहीं नगरों और महानगरों में एक अलग ही प्रकार का माहौल था। नगर में उद्योग-धन्धों के खुलने के कारण यहाँ रोजगार का मुख्य जरिया व्यवसाय, उद्योग और नौकरी था। यह स्थिति काफी समय तक रही। परन्तु आज इसमें कुछ परिवर्तन होने लगा है। अब शहर कच्चे माल और सस्ते श्रम की मांग के चलते तथा लोक-संस्कृति और कला की ओर आर्कषण के कारण गाँवों की ओर देख रहे हैं तथा गाँव की आर्थिक स्थिति में सुधार आने के कारण वह अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए शहर की ओर बढ़ रहा है। इस कारण नगर और गाँव में एकीकरण हो रहा है।

उपरोक्त विवरण से इस बात की सत्यता प्रमाणित होती है कि, भारत में प्राचीन-काल से ही अनेक परस्पर विरोधी संस्कृतियों, सभ्यताओं और प्रजातियों के समूहों का आना-जाना बना रहा। इसी प्रकार यहाँ रहते हुए वह सभी समूह अपने कुछ विचारों, विश्वासों और व्यवहार के साथ कुछ बिन्दुओं पर एकमत हुए और फिर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ भारत का ही एक अभिन्न हिस्सा बन गए। इसकी समकालीन अन्य संस्कृतियां मिट गयीं पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता ने आज भी अपनी निरन्तरता को बनाए रखा है। यह निरन्तरता ही भारतीय संस्कृति और समाज की एकता का मुख्य आधार है। विनोबा भावे जी ने इस उदार और सहिष्णु संस्कृति की विशेषताओं को इस प्रकार कहा है कि, "भारत में अनेक धर्म, भाषाएँ और जातियां हैं। यह महान् भूमि अनेक सामाजिक समूहों का संगम-स्थल रही है। इस प्रकार का महान् दृश्य अन्य कोई देश प्रस्तुत नहीं करता-जहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों के उपासक और भिन्न-भिन्न जाति के लोग एक साथ बस गए हैं। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि सभी लोग भारत को अपना घर, अपना देश मानते हैं।''

बोध-प्रश्न-2

I) निम्न में से कौन सी दशा वर्तमान भारतीय समाज में धार्मिक एकता का वास्तविक आधार है?

1. धर्मनिरपेक्षता
2. लोकतान्त्रिक व्यवस्था

3. विधि का शासन 4. विभिन्न धर्मों के त्यौहार

.....

.....

ii) भारतीय समाज में विविधता के बीच एकता का क्या आशय है? पांच पंक्तियों में अपना उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में पाये जाने वाली विविधताओं को विभिन्न भाषाओं, धर्मों, संस्कृतियों, प्रजातियों, भौगोलिक और जनांकिकीय विशेषताओं के आधार पर स्पष्ट किया है। पहले यह बताया गया है कि भारत में पायी जाने वाली विविधताऐं किन-किन रूपों में विद्यमान हैं, उसके बाद इन सभी विविधताओं के बीच भारतीय समाज में देखी जा सकने वाली एकता की भावना को इन्हीं आधारों पर समझाया गया है। भारत देश में प्राचीन समय से ही अनेक संस्कृतियों, भाषाओं, स्थानों और प्रजातियों के लोगों का आना-जाना बना रहा। कालान्तर में इनमें से कई जातियाँ, संस्कृतियाँ यहीं रच-बस गईं और धीरे-धीरे यहाँ के वातावरण और संस्कृति में एकाकार होकर एक नई मिली-जुली संस्कृति का रूप ले लिया। आज भारत में जो लोग निवास कर रहे हैं, उनकी अलग-अलग बोलियाँ-भाषाऐं हैं, अलग धर्म-संस्कृति है, अलग नस्ल-प्रजातियाँ हैं और भिन्न मान्यताऐं, रिवाज़, प्रथाऐं,, मत और विश्वास हैं। परन्तु इतनी भिन्नताओं के होने पर भी यह कहा जा सकता है कि, यह सभी एक भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं, एक ही माला के अलग-अलग फूल हैं जो एक ही धागे में पिरोये हुए हैं।

2.5 परिभाषिक शब्दावली

विविधता- इसका अर्थ सामूहिक अंतर है। समूहों और संस्कृतियों की विविधता ही विभिन्नता है।

जाति- एक वंशानुगत, अंतर्विवाही प्रस्थिति समूह जिसका एक विशिष्ट पारंपरिक पेशा होता है।

एकता- समाज के सदस्यों को आपस में जोड़कर रखने वाली भावना।

प्रजाति- समान आनुवांशिक और जैविकीय विशेषता वाले मनुष्यों का वह वर्ग जो उन्हें दूसरे वर्ग से अलग करता है।

मत- वह धार्मिक समूह है जो स्थापित धर्म संस्था द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत की व्याख्या से विरोध रख एक सुनिश्चित धारणा के साथ चलना।

2.6 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्न-1

i) विद्यार्थी को इस प्रश्न के उत्तर में प्रजातीय विविधता शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये विवरण को लिखना है।

ii) विद्यार्थी को इस प्रश्न के उत्तर में भाषायी विविधता शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये विवरण को लिखना है।

बोधप्रश्न-2

i)1. धर्मनिरपेक्षता

ii)2.विद्यार्थी को इस प्रश्न के उत्तर में भारत में एकता शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये विवरण को लिखना है।

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

मुकर्जी,रविन्द्रनाथ,1989, भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।

हसनैन, नदीम. 2005. समकालीन भारतीय समाजः एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेन्टर. लखनऊ.

2.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बोस, एन. के., 1967, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

दोषी व जैन, 2009, भारतीय समाज-संरचना एवं परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

मदान, टी. एन.(संपा), 1991, रिलिजन इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मजूमदार एम. टी., 1979, इंडियन रिलीजियस हेरीटेजः ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लि० प्रा० लि०, नई दिल्ली।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1- भारतीय समाज में धार्मिक, प्रजातीय तथा भाषायी विविधताओं की प्रकृति का वर्णन कीजिए।

2- भारतीय समाज विविधता में एकता को प्रदर्शित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।

इकाई तीन : भारतीय संस्कृति की विशेषताएं

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 भारतीय संस्कृति और भौगोलिक परिदृश्य

3.3 समन्वयवादी संस्कृति

3.3.1 भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव

3.4 बहुदेववाद एवं अवतारवाद

3.5 कर्म व पुनर्जन्म का सिद्धान्त

3.6 वर्ण एवं जाति प्रथा

3.7 भाषागत विशेषताएं

3.8 हिन्दू धर्म व संस्कृति

3.9 सारांश

3.10 तकनीकी शब्दावली

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.12 सहायक पाठ्य सामग्री

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

प्रत्येक संस्कृति का विकास एक निश्चित भौगोलिक.आर्थिक परिवेश में होता है। अपने परिवेश से अनुकूलन करने अथवा उसे अपने अनुकूल बनाने और जीवन के लिए आवश्यक सुविधाओं को जुटाने के प्रयास में मानव समुदायों में विशेष प्रकार की जीवन पद्धति का विकास होता है। उनका खान.पान, सन्निवेशों का स्वरूप, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था, संस्थाएं, धारणाएं सब की सब एक निश्चित भौगोलिक परिस्थिति की देन होती हैं। भौगोलिक परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर सभ्यताओं का अवसान होने लगता है अथवा वहां रहने वाले लोग अपने क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों की ओर संक्रमित होने के लिए बाध्य होते हैं। संक्रमण की यह प्रक्रिया सभ्यताओं के अभ्युदय और अवसान दोनों में चलती रहती है। इस संक्रमण या संस्कृतियों के बीच संपर्क के कारण विभिन्न समुदायों की भाषा, धर्म, रीति.रिवाज, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कार्ल सौएर के अनुसार प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र मूलतः एक आर्थिक क्षेत्र होता है और उसका गठन तथा ऐतिहासिक विकास क्षेत्र के भौतिक संसाधनों द्वारा निर्धारित होता है (इंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल साइंसेज , न्यूयॉर्क, 1953, खण्ड 5)। भारतीय भूभाग को देखें तो यह एक विशिष्ट भौगोलिक, प्राकृतिक और उनसे निर्मित सामाजिक.सांस्कृतिक क्षेत्र है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी देश के इतिहास और उसके निवासियों के जीवन को उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां प्रभावित करने वाला कारक होती हैं। यह भूगोल उन निवासियों की शारीरिक बनावट, मानसिक तथा शारीरिक विकास एवं कार्यों, रहन.सहन, रीति.रिवाज, वेश.भूषा, भोजन, उद्योग.धंधे, सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं पर भी प्रभाव डालता है।

3.1 उद्देश्य

पिछले अध्याय में आप संस्कृति के अर्थ और प्रकृति के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहां आप भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का अवगाहन करेंगे। साथ ही अन्य संस्कृतियों के साथ इसके सम्पर्क से होने वाले परस्पर प्रभाव की भी समीक्षा करने में सक्षम होंगे।

सांस्कृतिक परंपराओं पर ऐतिहासिक एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर ही आप भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समुचित ढंग से परिभाषित कर सकेंगे।

आप यह भी समझ पाएंगे कि प्रत्येक संस्कृति में कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जो किसी कालविशेष में किसी भू.भाग के समाज के लिए देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप सम्मिलित किए गए, पर वर्तमान में अप्रासंगिक हो गए हैं। उदाहरण के लिए वर्ण और जाति व्यवस्था एक समय शायद स्वाभाविक थी और आज भारतीय संस्कृति की मानववादी परंपराओं के लिए अनुचित भी है।

आप यह भी समझेंगे कि भारतीय संस्कृति किसी एक धर्म या संप्रदाय की संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अपितु प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान तक इस संस्कृति में विभिन्न धाराओं का समावेश हुआ और इन सभी की विशेषताओं से मिलकर इस बहुरंगी संस्कृति ने जन्म लिया।

3.2 भारतीय संस्कृति और भौगोलिक परिदृश्य

भारत की भौगोलिक परिस्थितियों ने उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समझने से पूर्व आपके लिए भारत की भौगोलिक संरचना को समझना आवश्यक है। उसी के प्रकाश में आप समझ पाएंगे इस विशाल भूभाग में भौगोलिक संरचनात्मक विविधता के साथ ही सांस्कृतिक रूप से भी विविधता दिखाई देती है।

उत्तर में महाहिमालय की विस्तीर्ण पर्वतमालाओं से लेकर दक्षिण के समुद्रतटीय क्षेत्र और पश्चिम में राजस्थान के मरुस्थलीय इलाकों से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक भारतीय संस्कृति में विविधताओं का निदर्शन होता है। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुरूप ही विशिष्ट जीवन पद्धति का विकास किया है। प्रायः सभी आरंभिक सन्निवेशों का विकास उन नदी घाटियों में हुआ जहां जमीन अधिक उपजाऊ थी और सिंचाई तथा आवागमन के साधन सुलभ थे। इसीलिए प्राचीन काल के नागर सन्निवेशों के अवशेष प्रायः इन्हीं क्षेत्रों में मिलते हैं। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ ही अन्य उपजाऊ क्षेत्रों की तलाश में संक्रमण प्रारंभ हुआ। फलतः जिन क्षेत्रों में जमीन अधिक उपजाऊ थी, वहां जनसंख्या का घनत्व अधिक हुआ। दुर्गम एवं भौगोलिक जटिलताओं तथा विषम जलवायु वाले क्षेत्रों में कृषि विस्तार की संभावनाएं काफी कम होने से स्थायी जीवन पद्धति का विकास नहीं हो पाया। उन क्षेत्रों में व्यापार वाणिज्य का अधिक विकास हुआ और प्रव्रजनशीलता बनी रही। इस संचरणशील जीवन की छाया संबन्धित क्षेत्र के लोकगीतों में भी मिलती है। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप ही छोटे और बड़े राज्यों का भी विकास हुआ। समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण वाला भू.भाग यहां सदा से एक इकाई माना जाता रहा। वायु पुराण में उल्लेख है कि---------

''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारत के भूगोल ने उसकी संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित किया है?

3.3 समन्वयवादी संस्कृति

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है इसका समन्वयवाद। ऐतिहासिक कालक्रम में अनेक सभ्य व बर्बर कबीलों ने भी भारत की सीमाएं लांघ कर यहां प्रवेश किया, चाहे वे आक्रान्ता के रूप में आए या व्यापारी के रूप में, यहां के सामाजिक ताने.बाने में अपनी संस्कृति की छाप छोड़ी और स्वयं इसमें विलीन हो गए। भारतीय संस्कृति ने उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों को अंगीकार कर सबको अपने में समाहित कर लिया और हजारों वर्ष पुरानी इस संस्कृति का निरन्तर विकास किया। डी.डी. कोसंबी ने उचित ही कहा है कि ''भारतीय संस्कृति की संभवतः सबसे बड़ी विशेषता है- अपने ही देश में इसकी निरंतरता।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी लिखा है----------

''हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, हेथाय द्रविड़ चीन,
शक, हूण, दल,पाठान, मोगल एकदेहेहलोलीन''

भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार ''भारतीय संस्कृति अन्तहीन विभिन्न जातीय इकाइयों के सुदीर्घ संलयन का प्रतिफलन है। इसके निर्माण में विभिन्न जातियों का अत्यंत विविध, व्यापक और गहन योग रहा है। विश्व संस्कृति को भारत ने जितना दिया है, उतना संभवतः किसी अन्य अकेले राष्ट्र ने नहीं दिया। लेकिन विभिन्न संस्कृतियों की विशेषताओं को आत्मसात भी किया है, चाहे ऑस्ट्रिक, सुमेरी और असुरी, आर्य और ईरानी, यूनानी और शक, कुषाण और आभीरी, गुर्जरी और हूण, इस्लामी और यूरोपीय, प्रायः सभी ने भारत को विचारों का एक नया समुच्चय प्रदान किया।'' जवाहर लाल नेहरू ने रामधारी सिंह दिनकर के ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' की प्रस्तावना में लिखा है कि ''कुछ लोगों ने हिन्दू , मुस्लिम और ईसाई संस्कृति की चर्चा की है। यद्यपि यह सच है कि जातियों और राष्ट्र की संस्कृतियों पर बड़े बड़े धार्मिक आन्दोलनों का असर पड़ा है। भारत की ओर देखने पर मुझे लगता है , जैसा कि दिनकर ने भी जोर देकर दिखलाया है कि भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है और उसका विकास धीरे. धीरे हुआ है। एक ओर इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व मोहनजोदारो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान सभ्यता तक पहुंचता है। दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आए थे। पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर पश्चिम से आने वाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बार.बार प्रभावित हुई। इस प्रकार हमारी संस्कृति ने धीरे.धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया। इस संस्कृति में समन्वयन तथा नए उपकरणों को पचाकर आत्मसात करने की अद्भुत योग्यता थी। जब तक इसका यह गुण शेष रहा , यह संस्कृति जीवित और गतिशील रही। लेकिन बाद में संमन्तों और मठाधीशों के निहित स्वार्थ और और प्रतिद्वन्द्विता के कारण इसकी गतिशीलता जाती रही, जिससे यह जड़ हो गई और उसके सारे पहलू कमजोर पड़ गए। भारत के समग्र इतिहास में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है, जो बाहरी

उपकरणों को पचाकर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है, जो एक बात को दूसरी से अलग करने की प्रवृत्ति बढ़ाती है।''

इस समन्वयवादी संस्कृति के विकास में अनेक प्रजातियों और उनकी संस्कृतियों का संगम रहा है। ईसा पूर्व की दूसरी सहस्राब्दि के मध्य में आक्रमण कर विजय प्राप्त करने वाले आर्य कबीलों का भारतीय सभ्यता पर तीव्र प्रभाव पड़ा। इन्होंने अपने शत्रुओं को दस्यु, अनासा (चपटी नाक वाले), अदेववादी, यज्ञ विरहित, लिंग पूजक तथा दास जैसी उपाधियां दीं। किन्तु शीघ्र ही आर्यों के सामाजिक ढांचे में द्रविड़ सभ्यता के प्रभाव से तेजी से परिवर्तन हुआ। कालान्तर में हम देखते हैं कि आर्यों ने सिन्धु सभ्यता की अनेक विशेषताओं को अपना लिया। दिनकर के अनुसार '' इस भारत ने केवल उन्हें ही नहीं पचाया, जो आर्यों के बाद आए थे, उसने आर्यों को भी पचाकर उन्हें प्राग्वैदिक भारत का अंग बना दिया।'' वे आगे लिखते हैं ''अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दें, तब भी इस देश में एक के बाद एक कम से कम ग्यारह प्रजातियों के आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है।.....नीग्रो, ऑस्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल और मुस्लिम आक्रमण के पूर्व आने वाले तुर्क इन सभी जातियों के लोग कई झुण्डों में इस देश में आए और हिन्दू समाज में दाखिल होकर सब के सब उसके अंग हो गए।'' .कर्मकांड की जटिलता और बहुलता और ब्राह्मण वर्ग के सामाजिक जीवन पर हावी हो जाने के कारण तत्कालीन धार्मिक परंपराओं के भीतर से ही उसके विरुद्ध एक प्रचंड सांस्कृतिक विद्रोह उठा, जिसे एक प्रकार से शास्त्रीय परंपराओं के विरुद्ध लोक परंपराओं का विद्रोह भी कहा जा सकता है। इस विद्रोह ने धार्मिक उपासना का सरलीकरण किया। वेदों की सर्वाच्चता को नकारा, धार्मिक भाषा के रूप में संस्कृत के स्थान पर जनभाषाओं को महत्व दिया। वेदों की सत्ता को नकारने के कारण इन्हें नास्तिक परंपरा भी कहा जाता हैं। इनमें बौद्ध और जैन धर्म प्रमुख हैं। कालान्तर में ब्राह्मण परंपरा ने बुद्ध को अवतार मान लिया और धीरे.धीरे बौद्ध धर्म भी कुछ नये देवरूपों और स्मारकों का योगदान दे कर ब्राह्मण परंपरा में ही समा गया।

उत्तरी क्षेत्र की भौगोलिक दुर्गमता के कारण आर्यों के बाद बाहर से आव्रजन करने वाले लोग इस्लाम की तरह की किसी विशिष्ट धार्मिक परंपरा से जुड़े नहीं थे और वे कालान्तर में भारतीय संस्कृति में ही विलीन हो गये। सिथियन और हूण तथा उसके बाद भारत आने वाली कुछ अन्य जातियों के लोग राजपूतों की शाखाओं में शामिल हो गए। इस सम्मिलन से एक ओर विचारों और सिद्धांतों में उसने उदार होने का दावा किया, तो दूसरी ओर जाति प्रथा, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं के चलते संकीर्णता में भी वृद्धि हुई। इस प्रकार न केवल मध्य एशिया के खानाबदोशों ने ,जिनके पास अपनी कोई सामाजिक व्यवस्था या सभ्यता न थी, भारत में प्रवेश किया और भारतीय जीवन को प्रभावित किया, ईसाई जीवन दर्शन और विश्वासों वाले लोग भी आए और इस देश में बस गए। दिनकर के मतानुसार''यहां तक कि इस्लाम जो अपने को स्वतंत्र रखने का मंसूबा लेकर चला था, वह भी भारत में आकर कुछ परिवर्तित हो गया। यद्यपि भारतीय मुसलमान धर्म के मामले में अपनी सत्ता को स्वतंत्र रखने में बहुत दूर तक कामयाब हुए, लेकिन संस्कृति की दृष्टि से वे भी अब भारतीय हैं।''

3.3.1 भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव

भारत में आकर बसने तथा यायावर जीवन का परित्याग करने के साथ ही आर्यों ने ऋग्वेद में दूसरे देशों के जो साहित्यिक और सांस्कृतिक शब्द सम्मिलित किए, उससे उनकी संस्कृति के समन्वित होने के संकेत मिलते हैं। भगवत शरण उपाध्याय के विवेचन से ज्ञात होता है कि विभिन्न परंपराएं जैसे शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित जल प्रलय की कहानी असुर जाति के जरिए सुमेरी परंपरा से ली गई। असुर जाति जिसने ईराक में फरात और दजला के ऊपरी भागों के अपने आवासों से निकल कर साम्राज्य विस्तार किया, ने वास्तुकला तथा विभिन्न ललित कलाओं के क्षेत्र में प्राचीन भारत को प्रभावित किया। महाभारत तथा पुराणों में असुर मय की चर्चा आचार्य और असाधारण वास्तुकार के रूप में हुई है। असुर, फिनीशियन, सुमेरी आदि के साथ व्यापारिक आदान.प्रदान से आर्थिक क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। भारत और ईरान के संबन्ध भी अत्यंत प्राचीन रहे। समान उपासना शब्द बहुत अधिक संख्या में ऋग्वेद में प्रयुक्त हुए हैं। उन्होंने ही पश्चिम में प्राचीन यूनानियों से लेकर पूर्व में शायद भारतीयों तक फैले आर्य कबीलों को वर्णमाला दी। इस संपर्क ने न केवल व्यापारिक क्षेत्र को बल्कि शासन पद्धति को भी प्रभावित किया। द्रविड़ों की अनसिली पोशाकें, धोती और दुपट्टा जैसी पोशाकों ने आर्यों की व्यक्तिगत ऊनी पोशाकों को समृद्ध किया। परवर्ती युगों में ईरानी पद्धति ने न केवल कला एवं वास्तुकला के क्षेत्र में अपितु दरबारी रस्मों , दायें से बायें लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि, शिलालेखों एवं स्तंभों पर आलेखों के अंकन में भी भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। एशिया में मिस्र से लेकर पाटलिपुत्र तक चार हजार ईसापूर्व से लेकर तीसरी सदी ई. पू. तक मिस्र.सुमेरिया, असुरिया.फारस, फारस.भारत की कड़ी अविच्छिन्न बनी रही। वास्तुकला के क्षेत्र में स्तूप सुमेर और बाबुल के जग्गुरत तथा मिस्र के पिरामिड और मिनारा आदि में खोद कर निकाले गए मकबरे उन स्तूपों के पर्ववर्ती नमूने थे, जो गांधार, पश्चिमी पंजाब और सिंध में ईरानी प्रभुत्व के समय बने थे। मूर्तिकला के क्षेत्र में और भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। कनिष्क ने अपने सिक्कों में फारस के देवी. देवताओं के नामों का उल्लेख किया। जन्म कुण्डली के लिए संस्कृत में कोई शब्द नहीं है, भारतीय ज्योतिषि इसके लिए होड़ाचक्र का प्रयोग करते थे जो यूनानी शब्द होरस(सूर्य देवता) से बना है। सिकन्दर के अभियान के बाद भारतीय.यूनानी, भारतीय.पह्लव, शक और कुषाणों ने यहां की राजनीति, सामाजिक आचार. व्यवहार तथा दर्शन एवं विचारों , खगोल विद्या, कला, सिक्के ढालने की कला, भारतीय शब्दावली (जैसे यवनिका) पर गहरा प्रभाव डाला। ज्योतिष में यूनानी प्रभाव का पता गार्गी संहिता और वाराहमिहिर से भी लगता है। गांधार कला के रूप में बुद्ध की मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है। यूनानी संपर्क से भारत पश्चिमी जगत के संपर्क में आया। गुप्त काल मे (चौथी से छठी शताब्दी तक) भारत में रोमन बस्तियां बसने लगीं। भारत के बाजारों में रोमन दीनार का प्रचलन हुआ। ज्योतिष पर रोमन प्रभाव भी है। रोमन सम्राटों के समकालीन प्रारंभिक कुषाण शासकों के सिक्कों पर रोम के मानदण्डों का प्रभाव है। यूनानियों द्वारा आरंभ की गई गांधार शैली को विकसित और प्रचलित करने का कार्य शकों और कुषाणों ने किया। शकों से शक संवत प्राप्त हुआ (जिसकी स्थापना 78 ई. में कनिष्क ने की)। पांचवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में आए आभीर(अहीर) और गुर्जरों ने लोकप्रिय बोलियों प्राकृत और अपभ्रंश को प्रभावित किया और महत्वपूर्ण प्राकृत गुर्जरी से आधुनिक गुजराती भाषा का जन्म हुआ। गुप्त काल में अनेक ईसाई बस्तियों का भी उदय हो चुका था। अरबों ने यूनानियों के दर्शन

और विज्ञान को यूरोप के लिए संरक्षित किया और भारत से गणित तथा औषधि विज्ञान और चीन से कागज तथा छापे की मशीन पश्चिम में ले जाकर उसे प्रबुद्ध किया। अरबों से भारत में खगोलीय गणना का नया तरीका पंचांग और ताजिकिस्तान में फारसी भाषा में तैयार किए गए ताजिकी ग्रंथ के अन्तर्गत ढेर सारे विज्ञान लिए गए। इस्लाम का भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान के क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। इस्लामी प्रभाव का एक प्रमुख परिणाम था, मुस्लिम सूफी संतों का हिन्दू जनता से संपर्क। सूफी मत इस्लामी मत की कट्टरता के विरुद्ध प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ था और उदार संतों ने इस नए आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस्लाम ने हिन्दू समारोहों, सामाजिक रीतियों, वेश.भूषा ,भाषा, विचार और आदर्शों, और साहित्य, ललित कलाओं , वास्तु शिल्प तथा संगीत और विज्ञान को गहरे रूप में प्रभावित किया। वास्तुकला में दोनो शैलियों के मिश्रण से एक नई शैली का जन्म हुआ। इसी प्रकार चित्रकला में मुगल कलम का प्रादुर्भाव हुआ और स्थापत्य की तरह ही मुस्लिम तथा हिन्दू संस्कृतियों के मेल से यह पूर्णतः भारतीय हो गई। भाषा में अनेक अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों का समावेश हुआ। उर्दू भाषा का जन्म इन्हीं सब का परिणाम था। भारतीय संस्कृति पर यूरोपीय, मुख्यतः अंग्रेजों के संपर्क से राष्ट्रवाद का बोध, राजनैतिक.भौगोलिक एकता, स्वतंत्रता का विचार आया और भारतीय पश्चिमी शिक्षा, ज्ञान.विज्ञान और आधुनिक विचारों से अवगत हुए। अंग्रेजों और इससे पूर्व आए आक्रान्ताओं में एक मूल अंतर यह था कि अंग्रेज यहां बसने नहीं अपितु औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए आए थे। उन्होंने जहां एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण किया, वहीं दूसरी ओर उनके प्रयत्नों से अतीत का गौरव भी उद््घाटित हुआ। भारतीय कला, साहित्य, संगीत, शिक्षा, सामाजिक रीति रिवाजों आदि भी यूरोपीय प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

कुल मिलाकर आप ये समझ पाए होंगे कि इन सभी ने स्थानीय साहित्य, कला, विज्ञान और संस्कृति को प्रभावित किया और मिली.जुली संस्कृति पर गहरी छाप छोड़ी और उस समन्वयवादी, विविधताओं से भरी संस्कृति को जन्म दिया जिसे आज हम भारतीय संस्कृति के नाम से जानते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) भारतीय संस्कृति एक समन्वयवादी संस्कृति रही है।
   (ख) भारतीय संस्कृति पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का प्रभाव।
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए
   (क) भारतीय संस्कृति विभिन्न प्रजातियों और उनकी संस्कृतियों के मिश्रण से निर्मित है।
   (ख) आर्यों के सामाजिक ढांचे पर द्रविड़ सभ्यता का प्रभाव पड़ा।
   (ग) खरोष्ठी लिपि बायें से दायें लिखी जाती थी।
   (घ) गांधार कला के रूप में बुद्ध की मूर्तियों पर यूनानी प्रभाव है।

3.4 बहुदेववाद एवं अवतारवाद

धर्म के क्षेत्र में देखें तो हिन्दू मत में बहुदेववाद की अवधारणा हैं, इस्लाम एकेश्वरवादी है, तो बुद्ध अनीश्वरवाद को मानते दिखाई देते हैं। हिन्दू मत में कुछ देवता वे हैं, जिनकी कल्पना वेदों ने की, कुछ प्राक्वैदिक भारत में पूजे जाते थे और बाद में वैदिक धर्म में प्रवेश पा गए। तीसरे प्रकार के देवता आर्य द्रविड़ मिश्रण के बहुत बाद बाहर से आने वाली नई जातियों के साथ आए होंगे। विभिन्न देवी.देवताओं की उपासना के साथ ही यह भी माना गया कि विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी सब एक ही हैं। यास्क ने कहा कि व्यक्ति रूप से भिन्न होते हुए भी , जैसे असंख्य मनुष्य राष्ट्र रूप में एक हैं, वैसे ही विविध रूपों में प्रकट होने पर भी देवों में एक ही परमात्मा व्याप्त हैं। इन्हीं परमात्मा को याज्ञिकों और ब्राह्मण ग्रंथों ने प्रजापति कहा है। सभी देवता इन्हीं प्रजापति के विशिष्ट अंग माने गए हैं।

डी.डी.कोसंबी के अनुसार ''ब्राह्मणों ने धीरे धीरे बची.खुची कबीलाई व श्रेणी जातियों में भी प्रवेश किया, यह प्रक्रिया आज तक चालू है। इसका अर्थ था नए देवताओं की पूजा। कबीलाई देवताओं को ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित देवताओं के समकक्ष मान लिया गया और जिन कबीलाई देवताओं को आत्मसात करना कठिन था, उन्हें प्रतिष्ठित बनाने के लिए नए ब्राह्मण धर्म ग्रंथों की रचना की गई। इन नए देवताओं के साथ नए अनुष्ठान भी अस्तित्व में आए। इस समूची प्रक्रिया के बारे में महाभारत, रामायण तथा पुराणों में भरपूर सामग्री मिलती है। न केवल कृष्ण को बल्कि बुद्ध और आदिम मत्स्य, कच्छप तथा वराह जैसे टोटेम मूलक देवताओं को भी विष्णु नारायण का अवतार घोषित कर दिया गया। इसी प्रकार हनुमान, शेषनाग, नन्दी आदि को उपासना में स्थान मिला। आदिम देवताओं की पूजा संस्कृतियों के पारस्परिक आदान.प्रदान की प्रक्रिया का ही अंग थी। मातृसत्तायुगीन तत्वों को आत्मसात किया गया तथा मातृदेवियों को किसी न किसी नर देवता की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया।'' लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती आदि के रूप में आप इन्हें देख सकते हैं। शिव की पूजा जिस रूप में हिन्दू समाज में प्रचलित है, वह रूप वेदों में नहीं मिलता। इस पर आर्य समाज के बाहर द्रविड़ और ऑस्ट्रिक प्रभाव स्पष्ट है। कालान्तर में शिव की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और कुछ समय बाद लिंग पूजा को भी मान्यता प्राप्त हो गई। भण्डारकर के अनुसार ''रुद्र शिव का संबन्ध आरंभ में जंगली जातियों से भी रहा होगा या यह भी संभव है कि जंगली जातियों के बीच प्रचलित देवताओं के भी गुण बाद में चलकर रुद्र शिव की कल्पना में आ मिले।'' सुनीति कुमार चटर्जी का मत है कि '' द्रविड़ लोग भारत में मेडीटेरेनियन समुद्र के पास से आए थे और संभवतः शिव और शक्ति विषयक दार्शनिक भाव भी वहीं से लाए।'' डी. डी. कोसंबी का कथन है ''वेद के रुद्र और बाद के शिव एक ही हैं।'' आर्यों की पूजा आराधना में योग का समावेश हुआ। इसी प्रकार उमा अर्थात पार्वती की उपासना में परमेश्वरी के रूप से आगे जाकर चामुण्डा, काली आदि विकराल रूपों की कल्पना का भी अपना इतिहास है। सांपों की पूजा, भूत पिशाच का भय, अनेक प्रकार के टोटके आदि के बारे में भी अनुमान है कि वे आर्येतर समाज से हिन्दू धर्म में आकर मिले। आर्यों के प्राकृतिक शक्तियों रूपी देवी.देवताओं के स्थान पर विष्णु और शिव की उपासना के साथ.साथ समाज में ऐसे सैकड़ों व्रत, आचार, अनुष्ठान और रिवाज प्रचलित हुए जिनका उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। उत्तर भारत में मुख्य रूप से शिव और उमा की पूजा प्रचलित है, गणेश की प्रतिष्ठा विघ्नहर्ता के रूप में है तो दक्षिण में शिव के पूरे परिवार की पूजा का व्यापक प्रचार है। शिव और उमा के साथ

वहां कार्तिकेय और गणेश की पूजा भी बड़े उत्साह के साथ की जाती है। गणेश आर्येतर देवता माने गए हैं। ऋग्वेद में उल्लिखित विष्णु शब्द 'सूर्य' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार ''आर्यों के सूर्यवाचक देवता विष्णु भारत में आकर द्रविड़ों के एक आकाश देव से मिल गए, जिनका रंग द्रविड़ों के अनुसार आकाश के समान ही नीला अथवा श्याम था।'' भण्डारकर लिखते हैं कि प्राचीन काल में वैष्णव धर्म मुख्यतः तीन तत्वों के योग से उत्पन्न हुआ था। पहला वेद में उल्लिखित विष्णु शब्द सूर्य के अर्थ में , दूसरा महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीय उपाख्यान में उल्लिखित नारायण धर्म और तीसरा वासुदेव मत। इन तीन तत्वों ने मिलकर वैष्णव धर्म को उत्पन्न किया।'' लेकिन उसमें कृष्ण के ग्वाला रूप और राधा के प्रेम की कथाएं बाद में संभवतः आर्येतर प्रभाव से जुड़ीं (दिनकर)। आगे चलकर इसमें 'वासुदेव धर्म' और 'भागवत धर्म' के रूप हमें मिलते हैं। कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख पहले छान्दोग्य उपनिषद में और फिर महाभारत में मिलता है। ए.एल.बाशम के अनुसार ''इन महान देवताओं के अतिरिक्त अल्प महत्व के असंख्य देवता थे। प्रत्येक ग्राम का एक स्थानीय देवी.देवता होता था, जिसे ग्राम देवता कहते थे, जो प्रायः एक अपरिष्कृत आदि देवता की शक्ति के रूप में किसी पूज्य वृक्ष के नीचे स्थापित होता था। स्थानीय देवियों का बहुधा दुर्गा के साथ तादात्म्यीकरण कर दिया गया, किन्तु वे कभी पौराणिक कथाक्रम में सम्पूर्णतः सम्मिलित नहीं की गईं और न ही उन्हें पति प्रदान किए गए थे, जैसे शीतला, मनसा आदि।...इसी प्रकार सर्पात्माएं, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराएं, विद्याधर आदि अर्धदेवता थे।...इसके अलावा पीपल, वट, अशोक, तुलसी आदि वृक्ष पूजा के रूप आए।'' डॉ राधाकृष्णन के अनुसार ''हिन्दुत्व के कुछ गिने हुए सिद्धांतों में कट्टरता से विश्वास करने के बदले , अत्यंत व्यापक उदारता का विकास किया। आदिवासी जनता के पास जो अनेक देवी.देवता थे तथा बाद को जो देवता दूसरी जातियों के साथ बाहर से आए उन सबको हिन्दुत्व ने स्वीकार कर लिया एवं कालक्रम में उसने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि ये देवी.देवता हिन्दुत्व के ही हैं।'' दिनकर के अनुसार '' अनेक जातियों के देवी.देवताओं के आ मिलने के कारण बहुदेववाद हिन्दुत्व का अनिवार्य अंग बन गया। अतएव सब हिन्दू किसी एक देवी देवता को नहीं पूजते हैं। अनेक देवी देवताओं के आने से उनके महात्म्य की भी अनेक कथाएं पुराणों में आ मिलीं। जिन विभिन्न नृवंशों की संततियों को लेकर हिन्दू जाति की रचना हुई, उनके विभिन्न उपासना मार्ग भी हिन्दुत्व के अपने अंग बन गए, अतः हम नहीं कह सकते कि हिन्दुत्व की अपनी उपासना पद्धति कौन सी है.....जिन ग्राम देवता और देवियों के पूजकों को मनु ने अनेक स्थानों पर पतित कहा है, तो गांवों में अब ब्राह्मण भी भूत प्रेत और ग्राम देवता की पूजा करते हैं। आरंभ में इन देवताओं के पुरोहित भी शूद्र रहे होंगे, किन्तु आमदनी का रास्ता देखकर ब्राह्मणों ने उन्हें भी अपदस्थ कर दिया होगा। आर्येतर परंपराओं से वृक्षों, नदियों की पूजा, होली, वसंतोत्सव आदि अनेक उत्सव आदि हिन्दू समाज में आए।'' डी. डी. कोसंबी के विवरण से स्पष्ट होता है कि आदिम कबीलाई देवताओं में और गाँवों में निम्न कोटि के देवताओं में कुछ साम्य पाया जाता है। आदिम उत्पत्ति का समर्थन ग्रामीण पूजा पद्धतियों के नामों से भी होता है। सहोद्गम के कुछ चिह्न कभी कभी सामूहिक वार्षिक पूजा में प्रकट होते हैं, विशेषकर मातृदेवियों की पूजा में। किसानों द्वारा कुछ दूसरे उच्च श्रेणी के देवताओं की भी पूजा की जाती है, जो स्थानीय देवताओं से एक सीढ़ी ही ऊपर होते हैं। जैसे एक पत्थर पर उच्चित्रित नाग देवता को क्षेत्रपाल माना जाता है। अन्य छोटे देवताओं को जोताई, बुवाई, कटाई आदि के अवसर

पर सन्तुष्ट करना होता है। और भी ऊँचे स्तर पर ब्राह्मण देवता हैं। कभी कभी स्थानीय आदिम देवी या देवता को ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों में वर्णित किसी देवी.देवता के रूप में भी पहचाना जा सकता है। पुराने देवताओं को समाप्त नहीं किया गया, उन्हें अपनाकर नए रूप में ढाला गया। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म में उन सामाजिक समूहों को कुछ हद तक एकजुट किया गया, जिनमें आपस में कोई एकसूत्रता नहीं थी।''कोसंबी लिखते हैं कि '''इस प्रक्रिया का भारतीय इतिहास में निर्णायक महत्व है, क्योंकि प्रथम इसने देश को कबीले से समाज व्यवस्था की ओर आगे बढ़ाया और फिर इसने देश को अन्धविश्वास के गंदे दलदल में फँसाकर रखा।''

दूसरी ओर अवतारवाद भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। विष्णु के दस अवतारों की परिकल्पना की गई। विष्णु के वामनावतार की कथा का संकेत ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व वासुदेव कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। ''कृष्ण की शिशु से लेकर उदात्त रूप तक अनेक रूपों में उपासना प्रारंभ हुई। इसके बाद बाकी अवतार भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे तथा उन्हीं दिनों राम का अवतार होना भी प्रचलित हो गया।....बुद्ध विष्णु के अन्तिम अवतार थे ''(ए.एल.बाशम)। बौद्ध और जैन साहित्य को छोड़कर और सभी भारतीय साहित्य में राम विष्णु के अवतार के रूप में सामने आते हैं। बौद्ध धर्म के साथ राम कथा का जो रूप भारत से बाहर पहुंचा, उसमें वे विष्णु के अवतार नहीं रहे। दिनकर के अनुसार ''राम एक ऐसे चरित्र हैं, जो ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा आगे चलकर जिनकी भक्ति में शिव भक्ति भी समाहित हो गई।'' टी.पी.श्रीनिवास आयंगार के अनुसार ऋग्वेद में उल्लिखित इन्द्र के विरुद्ध लड़ने वाले असुर योद्धा और बाद के भारतीय साहित्य के नायक कृष्ण द्रविड़ों के एक यौवन प्रतीक देवता थे। इसी प्रकार हनुमान और ऋग्वेद के कृषाकपि के आदिरूप वास्तव में द्रविड़ों के नर वानर अनमन्ति थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति में बहुदेववाद।
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) शिव की उपासना पर द्रविड़ और ऑस्ट्रिक प्रभाव है।

(ख) भारतीय उपासना पद्धति एकेश्वरवादी है।

(ग)बुद्ध विष्णु के अन्तिम अवतार माने गए।

3.5 कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत

कर्मवाद का सिद्धांत हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग था। कर्म पूर्वजन्म के कार्यों का अविज्ञात रूप था और यद्यपि जैन धर्म की भांति हिन्दू धर्म के अन्तर्गत यह कोई तात्विक पदार्थ या श्रेणी न था । यह विचार किया जाता था कि उसका संचय होता है और वह व्ययशील है। ए.एल बाशम के अनुसार '' कर्म के द्वारा ही अपर जन्म का दैवी, मानवी,

पाशविक अथवा राक्षसी शरीर प्राप्त होता था और कोई पूर्व कर्म मनुष्य के चरित्र, वैभव, सामाजिक वर्ग, सुख और दुख के अधीन नहीं था। प्रत्येक सत्कर्म का सुफल आज हो या कल सुख होता था और प्रत्येक असत्कार्य का परिणाम दुख होता था। हिन्दू धर्म ने पुनर्जन्म से मुक्ति का भाव, जो लगभग समस्त भारतीय विचारधारा में व्यापक है, परंपरा से प्राप्त किया। मुक्ति की अवस्था की कल्पनाएं अथवा मुक्ति और उसे प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में विस्तृत भिन्नता थी। यह माना गया कि संसार जो एक शरीर से दूसरे शरीर तक की यात्रा है और बहुधा सतत गतिमान चक्र है।'' दिनकर का कथन है ''आत्मा, पुनर्जन्म और कर्मफलवाद के विषय में वैदिक ऋषियों ने अधिक नहीं सोचा था। इनका विकास आगे चलकर उपनिषदों में हुआ सा लगता है। आत्मा शरीर से भिन्न वस्तु है, जो मरणोपरांत परलोक को जाती है, इस सिद्धांत का आभास वैदिक ऋचाओं में मिलता है.....एक मंत्र में कहा गया है कि व्यक्ति का एक अंश जन्म रहित और शाश्वत है तो अन्यत्र जीवात्मा को कर्मफल भोक्ता बताया गया है।'' उपनिषदों के आधार पर जो कर्मफलवाद का सिद्धान्त ज्ञात होता है उसके अनुसार मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल भोगना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को अपने कर्मों को सुधारना चाहिए। कर्म के सुधरने से मनुष्य का अगला जन्म अच्छा होगा और उस जन्म में भी जब वह अच्छे कर्म करेगा, तब उसका तीसरा अगला जन्म और भी अच्छा होगा। इस प्रकार जन्म जन्मान्तर तक साधना करते करते उसकी मुक्ति हो जाएगी अर्थात वह जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाएगा। बुद्ध ने भी वैदिक धर्म के जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद को यथावत स्वीकार किया। उनका मत था कि जीवन दुख है और मनुष्य को यह दुख भोगने के लिए बार बार जन्म लेना पड़ता है। वह अपने कर्मों के अनुसार उत्तम या अधम योनि में जन्म लेता है और उन जन्मों में जैसा काम करता है, जैसा संस्कार अर्जित करता है, वे संस्कार उसे नया जन्म लेने को विवश करते हैं। इस प्रकार जन्म मरण का प्रवाह लगातार चलता रहता है। बुद्ध ने इसके लिए मोक्ष का मार्ग बताया जिसे वह निर्वाण कहते हैं। डॉ आनन्द कुमारस्वामी का मत है कि ''निर्वाण मृत्यु भी है और जीवन की पूर्णता भी। किन्तु यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे हम स्थान विशेष या काल विशेष में देख सकें।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1.कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त

2. निम्न कथन के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

वैदिक और बौद्ध धर्म दोनो ने ही जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद को स्वीकार किया।

3.6 वर्ण एवं जाति प्रथा

'भारतीय समाज चार वर्णों वाले विभाजन पर आधारित था, जिसमें जन्म और वंश का महत्व था। अथर्ववेद के रचनाकाल तक चातुर्वण्य व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। चौथा वर्ण शूद्र आर्यों के वर्णक्रम में बड़े पैमाने पर द्रविड़ों के प्रवेश से रूप ग्रहण करने लगा था। बाद में विभिन्न वर्णों के वैवाहिक और अवैवाहिक सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाले सिद्धान्त का भी उद्भव हुआ। चार वर्णों के अतिरिक्त विभिन्न कामगारों को जातियों के रूप में मान्यता मिली

औरविभिन्न व्यवसायों के आधार पर जातियों का निर्धारण हुआ। इन सामाजिक स्थितियों की शास्त्रीय व्याख्याएं ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में व्यापक रूप से की गई। मनु ने लिखा है --------

'' वरं स्वधर्मो विगुणो, न पारक्यः स्वनुष्ठितः,
परधर्मेण जीवन हि सद्यः पतति जातितः।''

(अर्थात अपना विगुण धर्म भी (पैत्रिक परंपरा से प्राप्त कठिन व्यवसाय भी) दूसरों के धर्म से श्रेष्ठ है। दूसरों का सुविधाजनक व्यवसाय अपनाकर जीने वाला मनुष्य जाति से च्युत हो जाता है)। धीरे.धीरे जाति प्रथा भारतीय समाज की मुख्य विशेषता बन गई और कालक्रम में जाति के बंधन रूढ़ होते चले गए। शक, यवन, पह्लव, पारदों आदि को हिन्दू वर्णाश्रम में क्षत्रियों के रूप में सम्मिलित किया गया। चूंकि भारत में प्रवेश करने वाली जातियां विजेताओं के रूप में आईं थीं, उनकी अवहेलना अथवा अपमान संभव नहीं था और उनको प्रायः क्षत्रियों के समकक्ष स्थान देना पड़ा। पतंजलि ने शकों को क्षत्रियों के रूप में स्वीकार नहीं किया है और उनको शूद्र कहा है, यद्यपि स्मृतियों में उल्लिखित मूल शूद्रों से भिन्न माना है। वे बौद्ध, शैव और वैष्णव मतों की ओर अधिक आकृष्ट हुए। शक जनसाधारण और शासक वर्ग दोनो ने ही बड़ी संख्या में पूजा की स्थानीय रीतियों और देवी.देवताओं को अपना लिया। किन्तु वास्तविक धरातल पर शास्त्रीय अनुशंसाओं के विपरीत भी अनेक परिस्थितियां थीं। भारतीय संस्कृति में विदेशी प्रभाव बढ़ने के साथ ही (ई. पू. तीसरी सदी में) सामाजिक दृष्टिकोण में अंतर आने लगा। स्मृतियों और आचार संहिताओं की पुनर्व्याख्या करते हुए जातियों की शुद्धता बनाए रखने के लिए जाति के बंधनों को कठोर कर दिया गया। परंपरागत जाति से कटे हुए, जिन्होंने विदेशियों के प्रभावों या जीवन पद्धति से सम्बन्ध रखा था, को वर्णसंकर या अछूत माना गया। मनु ने इसका बड़ा सूक्ष्म वर्गीकरण किया है (देखें मनुस्मृति)। अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न संततियां भी वर्णसंकर मानी जाने लगीं और सब की सब शूद्र जाति में प्रविष्ट हो गईं। इसी प्रकार शक्तिशाली हूणों को अमान्य करना आसान न था और उन्हें भारतीय सामाजिक व्यवस्था में समाविष्ट करने के लिए नए सामाजिक प्रबन्ध किए गए। अग्निदीक्षा के बाद उन्हें क्षत्रिय के रूप में मान्यता दी गई। पृथ्वीराजरासो में उन्हें 36 उच्च राजपूत राजघरानों में बताया गया है। दिनकर लिखते हैं कि ''जो वर्ग सुसंस्कृत थे, जिनकी बुद्धि का भरसक विकास हुआ था, वे साधारणतया औद्योगिक कलाओं से दूर ही रहे। इस बात का भारतीयों के बौद्धिक और आर्थिक विकास की दृष्टि से विपरीत और अनिष्टकारी परिणाम हुआ।''

भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार '' हिमालय की उपत्यकाओं से लेकर पूरब में गंगा और पद्मा तक तथा बर्मी शानों और किरातों से लेकर पूर्वी बंगाल के पश्चिमान्त तक सारा मानव समुदाय जातीय रूप से एक हो गया। जातियां भ्रष्ट और संदेहास्पद हो गईं और दकियानूसों ने पुरोहितों द्वारा गंडक के पूर्व के क्षेत्र को आर्यों के रहने के अयोग्य घोषित किया जाना उचित समझा।

डी.डी. कोसंबी का मत है कि ''संस्कृतियों के पारस्परिक आदान प्रदान की इस प्रक्रिया के साथ वर्ग संरचना का , जिसका पहले कोई अस्तित्व नहीं था उदय हुआ।.....बुद्ध और अशोक ने लोगों को सभ्य और सामाजिक बनाने की

दिशा में जिस कार्य की शुरुआत की थी, उसे फिर आगे बढ़ाने की कोशिश नहीं हुई। जातिबंधन और जातिगत अलगाव की कठोरता ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि सभी वर्गों, पेशों, जातियों तथा धर्मों के लिए सर्वमान्य न्याय व समानता को लागू करने की संभावना ही समाप्त हो गई।..... भारतीय समाज की मुख्य विशेषता, जो देहाती इलाकों में सबसे अधिक प्रबल है, जाति प्रथा है। इसका अर्थ है, समाज के ऐसे विभक्त समूह, जो पास.पास रहते हुए भी अक्सर मिल.जुलकर रहते हुए नहीं दिखाई देते। यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि अनेक जातियों का निम्न सामाजिक और आर्थिक स्तर इस कारण है कि उन्होंने पहले या आधुनिक काल में अन्न उत्पादन और हल की खेती को अपनाने से इन्कार किया है। निम्नतम जातियां अक्सर अपने अनुष्ठानों , संस्कारों और मिथकों को सुरक्षित रखती हैं। थोड़े ऊँचे स्तर में हम इन धार्मिक अनुष्ठानों और आख्यानों को हम संक्रमण की स्थिति में देखते हैं, अक्सर दूसरी परंपराओं में आत्मसात होते देखते हैं। एक सीढ़ी और ऊपर जाने पर दिखाई देता है कि ब्राह्मणों ने अपनी सुविधा के लिए और पुरोहित वर्ग ने अपनी जाति का प्रभुत्व जमाने के लिए इन्हे फिर से लिखा है .....ब्राह्मण धर्म का मुख्य कार्य यही रहा कि उसने आख्यानों को एकत्र किया, इन्हें कथाचक्रों में बांध कर फैलाया और फिर एक अधिक विकसित सामाजिक चौखट में रखकर प्रस्तुत किया।''

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सामाजिक संरचना के तत्वों का उभार देर से हुआ। विशुद्धानंद पाठक ने लिखा है कि ''दक्षिण भारत के अभिलेखों में वर्ण, जाति, कुल और गोत्र जैसे शब्द तो प्राप्त होते हैं, पर उनका सामाजिक संरचना संबन्धी रूप वह नहीं दिखाई देता जो उत्तर भारत में था। वर्ण के संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेख ब्राह्मणों से संबद्ध हैं और गोत्रों के साथ राजाओं के उल्लेख ही प्राप्त होते हैं। साधारण समाज में वर्ण , गोत्र और कुल का कोई महत्व नहीं था।'' दोनों के बीच सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आदान.प्रदान और सांस्कृतिक अंतःक्रिया संचरणशील उत्तर भारतीय ब्राह्मणों के माध्यम से हुई, जिसे दक्षिण भारत के प्रारंभिक इतिहास लेखकों ने आर्यीकरण कहा और बाद में इसके स्थान पर संस्कृतीकरण शब्द का प्रयोग प्रारंभ हुआ।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि ज्यों.ज्यों जाति के बंधन जटिल हुए समाज में प्रतिक्रिया भी हुई। बुद्ध ने जाति प्रथा को चुनौती दी और कहा ''जाति मत पूछ आचरण पूछ, नीच कुल का मनुष्य भी ज्ञानवान और पापरहित मुनि हो सकता है।'' सूफियों और भक्ति संतों के युग में मानव की समानता पर बल दिया गया। जाति का विरोध करते हुए कबीर ने कहा '' जात पांत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति और जाति प्रथा
2. निम्न कथन के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) जातिगत अलगाव के कारण भारतीय समाज में समानता और परस्पर मेल.जोल की भावना को आघात पहुंचा।

3.7 भाषागत विशेषताएं

भारत में आर्यों और आर्यों से पहले के भारतवासियों , खासकर द्रविड़ों के समन्वय से जो बड़ी संस्कृति उत्पन्न हुई, उसका प्रतिनिधित्व संस्कृत ने किया। संस्कृत शीघ्र ही उच्च वर्ग की विशेष बोली बन गई, जिसे शिक्षित लोग ही समझ पाते थे। इस भाषा में दी जाने वाली विधिवत शिक्षा पर ब्राह्मणों का ही अधिकार रहा। संस्कृत के विकास में उत्तर और दक्षिण दोनों ने योगदान दिया। बाद में दक्षिण के संतों और भक्त कवियों ने उत्तरी भारत के अन्दर तक प्रवेश किया और सांस्कृतिक रूप से इसे समृद्ध बनाया। तमिल और संस्कृत के बीच शब्दों के आदान.प्रदान के प्रमाण मिलते हैं। किटेल की कन्नड़. इंग्लिश डिक्शनरी में ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख है जो तमिल से निकल कर संस्कृत में पहुंचे। इसी प्रकार संस्कृत ने भी तमिल को प्रभावित किया। द्रविड़ भाषाओं की सभी लिपियां ब्राह्मी से निकलीं। वैदिक धर्म के ग्रन्थ भी केवल उत्तर में नहीं लिखे गए। उनमें से अनेक की रचना दक्षिण में हुई। चिन्तकों, विचारकों और विशिष्ट समाज की भाषा दक्षिण में भी संस्कृत थी। उत्तर भारत की सभी भाषाएं संस्कृत से निकल कर विकसित हुई हैं। ये भी परस्पर भिन्न हैं, परंतु संस्कृत ने हिन्दी को एक खास ढंग से विकसित करके उत्तर भारत को एक ऐसी भाषा दे दी, जो थोड़ी बहुत सभी भाषा क्षेत्रों में समझ ली जाती है। तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भी प्राचीन तमिल से ही निकली हैं। लेकिन द्रविड़ क्षेत्र में उस परिवार की कोई ऐसी भाषा उत्पन्न नहीं हुई, जो चारों भाषा क्षेत्रों में समझी जा सके। दिनकर के अनुसार ''संस्कृत पर आधारित होने के कारण भारत की सभी भाषाएं एक हैं, क्योंकि उनके शब्द एक हैं, उनकी तर्ज और भंगिमाएं एक हैं तथा वे एक ही सपने का आख्यान अलग अलग लिपियों में करती हैं।.....तमिल जो भारत की अर्वाचीन भाषाओं में सबसे प्राचीन है, संस्कृत उससे भी कम से कम दो हजार वर्ष अधिक पुरानी भाषा है। अतः भारत को पहले जो कुछ भी कहना था उसने संस्कृत में कहा। बहुत बाद में जब अर्वाचीन भाषाओं का उदय हुआ, उनमें भी भावानुभूति और चिन्तन की वही प्रक्रिया उद्धृत हो गई, जो संस्कृत में विकसित हुई थी। अतः हिन्दू संस्कृति की मूल भाषा संस्कृत रही।'' यह जनता के विचार और धर्म का प्रतीक भी बनी। यद्यपि बुद्ध के समय से ही जनभाषा के रूप में इसका स्थान नहीं रहा। भारतीय इतिहास में गुप्त युग से पूर्व के सहस्राधिक वर्षों में गंगा यमुना के मैदान में ही नहीं, पश्चिम में महाराष्ट्र से लेकर पूर्व में उड़ीसा तक और दक्षिण में आन्ध्र से लेकर हिमालयी राज्यों तक राजभाषा के रूप में उस जनभाषा का वर्चस्व दिखाई देता है, जो क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद पूरे देश में समझी जाती थी। गुप्तों के उदय के बाद ब्राह्मण वर्चस्व की स्थापना के साथ ही संस्कृत राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। ब्राह्मण ग्रंथ संस्कृत में और बौद्ध ग्रंथ पालि में लिखे गए तो जैनों ने प्राकृत के अनेक रूपों का उपयोग करते हुए प्रत्येक काल एवं क्षेत्र में जब जो भाषा प्रचलन में थी, उसी के माध्यम से अपना प्रचार किया। डी.डी. कोसंबी का कथन है कि ''इंडो आर्य भाषाएं संस्कृत से विकसित हुई हैं। इस प्रकार आरंभ में विकसित हुई भाषाएं हैं पालि, जो मगध में बोली जाने के कारण मागधी भी कहलाती है और अन्य अनेक प्रांतीय प्राकृत भाषाएं। इन्हीं से हिन्दी , पंजाबी, बंगला, मराठी आदि आधुनिक भाषाएं निकलीं। किन्तु भारत में आर्येतर भाषाओं का भी एक विस्तृत और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ग है, जिसमें द्रविड़ भाषा समूह के अन्तर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाओं का समावेश होता है। इनके अलावा छोटे छोटे कबीलों की बहुत सारी बोलियां हैं। ''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. भारतीय संस्कृति की भाषागत विशेषताएं
2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) संस्कृत को जनभाषा के रूप में मान्यता मिली।

(ख) इंडो आर्य भाषाएं संस्कृत से विकसित हुई(डी.डी. कोसंबी)

(ग) बुद्ध, महावीर आदि ने अपनी शिक्षाओं का प्रसार जनभाषा में किया।

3.8 हिन्दू धर्म और संस्कृति

प्रायः भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के रूप में मान्यता देने की परंपरा रही है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''हिन्दू शब्द के उपयोग की शुरुआत 549 तथा 525 ई. पूर्व के बीच हुई। अपने पुरालेख में ईरान के शासक दारा ने भारत और भारतीयों के अर्थ में पहली बार हिन्दी शब्द का प्रयोग किया, जिसको बहुत बाद में भारतीय साहित्यों ने ग्रहण किया और जिसको हिन्दू के रूप में बार बार दोहराया।'' दिनकर ने लिखा है कि ''हिन्दू धर्म किसी एक विश्वास पर आधारित नहीं है, बल्कि अनेक विश्वासों का समुदाय है। जिस प्रकार भारतीय जनता की रचना उन अनेक जातियों को लेकर हुई, जो समय .समय पर इस देश में आती रहीं, उसी प्रकार हिन्दुत्व भी इन विभिन्न जातियों के धार्मिक विश्वासों के योग से बना है। ....देश के अर्थ में हिन्दू शब्द का चलन इस्लाम के जन्म से कोई हजार डेढ़ हजार वर्ष पहले ही शुरू हो गया था। ईरानी लोग 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे, अतः 'सिन्धु ' को उन्होंने 'हिन्दु' कहा। इसी विकृति से आगे चलकर 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्तान' दोनो शब्द निकले। यूनानियों के मुंह से 'ह'के बदले 'अ' निकलता था, अतः हिन्दू को उन्होंने इन्दो (प्दकव) कहना शुरू किया। इसी दूसरी विकृति से इंडिया नाम निकला है।'' दिनकर आगे लिखते हैं''ईरानियों द्वारा दिया हुआ हिन्दू नाम संस्कृत भाषियों के द्वारा संपूर्ण भारतवासी जनता के समुच्चय नाम के रूप में स्वीकृत हो गया, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। नीग्रो, औस्ट्रिक, द्रविड़ और आर्य इन चार जातियों के समन्वय से उत्पन्न हिन्दू संस्कृति में आगे चलकर अनेक धाराएं मिल गईं। उत्तर में जब बौद्ध मत की प्रबलता हुई, तभी से हिन्दू धर्म अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए दक्षिण को अपना गढ़ मानने लगा। बाद में विदेशी आक्रमणों के बाद बहुत से हिन्दू दक्षिण की ओर खिसकने लगे थे।.....असल में हम जिसे हिन्दू संस्कृति कहते है, वह किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि इन सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है।.....भारतीय संस्कृति भी इस देश में आकर बसने वाली अनेक जातियों की संस्कृतियों के मेल से तैयार हुई है और अब यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि उसके भीतर किस जाति की संस्कृति का कितना अंश है।'' सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार '' हिन्दू संस्कृति के आधे से अधिक उपादान आर्येतर संस्कृतियों से आए हैं।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. हिन्दू धर्म और संस्कृति की अवधारणा

3.9 सारांश

भारतीय संस्कृति वह संस्कृति है जिसने विश्व को न सिर्फ बहुत कुछ दिया, बल्कि दुनिया के विभिन्न कबीलों से , चाहे वे आक्रान्ता के रूप में आए अथवा व्यापारी के रूप में, उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों को ग्रहण किया और अपनी संस्कृति का विकास किया। भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार '' अनगिनत कबीलों ने सभ्य भी बर्बर भी भारत की सीमाएं लांघ कर इस देश में प्रवेश किया एवं यहां के सामाजिक ताने.बाने में अपनी नयनाभिराम छवियां डालीं स्वयं इसमें विलीन हो गए.....एक ओर भारतीय संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व हड़प्पा तथा द्रविड़ों की सभ्यता तक पहुंचता है, तो दूसरी ओर इस पर आर्य संस्कृति की गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आए थे। धीरे.धीरे यह संस्कृति उत्तर.पश्चिम से आने वाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बार बार प्रभावित हुई और इस प्रकार धीरे.धीरे राष्ट्रीय संस्कृति ने आकार ग्रहण किया। भारतीय संस्कृति में हम दो परस्पर विरोधी और प्रतिद्वन्दी शक्तियों को काम करते देखते हैं। एक तो वह शक्ति है जो बाहरी तत्वों को आत्मसात कर समन्वय और सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करती है और दूसरी वह जो विभाजन को प्रोत्साहन देती है।'' विभिन्न संस्कृतियों से संपर्क और अन्तःक्रिया के दौरान ही शास्त्रकारों द्वारा बहुत सी रूढ़ियां भी भारतीय समाज और परंपरा सम्मिलित हुईं, जो इस संस्कृति का एक निर्बल पक्ष है। जाति के बंधन कठोर हुए। एक ओर विचारों और सिद्धांतों में भारतीय संस्कृति का अधिक से अधिक उदार और सहिष्णु रूप सामने प्रदर्शित किया गया तो दूसरी ओर सामाजिक आचार.विचार अत्यंत संकीर्ण होते चले गए।

डी.डी. कोसांबी के शब्दों में ''भारतीय संस्कृति की संभवतः सबसे बड़ी विशेषता है- अपने ही देश में इसकी निरंतरता।.....देश के सभी भाग एक साथ एक ही अवस्था में नहीं रहे। प्रत्येक अवस्था में , देश के प्रायः हर भाग में , पहले की सभी अवस्थाओं के कई लक्षण जीवित रहे और उनके साथ साथ अनेक पूर्वावस्थाओं के उत्पादन के तरीके और रीति रिवाज भी। ऐसे कुछ लोग हमेशा मौजूद रहे जो पुरानी पद्धति से हठपूर्वक चिपके रहना चाहते थे और चिपके रहे। परंतु हमें उसी एक एक विशिष्ट पद्धति पर ध्यान देना है, जिसका प्रभाव इतना अधिक व्यापक हो गया कि वह देश के अधिकांश हिस्सों पर लागू हो गई।'' भारतीय संस्कृति में धर्म, आध्यात्मवाद, ललित कलाएं, ज्ञान.विज्ञान, विविध विधाएं, नीति, विधि.विधान, जीवन.प्रणालियां और वे समस्त क्रियाएं और कार्य हैं जो उसे विशिष्ट बनाते हैं तथा जिन्होंने भारतीयों के सामाजिक.राजनीतिक विचारों, धार्मिक और आर्थिक जीवन, साहित्य, शिष्टाचार और नैतिकता को ढाला है। इसमें भी विकास क्रम के अनुरूप विविध संस्कृतियों के संघर्ष, मिलन और संपर्क से परिवर्तन और आदान.प्रदान तथा विविध श्रेष्ठ सांस्कृतिक तत्वों का संग्रह होता रहा है। इस संस्कृति में दो परस्पर विरोधी विशेषताएं दिखाई देती हैं- विविधता के साथ.साथ एकता। वेश.भूषा, भाषा, उपासना पद्धति, यहां के निवासियों का शारीरिक

रंग.रूप, रीति.रिवाज, जीवन स्तर, भोजन, जलवायु, भौगोलिक विशेषताएं- सभी में अधिक से अधिक भिन्नताएं दिखाई देती हैं। एक ही प्रांत, यहां तक कि एक ही जनपद अथवा नगर के भारतीय निवासियों में उतनी ही अधिक सांस्कृतिक असमानता है, जितनी भारत के विभिन्न भागों में प्राकृतिक असमानता। विविधता में एकता की प्रवृत्ति ने विभिन्नताओं से परिपूर्ण इस देश को शताब्दियों से एक सूत्र में पिरोकर रखा है और इसका सांस्कृतिक ताना.बाना ऐतिहासिक कालक्रम में विघटनकारी शक्तियों के प्रभावी होने के बावजूद भी अक्षुण्ण रह पाया है।

3.10 तकनीकी शब्दावली

जग्गुरत- बाबुल तथा अन्य स्थानों पर बनाए गए एक प्रकार के मन्दिर, जिनमें से कुछ सात सात मंजिल के थे और जिनके ठोस बाहरी भाग के चारों ओर ठोस वर्तलाकार सीढ़ियां ऊपर की ओर उठती चली गईं थीं। इनको जग्गुरत कहा जाता था। बिना कक्षों वाले मन्दिर के लिए संस्कृत शब्द है 'जरुक' , जो जग्गुरत का बिगड़ा हुआ रूप है। महाभारत में इन्हें एदुक कहा गया है। इन्हें स्तूप से समीकृत या जा सकता है।

बाबुल-बेबीलोन/ **असुरिया**- असीरिया/ **सुमेरिया-** सुमेर

ये सभी प्रचीन मेसोपोटामिया (वर्तमान ईराक) की सभ्यता से सम्बन्धित हैं।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 1.3 का उत्तर

1. (क) देखें 1.3(ख) देखें 1.3.1
2. (क) देखें 1.3 (सही) (ख) देखें 1.3 (सही)
   (ग) देखें 1.3.1 (गलत) (घ) देखें 1.3.1 (सही)

खण्ड 1.4 के उत्तर

1. 2.4
2. (क) देखें 1.4 (सही) (ख) देखें 1.4 (गलत) (ग) देखें 1.4 (सही)

खण्ड 1.5 के उत्तर

1. देखें 1.5
2. (क) देखें 1.5 (सही)

खण्ड 1.6 के उत्तर

1. देखें 1.6
2. देखें 1.6(सही)

खण्ड 1.7 के उत्तर

1. देखें 1.7

2. (क)देखें 1.7 (गलत) (ख)देखें 1.7 (सही) (ग)देखें 1.7 (सही)

खण्ड 1.8 के उत्तर

1. देखें 1.8

3.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, दिल्ली, 1973

2. ए.एल बाशम, अद्भुत भारत, हिन्दी अनुवाद, आगरा 1972

3. दामोदर धर्मानन्द कोसंबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,नई दिल्ली, पटना, 1964, 1990

4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना, 1956, 20016

5. विशुद्धानन्द पाठक,दक्षिण भारतीय संस्कृति,लखनऊ 2008

6. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, दिल्ली 1990

7. बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति , आगरा 1966

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 भारतीय संस्कृति को आप किस प्रकार समन्वयवादी मानते हैं। विवेचना कीजिए।

2 भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई चार :प्राचीन भारतीय कला की प्रमुख विशेषताएं

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताएँ

4.2.1 कला का स्वरूप

4.2.2 कला की अर्थ व्यंजना

4.2.3 अलंकरण

4.2.4 कला में अंकित विषय और जन.जीवन/विश्वास और धारणाएं

4.2.4.1 कला के प्रतीकात्मक विषय

4.2.5 अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय

4.3 ललित कलाएँ

4.3.1 वास्तुकला

4.3.1.1 स्तूप

4.3.1.2 गुफा मन्दिर और चैत्य

4.3.1.3 मन्दिर

4.3.1.4 मूर्तिकला

4.3.2 चित्रकला

4.3.3मुद्रा निर्माण कला

4.3.4 मृद्भाण्ड

4.3.5 संगीत/वाद्य/नृत्य

4.4 भारतीय कला पर विविध प्रभाव

4.5 कलाकृतियों हेतु प्रयुक्त सामग्री का प्राप्ति स्थान

4.6 सारांश

4.7 तकनीकी शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

''भारतीय कला भारतवर्ष के जीवन दर्शन, धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जनजीवन की व्याख्या कला के माध्यम से हुई है। यहाँ के लोगों का रहन.सहन कैसा था, उनके भाव क्या थे, देव तत्व के विषय में उन्होंने क्या सोचा था, उनकी पूजा विधि कैसी थी, उन्होंने कितना निर्माण किया था, इसका अच्छा लेखा.जोखा भारतीय कला में सुरक्षित है। वास्तु, शिल्प, मूर्ति, चित्र, कांस्य प्रतिमा, मिट्टी की प्रतिमाएँ, हाथी दाँत से संबन्धित कर्म, काष्ठकर्म, मणिकर्म, स्वर्ण.रजतकर्म, वस्त्र आदि के रूप में भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्रा में पाई जाती है। कला की इस प्रगति में अनेक जातियों ने योगदान किया, किन्तु इसकी मूल प्रेरणा और अर्थ.व्यंजना मुख्यतः भारतीय ही है। भारतीय कला के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय धर्म, दर्शन, और संस्कृति के साथ मिलाकर उसे देखा जाय जिसकी सामग्री वेद, पुराण, काव्य, त्रिपिटक, आगम आदि नानाविध भारतीय साहित्य में पाई जाती है।''(वासुदेवशरण अग्रवाल)

भारतीय कला यहाँ के मस्तिष्क और हस्तकौशल का सर्वोत्तम प्रमाण है। इसकी सामग्री वैसी ही समृद्ध है, जैसी भारतीय साहित्य, धर्म और दर्शन की। भारतीय कला के अवगाहन द्वारा हम यहां के शिल्प, मूर्तियों, चित्रों, संगीत, नृत्यआदि विभिन्न विशेषताओं और उनमें छिपी हुई मानसिक कल्पना एवं प्रतिभा सेभी परिचित हो सकते हैं।

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको प्राचीन भारतीय कला की विभिन्न विशेषताओं से परिचित कराना है।

इस इकाई के अध्ययन द्वारा आप समझ पाएंगे कि भारतीय कला में आध्यात्म और सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय हुआ है।

आप कला के विभिन्न विषयों एवं प्रतीकों की विविधता का विवेचन भी कर पाएंगे।

भारतीय कला के अध्येता के रूप में आप कला के स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय सन्दर्भ, रूप , शैली, अलंकरण, प्रभाव और अर्थों को अलग पहचान कर उनकी व्याख्या करने का प्रयास कर सकेंगे।

4.2 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताएँ

वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय कला का उसकी विशेषताओं के आधार पर निम्नवत कालनिर्धारण किया है- सिन्धु घाटी से लेकर नन्द वंश के पूर्व तक आद्य युग है। उसके बाद मौर्य काल से हर्ष के समय तक मध्य युग,जिसके दो भाग हो जाते हैं- एक के अन्तर्गत मौर्य, शुंग, कण्व और सातवाहन युग की महान कलाकृतियां हैं। इस पूर्व युग में कला के अंकुर भिन्न.भिन्न प्रदेशों में उभार ले रहे थे। सारनाथ, भरहुत, सांची, बोधगया, अमरावती, भाजा उसी के केन्द्र हैं। इसके उत्तरार्द्ध में प्रथम शताब्दी ई. से लेकर लगभग सातवीं शताब्दी तक अर्थात कनिष्क से हर्ष तक की कलाकृतियां आती हैं। इस युग में कला की प्रौढ़ता राष्ट्रीय स्तर पर देश के चारों कोनों में फैल जाती है। न केवल देश में किन्तु विदेशों में भी भारतीय कला का प्रभाव दिखाई देता है। इन सात सौ वर्षों में भारत में कला, साहित्य, दर्शन और जीवन का सर्वोच्च विकास हुआ और पुराणों में धारणा

बनी कि-पृथ्वी में भारत के समान कोई देश नहीं है। (न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः'!) हर्ष युग के बाद भारतीय कला का चरम युग आता है, जिसे मध्यकाल (700-1200) भी कहते हैं। उसके भी दो भाग हैं, पूर्व मध्यकाल (700-900ई.) और उत्तर मध्यकाल (900-1200 ई.)।

4.2.1भारतीय कला का स्वरूप

प्राचीन भारतीय कला को उसकी विशेषताओं के आधार पर धार्मिक और लौकिक दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ए.एल. बाशम के अनुसार ''प्राचीन भारत के लगभग समस्त कलात्मक अवशेषों का स्वरूप धार्मिक है अथवा उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों से हुई थी। धर्मनिरपेक्ष कला भी अवश्य ही थी, क्योंकि हमें साहित्य से ज्ञात होता है कि राजा लोग सुन्दर भित्ति चित्रों एवं मूर्तियों से सुसज्जित उत्तम प्रासादों में निवास करते थे। यद्यपि ये सब नष्ट हो गए हैं। अधिकतर भारतीय एवं यूरोपीय विशेषज्ञों ने भारतीय कला के धार्मिक एवं रहस्यात्मक स्वरूप पर एक समान बल दिया है। प्रारंभिक मूर्तिकला के यथार्थवाद एवं लौकिकता को स्वीकार करते हुए अधिकांश आलोचकों ने हमारे समय के कलात्मक अवशेषों में वेदान्त अथवा बौद्ध धर्म के सत्यों को पढ़ा है और उन्हें गहन धार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है।''

कुछ अवशेष तो ऐसी धार्मिक भावना से परिपूर्ण हैं, जो संसार में दुर्लभ है, परंतु वस्तुतः प्राचीन भारत की कला में उस काल का पूर्ण एवं क्रियात्मक जीवन ही मुख्य रूप से प्रतिबिम्बित है। प्रारम्भ में प्रत्यक्ष रूप में जैसे कि भरहुत, सांची और अमरावती में और फिर कुछ आदर्शवादिता के साथ जैसे अजन्ता में और अन्त में मध्ययुगों में अनेक मन्दिरों में निर्मित दैवी एवं मानवी असंख्य प्रतिमाओं के रूप मेंएक अत्यधिक चेतन शक्ति है जो हमें परलोक की अपेक्षा इसी लोक का अधिक स्मरण कराती है।मन्दिरों के शिखर यद्यपि लम्बे हैं पर वे दृढ़ता से भूमि पर आधारित हैं। आदर्श रूप अनियमित रूप से लम्बे न होकर नाटे तथा गठीले हैं। देवता एक समान युवा और सुन्दर हैं। उनके शरीर स्वस्थ एवं परिपुष्ट हैं जो प्रायः यूरोपीय मतानुसार नारीवत प्रतीत होते हैं। कभी-कभी वे क्रूर अथवा क्रोधपूर्ण मुद्रा में चित्रित किए जाते हैं, परन्तु सामान्य रूप से मुस्कुराते हैं तथा उनमें दुख का चित्रण बहुत ही कम है। नृत्य करते हुए शिव के अतिरिक्त अन्य पवित्र प्रतिमाओं को बैठे हुए दिखाया गया है। समस्त भारतीय मन्दिरों की मूर्तियों में, चाहे हिन्दू हों, बौद्ध हों या जैन सदैव कम वस्त्रों से युक्त तथा लगभग भारतीय सौन्दर्य के स्तर के अनुरूप नारी रूप का उपयोग साज-सज्जा की सामग्री के लिए किया गया है।

प्राचीन भारत की कला उसके धार्मिक साहित्य से विलक्षण रूप में भिन्न है। एक ओर जहां साहित्य व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों , ब्राह्मणों, मुनियों और सन्यासियों का कार्य है तो दूसरी ओर कला मुख्य रूप से उन धर्मनिरपेक्ष कलाकारों के हाथ से निःस्रित हुई, जिन्होंने यद्यपि पुरोहितों के आदेश तथा बढ़ते हुए मूर्ति निर्माण सम्बन्धी शास्त्रीय मानकों के अनुसार कार्य किया, फिर भी वे उस संसार से प्रेम करते थे जिसे वे इतनी गहराई से जानते थे, जो प्रायः उन धार्मिक रूपों में देखी जाती है, जिनमें उन्होंने आत्माभिव्यक्ति की। बाशम का कहना है कि '' हमारे विचार में भारतीय कला की सामान्य प्रेरणा परमात्मा की खोज में उतनी नहीं है, जितनी

कि कलाकार द्वारा प्राप्त संसार के आनन्द में तथा पृथ्वी पर जीवित प्राणियों के विकास के समान नियमित और चेतन शक्ति युक्त विकास और गति की भावना में है।'' वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ''भारतीय विचारधारा के अनुसार रूप वही अच्छा है जो अपने प्रतिरूप का अधिकतम परिचय दे सके। भारतीय शिल्पी ने व्यक्तियों की प्रतिकृति या रूपों से मोह करना नहीं सीखा। उसके शिल्प का निर्माण बहुधा उस भाव जगत में होता है, जिसमें वह सर्वरूप का ध्यान करता है। युग विशेष में स्त्री.पुरुषों के प्रतिमानित सौन्दर्य का ध्यान करके भारतीय शिल्पी उसे चित्र या शिल्प में प्रयुक्त करता है। व्यक्ति विशेष के रूप को वह अपने चित्र में नहीं उतारता। वह समाज में आदर्शभूत सब रूपों का एक बिम्ब कल्पित करता है। मथुरा की यक्षी प्रतिमाएं स्त्री विशेष की प्रतिकृति नहीं , नारी जगत की आदर्श प्रतिकृति हैं, जो उस देश और उस काल में शिल्पी के मन में निष्पन्न हुआ, वही इन रूपों में मूर्त हुआ है। इसी प्रकार बुद्ध मूर्ति देश काल में जन्मे हुए ऐतिहासिक गौतम की प्रतिकृति नहीं है। वह तो दिव्य भावों से सम्पन्न रूप है। योगी के अध्यात्म गुणों से युक्त पुरुष की जो आदर्श आकृति हो सकती है, वही बुद्ध की मूर्ति है। आदर्श मानव का रूप ही भारतीय शिल्प और चित्र में पूजित हुआ है। गुप्त कला में बाह्य रूप की पूर्ण मात्रा को अनुप्राणित करने वाला जो जो अर्थसौन्दर्य है, वह अद्भुत या विलक्षण रूप प्रस्तुत करता है। कलाकृतियों में जो रमणीयता, सजीवता और आकर्षण है, उसमें मन दिव्य भावों के लोक में विलक्षण आनन्द, शान्ति और प्रकाश का अनुभव करता है।''

4.2.2 भारतीय कला की अर्थ व्यंजना

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार कला के चार अंग माने गए हैं- (1) रस (2) अर्थ (3) छन्द (4) रूप (काव्य के लिए रूप के स्थान पर शब्द का प्रयोग होता है।) भारतीय कला में इन सभी तत्वों का समावेश हुआ है।

रस कला की आत्मा है। यह वह अध्यात्म गुण है जिसमें रचना का स्थायी मूल्य निहित रहता है। मनुष्य के मन में जो अनेक प्रकार के भाव जन्म लेते हैं, उन्हें ही कला और काव्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। मन में रस या तन्मयता की अनुभूति होने पर कवि या कलाकार उस अर्थ या विषय को चुनते हैं, जिसके द्वारा रस या भाव स्फुटित होते हैं। भारतीय कला की अर्थ संबन्धी विशेषता के अन्तर्गत विविध देव और देवियों का विस्तार है जो विश्व की दिव्य और भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। इन देव.देवियों के विषय में वेदों और पुराणों में अनेक आख्यान आए हैं। उनका उद्देश्य ज्योति और तम, सत् और असत्, अमृत और मृत्यु के द्वन्द्व की व्याख्या करना है। प्राचीन परिभाषा में इस द्वन्द्व को दैवासुरम कहा गया है अर्थात देवों और असुरों के शाश्वत संग्राम की परिकल्पना। बुद्ध, महावीर आदि महापुरुष और इन्द्र, शिव, विष्णु आदि देव प्रकाश और सत्य के प्रतीक हैं। इसके विपरीत वृत्र, मार, महिष, त्रिपुरासुर और तारकासुर असत् या अन्धकार के प्रतीक हैं। भारतीय कला का सांस्कृतिक उद्देश्य जानने के लिए उसके अर्थ का परिचय आवश्यक है। अर्थ की जिज्ञासा हमें कला के प्रतीकात्मक स्वरूप के समक्ष ले जाती है, जैसे चक्र, पूर्णघट, स्वस्तिक, पद्म, श्रीलक्ष्मी,

अष्टमंगल अथवा अष्टोत्तरशत मंगलचिन्ह एवं गरुड़, नाग, यक्ष आदि कला के प्रतीक द्वारा कलासंबन्धी अध्ययन में सहायक हैं।

4.2.3कला में अलंकरण

वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार ''अलंकरण या साज.सज्जा के अभिप्राय तीन प्रकार के हैं- 1. रेखाकृति प्रधान 2. पत्र-वल्लरी प्रधान और 3. ईहामृग या कल्पनाप्रसूत पशु-पक्षियों की आकृतियां। इन अभिप्रायों के मूल रूप प्राकृतिक जगत से लिए गए हैं, किन्तु कलाकारों ने अपनी कला के बल पर उन्हें अनेक रूपों में विकसित किया है। कहीं गौण आकृति के रूप में, कहीं प्रतिमा को चारों ओर से सुसज्जित करने के लिए, कहीं रिक्त स्थान को रूपाकृति से भर देने के लिए अलंकरणों का विधान किया गया है। उनका उद्देश्य कला में सौन्दर्य की अभिवृद्धि है। किन्तु शोभा के अतिरिक्त अभिप्रायों के दो उद्देश्य और थे- एक तो आरक्षा या मंगल के लिए, दूसरे विशेष अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए। इन अलंकरणों को भारतीय परिभाषा में मांगल्य चिन्ह कहा गया है। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार शून्य या रिक्त स्थान में असुरों का वास हो जाता है, किन्तु यदि गुहादिक आवास या देवगृह में मांगलिक चिन्ह लिखे जायँ तो देवी श्री और रक्षा उस स्थान में अवतीर्ण होती हैं। स्वस्तिक, पूर्णघट या कमल के फुल्ले (पदुमक) को जब हम देखते हैं तो उनसे नाना प्रकार के मांगलिक अर्थ मन में भर जाते हैं। उदाहरण के लिए एक गजचिन्ह इन्द्र के श्वेत ऐरावत का द्योतक है, अश्व उच्चैःश्रवा अश्व का प्रतीक है, जो समुद्रमंथन से उत्पन्न हुआ था और स्वर्गलोक का मांगलिक पशु है। सूर्य ही वह विराट अश्व है जो काल या संवत्सर के रूप में सबके जीवन में प्रविष्ट है। इस प्रकार भारतीय कला के सुन्दर अभिप्राय धर्म और संस्कृति की पृष्ठभूमि में सार्थक हैं। गुप्त युग में पत्रलता की सरल और पेचीदा आकृतियां बनाने की बहुत प्रथा थी। उनके कई अच्छे नमूने धमेख स्तूप के आच्छादन शिलापट्टों पर सुरक्षित हैं। इसका मूल भाव यही था कि जो प्रकृति की विराट प्राणात्मक रचना पद्धति है, उसी के अंग.प्रत्यंग पशु.पक्षी, वृक्ष और फल.फूल, यक्ष, वामन, कुब्जक, मनुष्य आदि हैं। बाणभट्ट ने लिखा है कि रानी विलासवती के प्रसूतिगृह की भित्तियों को पत्रलता की मांगलिक आकृतियों से भर दिया गया था, जिन पर दृष्टि डालने से रानी के नेत्रों को सुख मिलता था और जिनके द्वारा आसुरी शून्यता से उसकी रक्षा होती थी। गुप्तकालीन कला, शिल्प, चित्र और स्थापत्य इस प्रकार के अलंकरणों से बहुत भरे हुए हैं। कुषाणकाल की कला ईहामृग या विकट आकृति के पशुओं से भरी हुई है, क्योंकि इस प्रकार के ऐंठे गैंठे शरीर वाले पशुओं में शकों की स्वयं बहुत रुचि थी।''

4.2.4कला में अंकितविषय और जन जीवन/ विश्वास और धारणाएं

भारतीय कला की एक विशेषता उसमें अंकित सांस्कृतिक जीवन की सामग्री है। राजा और प्रजा दोनों के ही जीवन का खुल कर चित्रण किया गया है। कला में भारतीय जीवन और रहन.सहन की स्पष्ट छाप है। भारतीय वेशभूषा, केशविन्यास, आभूषण, शयनासन आदि की सामग्री चित्र, शिल्प आदि में मिलती है। छोटी मिट्टी की मूर्तियां भी इस विषय में सहायक हैं। उनमें तो सामान्य जनता को भी स्थान मिला है। भरहुत, सांची,

अमरावती, नागार्जुनीकोण्डा आदि के स्तूपों पर इसकी छाप है। भारतीय कला सदा जीवन को साथ लेकर चली है।

समय.समय पर जो धार्मिक आन्दोलन हुए और जिन्होंने लोकजीवन पर गहरा प्रभाव डाला, उनसे भी कला को प्रेरणा मिली और उनकी कथा कला के मूर्त रूपों में सुरक्षित है। इस विषय में कला की सामग्री कहीं तो साहित्य से भी अधिक सहायक है। यक्षों और नागों का बहुत अच्छा परिचय भरहुत, सांची और मथुरा की कला में मिलता है। इसी प्रकार उत्तरकुरु के विषय में जो लोकविश्वास था, उसका भी उत्साहपूर्ण अंकन भाजा, भरहुत, सांची आदि में हुआ है। मिथुन, कल्पवृक्ष, कल्पलता आदि अलंकरण उसी से सम्बन्धित हैं जिनका वर्णन जातक, महाभारत, रामायण आदि में आया है। दुकूल वस्त्र, पनसाकृति पात्रों में भरा हुआ उत्तम मधु, आम्राकृति पात्रों में भरा हुआ लाक्षारस, सिर, कान, ग्रीवा, बाहु और पैरों के आभूषण एवं स्त्री पुरुषों की मिथुन मूर्तियां- सबका कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में वह अपनी इच्छा के अनुसार फूलता.फलता है।इसी प्रकार अजंता के गुफा चित्रों को देखें तो इनका विषय सर्वथा धार्मिक है। इनमें अंकित करुणा बुद्ध की भावना का मूर्त रूप है। चित्रकारों ने मनुष्यों के रूपों के भेद और उनका अभिजात्य बड़ी कुशलता से चित्रित किया है, अर्थात भिक्षुक, ब्राह्मण, वीर सैनिक, सुन्दर राजपरिवार, विश्वसनीय कंचुक और प्रतिहार, निरीह सेवक, क्रूर व्याध, निर्दयी वधिक, शांत तपस्वी, साधुवेशधारी धूर्त, परिचारिका, विरहाकुल राजकुमारी, माता.पुत्र, आदि के भिन्न.भिन्न मुख मुद्राओं आदि की कल्पना उन्होंने बड़ी मार्मिकता से की है। प्रेम, लज्जा, हर्ष, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, घृणा, भय, आश्चर्य, चिन्ता, विरक्ति, शान्ति आदि भाव भी बहुत खूबी से दिखाए गए हैंरेखाओं और वृत्तों की ज्यामितीय आकृतियों का स्थान.स्थान पर उपयोग किया गया है, किन्तु प्रधानता कमल की है, जो अनेकरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है। आप इसी इकाई के खण्ड 3.3.1.4 में मूर्तिकला के अन्तर्गत भी कला के विषयों का विस्तार से अवगाहन करेंगे।

3.2.4.1 कला के प्रतीकात्मक विषय

भारतीय कला के जो वर्ण्य विषय हैं, वस्तुतः उनका महत्व सबसे अधिक है। उनमें भारतीय जीवन और विचारों की ही व्याख्या मिलती है। इसकी एक विशेषता यह थी कि सामान्य जनता के धार्मिक विश्वास कला में बुद्ध, महावीर, शिव और विष्णु के उच्चतर धर्मों के साथ मिलकर परिगृहीत हुए। भारतीय धर्म में एक ओर बुद्ध, शिव-रुद्र या नारायण-विष्णु का तत्वज्ञान भी है और दूसरी ओर उन अनेक देवताओं की पूजा मान्यता भी है जो मातृभूमि से संबन्धित थे,जैसे- यक्ष, नाग,नदी, सागर, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, आदि। देवपूजा के वे प्रकार जैसे लोक में थे वैसे ही कला में भी अपनाए गए। इस प्रकार विशिष्ट और सामान्यजन दोनों की मान्यताओं का चित्रण भारतीय कला में हुआ है। यहप्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक युगों तक विभिन्न सभ्यताओं में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों, अभिप्रायों और विषयों को लेकर चली है। विभिन्न धर्मानुयायी इच्छानुसार कई चिन्हों को एक एक प्रतिमा या मूर्ति में स्वीकार करके पुनः उनके महात्म्य का वर्णन करते थे। विभिन्न देवी.देवताओं के साथ जुड़ जाने से प्रतीक चिन्हों का नया महत्व हो जाता था। उदाहरण के लिए

वैदिक सुपर्ण विष्णु का वाहन गरुड़ बन गया, चक्र बुद्ध और महावीर का धर्मचक्र और विष्णु का सुदर्शन चक्र हो गया।इन प्राचीन मांगलिक प्रतीकों के अध्ययन से भारतीय कला के अनेक रूपों को समझा जा सकता है। आपके अध्ययन की सुविधा के लिए इनमें से कुछ का उल्लेख निम्नवत है-

(1)बुद्ध- कला में लोकोत्तर बुद्ध का जीवन लिया गया है और उसका घनिष्ठ सम्बन्ध उन प्रतीकों से था जो मानवीय अर्थों से ऊपर दिव्य अर्थों की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए तुषित स्वर्ग से बुद्ध का अधोगमन, श्वेत हस्ति के रूप में मायादेवी को स्वप्न और गर्भप्रवेश , माता की कुक्षि से तिरश्चीन जन्म, सप्तपद, शीतोष्ण जलधाराओं से प्रथम स्नान, बोधिवृक्ष, वानरों द्वारा मधु का उपहार, लोकपालों द्वारा अर्पित चार पात्रों का बुद्ध द्वारा एक पात्र बनाया जाना, अग्नि और जल सम्बन्धी चमत्कार का प्रदर्शन, धर्मचक्रप्र्रवर्तन, तैंतीस देशों के स्वर्ग में माता को धर्मोपदेश, सोने, चांदी और तांबे की सीढ़ियों से पुनः पृथ्वी पर आना आदि कला के अंकन बुद्ध के स्वरूप के विषय में प्रतीकात्मक कल्पना प्रस्तुत करते हैं, जिसका संबन्ध ऐतिहासिक बुद्ध से न होकर लोकोत्तर अर्थात बुद्ध के दिव्य रूप से है। विष्णु और शिव की दिव्य लीलाओं के समान ही इन लीलाओं का आकलन किया गया। महायान बौद्ध धर्म में इन लीलाओं का विस्तार किया गया।

(2)शिव - सिन्धुघाटी से लेकर ऐतिहासिक युगों तक लिंगविग्रह या पुरुषविग्रह के रूप में शिव का अंकन पाया जाता है। इन दोनों का विशेष अर्थ भारतीय धर्म और तत्वज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। सिंधु घाटी में योगी और पशुपति के रूप में रुद्र शिव कई मुद्राओं पर अंकित मिले हैं। यजुर्वेद के शतरुद्रिय अध्याय 16 के अनुसार रुद्र शिव की पूजा देश के उत्तर.पश्चिम भाग में उस समय बहुत प्रचलित थी। एक ओर लोकवार्ता में प्रचलित शिव के स्वरूपों को ग्रहण किया गया, किन्तु दूसरी ओर उनके साथ नए.नए अर्थों को जोड़कर उन्हें धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नई प्रतिष्ठा दी गई। कला में शिव के निम्न रूप मिलते हैं- पशुपति, अर्द्धनारीश्वर, नटराज, कामान्तक, गंगाधर, हरिहर, यमान्तक, चन्द्रशेखर, योगेश्वर, नन्दीश्वर, उमामहेश्वर, ज्योतिर्लिंग, रावणानुग्रह, पंचब्रह्म, दक्षिणमूर्ति, अष्टमूर्ति, एकादशरुद्र, मृगव्याध, मृत्युंजय आदि।

(3)देवता - भारतीय कला देवत्व के चरणों में एक समर्पण है।यूप, स्तूप एवं प्रासाद या देवगृह में सर्वत्र देवता निवास करते हैं। स्तूप की हर्मिका, मन्दिर का गर्भगृह एवं यूप का ऊपरी भाग ये तीनों देवसदन हैं।श्री-लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र, वामन- विराट, त्रिविक्रम विष्णु , सुदर्शन चक्र, अर्धनारीश्वर, कुमार, गणपति, अदिति, समुद्र, हिरण्यगर्भ, नारायण, दक्ष, अग्नि, ब्रह्म, वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विन, गण देवता, सप्तर्षि, नारद, गन्धर्व, अप्सरा, कुम्भाण्ड, नाग, यक्ष, नदी, देवता, सिद्ध, विद्याधर आदि प्रतीक भारतीय संस्कृति व कला में वैदिक युग की जीवन विधि या साहित्य से अपनाए गए।

(4) धार्मिक एवं दार्शनिक भाव- स्वस्तिक, दैवासुर संग्राम, त्रिविक्रम, ज्योतिर्लिंग, वाराह द्वारा पृथ्वी का समुद्र्र से उद्धरण, सप्तपदी, तिरश्चीन निर्गमन(इन्द्र, बुद्ध और स्कन्द का मातृकुक्षि से तिर्यक जन्म), अग्नि स्कन्ध=ज्योतिर्लिंग (आग का खम्भा) आदि।

(5) पशु पक्षी- एकश्रृगं पशु , महावृषभ, छोटे सींगों वाला नटुआ बैल, महिष, गैंडा, व्याघ्र, हाथी, खरगोश, हिरन, मत्स्य, कूर्म, वराह, मकर, सिंह, नाग, अज, नकुल, व्याल आदि विकट ईहामृग, आदि। धर्म सम्बन्धी काल्पनिक पशु (उदाहरणार्थ एक मुद्रा पर अंकित पुरुष पशु, जिसके पैरों में खुर, सिर पर सींग और पीछे पूंछ है, जो एक काल्पनिक पशु से , जिसके शरीर का अधिकांश व्याघ्र जैसा है, कुश्ती कर रहा है) आदि (हड़प्पा सभ्यता की मुहरों पर अंकित)।दो सिरों वाला बैल, नन्दी, अनन्त (सहस्रशीर्षा शेषनाग), वराह, वृषभधेनु(गाय बैल का जोड़ा), देवजात अश्व,ऐरावत (तुषित स्वर्ग से उतरता हुआ श्वेत हस्ति, जो बुद्ध की माता की कुक्षि में प्रविष्ट हुआ) हंस, गरुड़, सारस आदि।

(6) मानव- मुनि, अष्टकन्याएं, अष्टदिक्कुमारिकाएं, चक्रवर्ती, सात बहिनें, नर (कुबेर के विशेष वाहन), शिशु, देवयोनि।

(7) अर्धदेव-नाग, यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, सुपर्ण, कुम्भाण्ड, लोकपाल, अप्सराएं, वृक्षकाएं, चतुर्महाराजिकदेव।

(8) विविध वस्तुएं और पदार्थ-वेदिका, पूर्णकुम्भ, चक्र, यूप, स्तम्भ, इन्द्रयष्टि (त्रिभुजांकित ध्वज), वेदिका, त्रिशूल, वज्र, केतु (ध्वज), मण्डल (कुण्डल), चमू (बड़ा घट), मांगलिक रत्न, मधुकोश (कपियों द्वारा बुद्ध को प्रदत्त शहद भरा कटोरा), इन्द्रासन (स्वर्ग में इन्द्र का महान आसन), पात्र, मणि, भद्रमणि, कौस्तुभ, शंख, मुक्ता, अष्टनिधिमाला, कण्ठा, हार, छत्र, रथ, विमान, शकट, पर्वत, नदी, वारुणी, घट, पूर्णघट, कार्षापण, मेखला, चामर, आदर्श (दर्पण),यूप(स्तंभ), स्थूणराज(बड़ा खम्भा), स्तूप, देवगृह (या विमान), कुटी या पर्णशाला, कपिशीर्षक (कंगूरे), रत्न, मुकुट, वीणा, वंशी, मृदंग, मजीरे, देववाद्य आदि।

(9) वृक्ष, लता, वनस्पति और पुष्प पौधे- व्याल युक्त पीपल, पद्म या पुष्कर, कल्पवृक्ष, कल्पलता, पीपल, वट, माला, मुचकुन्द, ताल, पुण्डरीक, आदि।

(10) अन्य- मिथुन (नरनारीमय अलंकरण), सुमेरु पर्वत, द्यावापृथ्वी, विमान (देवगृह), पुर, देवसदन (बौद्ध स्तूपों की हर्मिका), गुहा आदि।

(11) शस्त्र आदि- त्रिशूल, शूल, वज्र, चक्र या रथांग, धनुष, बाण, हल, मूसल, गदा, खड्ग, चर्म, ढाल, कवच आदि।

(12) अभिप्राय और प्रतीक- स्वस्तिक, श्रीवत्स, श्रीचक्र, श्रीवृक्ष, त्रिरत्न, नन्दिपद, चक्र आदि।

4.2.5 अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय

प्राचीन भारतीय कला में आध्यात्म और सौन्दर्य का सम्मिश्रण दिखाई देता है। मनुष्य की आधिभौतिक प्रगति और आनन्द के साथ.साथ उसकी आध्यात्मिक प्रगति पर भी बल दिया गया। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ''भारतीय कला के दोनों पक्ष इष्ट थे, अर्थात सुन्दर वस्तुओं का बाह्य रूप एवं उनका आन्तरिक अर्थ। कला का उद्देश्य जीवन के लिए है। वह उद्देश्यहीन साधना नहीं। दिव्यावदान के अनुसार कला के अभिप्राय शोभा एवं जीवनरक्षा दोनो के लिए होते हैं।.....प्लेटो के सौन्दर्यतत्व की ही भांति भारतीय सौन्दर्यतत्व में

अर्थ का सर्वोपरि महत्व है। बाह्य रूप का भी निजी महत्व है, किन्तु वह भावों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। अर्थ कला का प्राण है। कला के रूपों के मूल में छिपे हुए सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण और गंभीर बनती है। अध्यात्म के बिना केवल सौन्दर्य सौभाग्यविहीन है। केवल रूप को कवि ने निन्दित कहा है, किन्तु अध्यात्म अर्थ के साथ वही पूजनीय बन जाता है। कलाकार ध्यान और मन की शक्ति से ही कला के सौन्दर्य का पूरा फल प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक मूर्ति का आदि अन्त धार्मिक या आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में है, अर्थात वह देवतत्व की प्रतीक मात्र है।'' अधिकांश भारतीय धार्मिक साहित्य में सन्यास एवं आत्मनिषेध के विभिन्न रूपों की प्रशंसा की गई है, परंतु मूर्तियों में प्रस्तुत सन्यासी सामान्यतः पर्याप्त रूप से भोजन किए हुए एवं प्रसन्न लगते हैं। उदाहरण के लिए मैसूर में श्रवणबेलगोला की चट्टान काटकर बनाई गई गोमतेश्वर की प्रतिमा को देखा जा सकता है। वे ध्यान की कायोत्सर्ग मुद्रा में पृथ्वी पर पैर जमाए , हाथों को नीचे किए जो शरीर को स्पर्श नहीं करते , पूर्ण रूप से सीधे खड़े हैं तथा मृदु मुस्कान से युक्त हैं। कहा जाता है कि सन्त ध्यान में इतने समय तक निमग्न खड़े रहे कि उनके गतिहीन चरणों के चारों ओर लताएं लिपट गईं और ये लताएं मूर्ति में दिखाई गई हैं। परंतु ये लताएं यद्यपि उनकी पवित्रता चित्रित करने के अभिप्राय से हैं, फिर भी वे इसी बात पर बल देती हैं कि वह इसी पृथ्वी का प्राणी है, जिसे पृथ्वी पीछे खींचती है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) प्राचीन भारतीय कला का स्वरूप

   (ख) प्राचीन भारतीय कला में अंकित विषय

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

   (क) भारतीय कला का स्वरूप पूर्णतः धार्मिक है।

   (ख) भारतीय कला में अध्यात्म और सौन्दर्य का समन्वय हुआ है।

4.3 ललित कलाएं

भारत में ललित कलाओं के विकास के पीछे समय.समय पर यहां की धार्मिक स्थितियों और धार्मिक भावनाओं की समसामयिक छाप स्पष्ट दिखाई देती है। मौर्य और मौर्योत्तर युग में भारत के अधिकतर भागों में बौद्ध धर्म पूरी तरह फल.फूल रहा था और उत्तरी तथा पूर्वी दक्कन में उस काल की जो प्रतिनिधि रूपावलियां प्राप्त होती हैं, वे बुद्ध, बुद्ध के जीवन की घटनाओं और बौद्ध विश्वासों के इर्द.गिर्द ही घूमती हुई दिखाई देती हैं। वास्तुकला को एक ललित कला माना गया है। चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, संगीत तथा नाट्य अन्य मुख्य ललित कलाएं हैं।

4.3.1 वास्तुकला

वास्तुकला को उसकी विशेषताओं के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- धार्मिक वास्तु और लौकिक वास्तु। मन्दिर धार्मिक वास्तु के मुख्य प्रतीक हैं। प्राचीन साहित्य तथा पुरातात्विक अवशेषों से कला के लौकिक पक्ष की पुष्टि होती है। ''ग्रामों और पुरों के सन्निवेश तथा विभिन्न प्रकार के भवन, सड़कों, दुर्गों आदि के निर्माण लौकिक स्थापत्य के अन्तर्गत थे।रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन साहित्य, मानसार, समरांगणसूत्रधार आदि ग्रंथों में नगर या पुर निर्माण के विस्तृत विवरण मिलते हैं (कृष्णदत्त बाजपेयी, भारतीय वास्तुकला का इतिहास)। प्रागैतिहासिक वास्तुकला में सिन्धु घाटी सभ्यता के ईंटों से निर्मित भवनों के ध्वंसावशेष, सड़कें, लोथल का बन्दरगाह, मोहेंजोदारो का बृहत् स्नानागार एवं परकोटे, गोपुरद्वार और अट्टालिकाओं से युक्त दुर्ग, हड़प्पा का अन्नागार आदि प्रमुख हैं। हड़प्पा सभ्यता के बाद एक अन्तराल मिलता है। राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार ''325 ई. पू. के उत्तरकाल के अवशेष संख्या में कम और अन्य ऐतिहासिक सामग्री की अपेक्षा महत्व में भी न्यून हैं। वास्तु के अवशेषों की कम संख्या का कारण यह है कि उनकी निर्माण सामग्री विनाशशील थी, क्योंकि उनमें से अधिकांश मिट्टी, लकड़ी, चूना, बांस या लट्ठों से बनाए जाते थे। वैदिक यज्ञों के लिए आवश्यक यज्ञवेदी और यज्ञशालाओं के निर्माण के साथ स्थापत्य का मूलारंभ हुआ''।वैदिक साहित्य में वास्तुकला संबन्धी अनेक शब्द मिलते हैं, जैसे स्कम्भ (स्तंभ), गृह, महाशाला(उपनिषद), सहस्रस्थूण घर(ऋग्वेद) आदि। प्राचीन पाटलिपुत्र या कुमराहार में चन्द्रगुप्त सभा के जो अवशेष मिले हैं, उनमें अस्सी खम्भों वाला मण्डप लगभग वैदिक साहित्य के शतभुजी सदन के अनुरूप है। इनमें अन्तर यह है कि ये खम्भे मौर्यकालीन चमकीले पत्थर के हैं। मण्डप के दक्षिण की ओर सात काष्ठ मंच भी प्राप्त हुए हैं। मौर्य युगीन काष्ठ निर्मित राजप्रसाद एवं ठोस पाषाण निर्मित स्तंभ कला के उत्तम नमूने हैं, पर अवशेष रूप में हैं।

अशोककालीन कला का उत्कृष्ट नमूना हम स्तंभों के रूप में देखते हैं। फाहियान ने छः तथा ह्वेनत्सांग ने पन्द्रह स्तंभों का उल्लेख किया है। इन स्तंभों के पाँच भाग हैं- 1. ऊपर की फुनगी पर धर्मचक्र 2. चार सहपृष्ठ सिंह 3. चार चक्र और चार पशुओं से अंकित गोल अंड 4. पद्मपत्र युक्त पूर्णघट और 5. ऊर्ध्व यष्टि। इनकी रचना में एक ऊँची मध्य यष्टि या डंडी और ऊपर शीर्षक लगाया गया है। लाट की ऊँचाई 40 से 50 फुट के लगभग है। लाट के ऊपर पशु की आकृति का शीर्षक है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार '' रामपुरवा के सिंहशीर्षक स्तंभ और सांची के स्तंभ तक पहुंचते-पहुंचते शिल्पियों के हाथ मंज गए थे । उसके बाद सारनाथ के सिंह स्तंभ में शिल्पियों ने अपनी कला की पराकाष्ठा प्राप्त कर ली।'' इस संबन्ध में मार्शल ने लिखा है '' ईसवी शती पूर्व के संसार में सारनाथ के सिंह स्तंभ जैसी श्रेष्ठ कलाकृति कहीं नहीं मिलती। शिल्पी ने समझ बूझकर सिंहों के निर्माण में ऐसी गुणवत्ता भर दी है कि वे पूरे स्तंभ का अविभाज्य अंग जान पड़ते हैं।''

स्तूप, गुफा मन्दिर और चैत्य तथा विभिन्न कालों में निर्मित मन्दिरों की कला के अध्ययन से आप प्राचीन भारतीय वास्तुकला की विशेषताओं को समझ सकते हैं।

4.3.1.1 स्तूप

स्तूप का प्रारंभ शव को गाड़ने वाले मृत्तिका निर्मित के टीले के रूप में हुआ, जिसका स्थानीय जनता द्वारा आदर होता था। प्राचीन भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में बुद्ध के सम्मान में स्तूप निर्माण हुआ। स्तूप दो प्रकार के हैं- एक तो स्मारक के रूप में ईंट और पत्थरों के बने ठोस ढांचे, जो बुद्ध या महावीर के जीवन की किसी घटना के किसी स्मारक में खड़े किए गए थेऔर दूसरे अस्थि संचायक अन्दर से खोखले आकार के स्तूप, जहां अवशेष रखे जाते थे। प्रारंभिक स्तूप विशाल गोलार्द्ध गुम्बदों के रूप में थे, जिनमें एक केन्द्रीय कक्ष में बुद्ध के स्मारक चिन्ह प्रायः सुन्दरता से स्फटिक जड़ित एक छोटी मंजूषा में रखे रहते थे। स्तूप का हीर कच्ची ईंट का था और बाहरी भाग पक्की ईंटों का, जिस पर पलस्तर की गहरी तह होती थी। स्तूप के ऊपर काष्ठ अथवा पाषाण का छत्र रहता था और वह लकड़ी की चाहरदीवारी से घिरा रहता था, जिसमें विधिपूर्वक प्रदक्षिणा के लिए स्थान रहता था। अब तक मिले हुए स्तूपों में नेपाल की सीमा में लगा हुआ ईंटों से निर्मित पिपरहवा का स्तूप सबसे प्राचीन है। इसके भीतर की मंजूषा पर यह लेख उत्कीर्ण था ''भगवान बुद्ध की शरीर धातुओं का यह पवित्र स्मारक शाक्यों ने , उनके भ्राताओं ने अपनी भगिनी और पुत्र दाराओं के साथ मिलकर बनवाया।''शुंगकालीन स्तूपों में भरहुत और और सांची उल्लेखनीय हैं। भरहुत स्तूप अपनी मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है। 1873 में जब कनिंघम ने उसे देखा तो लगभग पूरा स्तूप नष्ट हो चुका था। इसकी तोरण वेदिका पर लगभग 20 जातक दृश्य, 6 ऐतिहासिक दृश्य, 30 से ऊपर यक्ष-यक्षी, देवता, नागराजाओं आदि की कढ़ी हुई बड़ी मूर्तियां और अनेक प्रकार के वृक्ष और पशुओं की मूर्तियां हैं। इनमें से बहुतों पर उनके नाम खुदे हैं। इनके अतिरिक्त नौका, अश्वरथ, गोरथ और कई प्रकार के वाद्य, कई प्रकार की ध्वजाएं तथा अन्य राजचिन्ह अंकित हैं। सांची का स्तूप वास्तुविद्या के एक उत्कृष्ट अवशेषों में से है। इसके द्वार प्रवेशों की एक प्रमुख विशेषता इसके चार तोरण द्वार हैं। स्तूप में बुद्ध के जीवन की चार घटनाएं, यक्ष मूर्तियां, पशु पक्षियों की मूर्तियां और फूल पत्तियों के अंकन हैं। बुद्ध के जीवन दृश्यों में उनका जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन और महापरिनिर्वाण हैं। विशुद्धानन्द पाठक ने लिखा है कि ''सांची के स्तूप के निर्माण हेतु दक्षिणापथ से प्रशिक्षित कारीगर बुलाए गए थे, इसके आभिलेखिक प्रमाण भी प्राप्त हैं।''स्तूप की हर्मिका के ऊपर निर्मित छत्र के संबन्ध में मार्शल ने लिखा है कि ''किसी भी देश के शिल्प कर्म में इससे बढ़कर उत्तम काम नहीं पाया गया।'' धीरे.धीरे स्तूपों की वास्तुकला अधिक अलंकृत होती चली गई। आन्ध्र सातवाहन युग के स्तूपों में अमरावती और नागार्जुनीकोण्ड के स्तूप प्रमुख हैं। आन्ध्र स्तूपों की तीन विशेषताएं थीं- संगमरमर जैसा मक्खन के रंग का श्वेत पाषाण, अनेक प्रकार से उत्कीर्ण शिलापट्टों पर रूप और अलंकरण तथा धातुगर्भ से निकलते हुई मंजूषा सदृश चार आयक(आयागपट्ट के समान) मंच, जिनसे कालान्तर में ब्राह्मण देव मन्दिरों की रथिकाओं का विकास हुआ। आन्ध्र कला में शरीर की बहुसंख्यक विभिन्न मुद्राओं का विन्यास उसकी विशेषता है। अमरावती का स्तूप सांची के स्तूप से बड़ा और नक्काशीदार था। इस स्तूप से बची हुई मूर्तियों की संख्या आन्ध्र स्तूपों में सबसे अधिक है। कला की दृष्टि से ये अत्यंत सुन्दर और विभिन्न अभिप्रायों से युक्त हैं, जिनमें

लगभग पाँच सौ वर्षों के विकास की साक्षी उपलब्ध है। सारनाथ और नालन्दा उत्तरकालीन भारतीय स्तूपों में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

4.3.1.2गुफा मन्दिर और चैत्य

वास्तुकला का दूसरा नमूना थे गुफा मन्दिर और चैत्य।सौराष्ट्र से लेकर कलिंग तक और अजन्ता से बराबर पहाड़ी तक की गुफाओं के रूप में इसका प्रसार देखा जाता है। इस विशाल क्षेत्र में चट्टान काटकर गुफाओं के बनाने की एक जैसी प्रक्रिया सर्वत्र प्राप्त हुई है। केवल शैली के स्थानीय भेद अवश्य हैं, जो उनके मुखपट्ट,अलंकरण, स्तम्भ, मूर्तियों, भीतरी मण्डप की आकृति और परिमाण, छत एवं गर्भगृहों के क्रम में दिखाई देते हैं। लगभग तीसरी शती ई. पू. में अशोककालीन हीनयान युग से लेकर महायान युग की सातवीं शताब्दी तक पर्वत में गुफाओं का तक्षण होता रहा और इस दीर्घकाल में लगभग 1200 गुफाएं निर्मित की गईं। स्तूपों, उनके चारों ओर के प्रवेश द्वारों एवं चहारदीवारी के अतिरिक्त गुप्त वंश से शताब्दियों पूर्व के वास्तु विद्या के मुख्य अवशेष कृत्रिम गुफाएं हैं, जो धार्मिक कार्यों के लिए खोदी गईं थीं। इनमें अशोक द्वारा आजीविक भिक्षुओं को समर्पित गया के समीप बराबर की पहाड़ी की गुफाएं तथा नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाएं प्रमुख हैं।गुफाओं की भित्तियों पर भली.भांति पॉलिश की गई है। बराबर की सुदामा गुफा का अशोक के राज्यकाल के बारहवें वर्ष में तथा कर्णचौपड़ गुफा 19वें राज्य वर्ष में निर्माण किया गया था। तीसरी लोमस ऋषि गुफा तथा चौथी विश्वझोपड़ी गुफा कहलाती है। नागार्जुनी समूह में गोपी गुफा और एक अन्य गुफा का निर्माण अशोक के पौत्र दशरथ ने करवाया। इनमें अशोककालीन गुहाशिल्प परम्परा की पूर्णतः रक्षा की गई है।उत्तरकालीन गुफा मन्दिरों में सातवाहन राज्य और उसके उत्तराधिकारियों के समय में सबसे अधिक और प्रसिद्ध कृत्रिम गुफाएं खोदी गई हैं। इनमें पूना के निकट भाजा की प्राचीनतम दक्षिण की गुफा में ठोस चट्टान से कटा हुआ एक गहरा अर्धवृत्ताकार विशाल कक्ष है, जिसमें भित्तियों के समीप सादे अष्टभुजी स्तंभों की पंक्ति है, जो एक काष्ठ भवन की ढोलाकार छत को प्रदर्शित करने के लिए खुदी हुई वक्राकार पटरियों को संभाले हुए है। विशाल कक्ष के सिरे पर ठोस चट्टान से कटा एक छोटा स्तूप है। शुंग काल में निर्मित उड़ीसा के उदयगिरि की पहाड़ी में 19 (रानी गुम्फा, हाथी गुम्फा आदि) और खंडगिरि में 16 (नवमुनि गुम्फा, देवसभा आदि) गुफाएं हैं। ये गुम्फाएं जैन भिक्षुओं के लिए बनाई गई थीं। इनके संरक्षक कलिंग के सम्राट खारवेल थे। इन गुम्फाओं में सुन्दर आकृति की और वास्तु सम्बन्धी कई विशेषताओं से युक्त स्तंभों पर आश्रित सामने की ओर निकली हुई ऊँची खुली छतें हैं। महाराष्ट्र में चट्टान में काट कर निर्मित कार्ले का चैत्य, अजन्ता की प्रसिद्ध 27 गुफाएं, एलोरा के उत्तरकालीन गुफा मन्दिर, जिसमें पांचवीं से आठवीं शताब्दी तक निर्मित कम से कम 64 गुफाए (अधिकांश हिन्दुओं की तथा कुछ बौद्धों की और कुछ जैनियों की हैं) आदि प्रमुख गुफाएं हैं। सभी गुफाओं का निर्माण चट्टानों को काटकर किया गया है। अजन्ता में उत्कीर्ण चैत्यगृह और विहार वास्तु सम्बन्धी कला के उत्कृष्ट रूप हैं। इनमें चित्र, शिल्प और वास्तु विद्या सम्बन्धी दीर्घकालीन प्रयत्न व्यक्त हुआ है , जिसकी अवधि दूसरी शती ई. पू. से लगभग एक सहस्र वर्षों की है। अजंता में कुल 29 गुफाएं हैं, जिनमें

चार चैत्यगृह और शेष 25 विहार गुफाएं हैं। इसके अलावा महाराष्ट्र में नासिक, बेडसा, जुन्नार व कार्ले के चैत्य तथा कन्हेरी की गुफाएं विशेष उल्लेखनीय हैं। कार्ले के चैत्यगृह के भीतर और बाहर कई लेख उत्कीर्ण हैं। दो लम्बे प्रदक्षिणापथ तथा दो ऊँचे चतुर्मुख दर्शन वाले स्तंभ या लाट, जिनके सिरे पर सिंह शीर्षक हैं, प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त पल्लवकालीन मामल्लपुरम के मन्दिर तथा मुंबई के समीप एलीफेंटा के गुफा मन्दिर प्रमुख हैं। इन गुफा मन्दिरों में प्रायः सभी निर्मितियां चट्टानों को काटकर उत्कीर्ण की गई हैं, यद्यपि प्रारंभिक नमूनों में काष्ठकला का प्रयोग हुआ है। इनमें उत्कृष्ट मूर्तिकला, सुन्दर चित्रकारी एवं अलंकरण हैं।

4.3.1.3 मन्दिर

''मन्दिर भारतीय स्थापत्य कला के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक हैं। मन्दिरों के वास्तुशिल्प में परिवर्धन, मूर्ति पूजा तथा संबन्धित पूजार्चन कर्मकाण्ड के संस्थापन के बाद ही संभव हुआ''(के.आर. श्रीनिवासन, दक्षिण भारत के मन्दिर)। प्राचीनतम स्वतंत्र रूप से स्थित धार्मिक भवन, जिसके चिन्ह मिलते हैं, तीसरी शताब्दी ई.पू. में ईंटों व काष्ठ से निर्मित जयपुर के निकट बैराट में एक छोटा वृत्ताकार कक्ष है।गुप्तकाल से पूर्व स्वतंत्ररूप से निर्मित हिन्दू मन्दिरों के कोई अवशेष नहीं हैं, यद्यपि इस काल तक उनका काष्ठ, मिट्टी तथा ईंटों से अवश्य ही निर्माण हुआ होगा। गुप्तकाल से मन्दिरों के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, विशेष रूप से पश्चिमी भारत में, जिनमें सबमें एक सी सामान्य शैली है। सामान्यतः स्तंभ अलंकृत होते थे जिनके शीर्ष भारी घण्टी के आकार के होते थे, जिनके ऊपर पशुओं की आकृतियां बनी रहती थीं और प्रवेशद्वारों पर पौराणिक दृश्य एवं आकृतियां खुदी रहती थीं। समस्त गुप्कालीन मन्दिर छोटे थे और उनमें से अधिकतर की छतें समतल थीं। उनके ईंट और पत्थर के भवन बिना गारे के रुके हुए थे और उनमें प्रयुक्त ईंट पत्थर अपेक्षाकृत छोटे भवनों के लिए आवश्यक सामग्री से कहीं अधिक और मोटे थे। संभवतः छठी शताब्दी में निर्मित झांसी के निकट देवगढ़ का मन्दिर गुप्तकाल का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। बाशम के अनुसार '' छठी शताब्दी से आज तक प्रचलित हिन्दू मन्दिर का आदर्श रूप प्राचीन यूनानी मन्दिरों के रूप से सिद्धांततः भिन्न न था।'' मन्दिर का मध्य भाग एक छोटा अंधकारपूर्ण पूजागृह या गर्भगृह होता था, जिसमें मुख्य मूर्ति स्थित रहती थी। यह एक विशाल कक्ष अथवा मण्डप में खुलता था। विशाल कक्ष तक पहुंचने के लिए एक अर्धमण्डप से होकर जाना होता था। गर्भगृह के ऊर एक मीनार होती थी तथा भवन के अन्य भागों से छोटी छोटी मीनारें उठी रहती थीं। पूरा मन्दिर एक आयताकार आंगन में स्थित रहता था , जिसमें छोटे मन्दिर भी होते थे और प्रायः वह एक उठे हुए चबूतरे पर बना रहता था।कश्मीर में यूनानी वास्तु से प्रभावित स्तंभ तथा विशिष्ट पिरामिड आकार की नुकीली वलभी छतों और मेहराबों का मध्ययुग में निरंतर उपयोग होता था। बाशम के अनुसार 'कश्मीर शैली लगभग गोथिक शैली सी प्रतीत होती है। कश्मीर के प्रारंभिक मन्दिरों में आठवीं शताब्दी का मार्तण्ड स्थित सूर्य मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

भूमि के आकार की दृष्टि से भारतीय मन्दिर की वास्तुकला विशेष रूप से एक समान है। मन्दिर स्थापत्य के क्षेत्र में उत्तर भारत में नागर शैली तथा दक्षिण भारत द्रविड़ शैली का विकास हुआ औरइन दोनों के मेल से

बेसर शैली विकसित हुई।नागर शैली के मन्दिरों की पहचान आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसका चतुष्कोण होना है। विकसित नागर मन्दिर में गर्भगृह, उसके समक्ष क्रमशः अन्तराल, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप प्राप्त होते हैं। द्रविड़ शैली में मन्दिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के ऊपर का भाग पिरामिडनुमा सीधा होता है, जिसमें अनेक मंजिलें होती हैं। इस शैली के मन्दिरों की प्रमुख विशेषता यह है कि ये काफी ऊँचे तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। बेसर शैली विन्यास में द्रविड़ शैली तथा रूप में नागर जैसी होती है। इस शैली के मन्दिर विन्ध्य पर्वतमाला से कृष्णा नदी के बीच निर्मित हैं। छठी से आठवीं शताब्दी के बीच मन्दिर निर्माण को पल्लव तथा चालुक्य वंश के राजाओं का पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हुआ। दोनों शैलियों से काष्ठकला तथा गुफा वास्तुकला से क्रमशः मुक्ति स्पष्ट दिखाई देती है। पल्लव शैली आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में निर्मित मामल्लपुरम के शोर मन्दिर तथा कांची के कैलाशनाथ मन्दिर में सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई। 10 वीं से 12वीं शताब्दी के बीच चोल राजाओं के समय पल्लवों की शैली का और अधिक विकास हुआ। 10 वीं से 13 वीं शताब्दी तक उड़ीसा शैली प्रस्फुटित हुई, जिसमें पुरी का जगन्नाथ मन्दिर तथा कोणार्क का सूर्य मन्दिर प्रमुख हैं। इसी प्रकार 10वीं 12वीं शताब्दियों में बुन्देलखण्ड के चन्देल राजाओं के समय में निर्मित खजुराहो मन्दिर समूह है, जिसमें कण्डरिया महादेव मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। कोणार्क व खजुराहो में मन्दिर वास्तु की अन्य विशेषताओं के साथ-साथ अत्यधिक स्पष्ट श्रृंगारिक चित्रण भी हुआ है।

4.3.1.4 मूर्तिकला

जिस वस्तु का हमें ज्ञान होता है अथवा जिसकी रचना की जाती है, उस सबको मूर्ति कहते हैं। मूर्त विश्व ही कला का क्षेत्र है।ऐतिहासिक काल की प्रारंभिक मूर्तिकला में हड़प्पा की मूर्तिकला से व्यापक समानता मिलती है। सिन्धु घाटी में पाषाण शिल्प की 11 मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इनमें त्रिफुलिया अलंकरण से युक्त उत्तरीय ओढ़े हुए पुजारी की प्रतिमा से सभी परिचित हैं। ताम्र मूर्तियों में नर्तकी की प्रसिद्ध मूर्ति है। सिंधु घाटी की मानव मूर्तियों की अपनी अलग विशेषता है। सुमेर से प्राप्त मूर्तियों में नेत्रों की आकृति गोल है तो हड़प्पा में लम्बी और अधमुंदी पलकों वाली हैं। मिट्टी की मूर्तियों में मनुष्यों और पशुओं की अनेक मूर्तियां हैं। सिन्धु घाटी के नगरों के बाद अशोक स्तंभों के शीर्ष मूर्तिकला के प्रारंभिक उदाहरण हैं। सारनाथ के स्तंभ के प्रसिद्ध सिंह तथा रामपुरवा के स्तंभ का कम प्रसिद्ध परंतु अधिक सुंदर वृषभ, यथार्थवादी मूर्तिकारों की कृतियां हैं, जो कुछ न कुछ ईरानी और यूनानी परंपरा के ऋणी हैं। बाशम के अनुसार ''स्तंभों पर बनी हुई पशु आकृतियां सिन्धु घाटी की मुद्राएं खोदने वालों की शैली से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थी, जिनमें एक यथार्थवादी दृष्टिकोण भी मिलता है।''सजीव स्थिति में पशु, बुद्ध तथा मौर्य विश्व सम्राट का प्रतिनिधित्व करने वाले चक्र, फूल पत्तियों से बनी चित्राकृतियां, जिनमें आदर्शभूत भारतीय विचार पश्चिम से लिए गए विचारों के साथ प्रकट किए गए हैं। स्तंभों के अतिरिक्त मौर्य शैली के कुछ अन्य स्मारक हैं, जिनमें उत्कृष्ट पॉलिश और फिनिशिंग है। हाथ में चंवर से युक्त दीदारगंज की यक्षी में मौर्य शैली की विशिष्ट चमकदार पॉलिश है। लोककला की परंपरा का प्रमाण उन महाकाय यक्ष मूर्तियों द्वारा प्राप्त होता है, जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा और

पाटलिपुत्र से शूर्पारक तक के विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती हैं। मथुरा से प्राप्त परखम यक्ष की मूर्ति तथा पटना के दीदारगंज से मिली आदमकद यक्षी प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय हैं। सबसे महत्वपूर्ण परखम यक्ष जैसी महाप्राण और बलशाली मूर्तियां थीं। कुमारस्वामी का मत है कि ''मथुरा की महाकाय बोधिसत्व मूर्तियों का विकास परखम यक्ष जैसी महाप्राण यक्ष मूर्तियों से हुआ। कला की दृष्टि से भी परखम यक्ष और सारनाथ बोधिसत्व की शैली में बहुत सादृश्य है।'' यक्ष मूर्तियों के कलात्मक सौन्दर्य के विषय में कुमारस्वामी लिखते हैं कि ''ये आश्चर्यजनक शारीरिक बल की प्रतीक हैं, जिनका प्रभाव इनकी शिल्पगत अपरिष्कृतता से कुंठित नहीं होता। इनकी कला पुरुष प्राकृतिक है, जिसमें पशुओं जैसी दृढ़ता है, कहीं भी आध्यात्मिकता या अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं है और न इनमें विचार प्रवणता या आन्तरिक भावों की कोई झलक है। शैली की दृष्टि ये मूर्तियां महाप्राण या महाकाय हैं।'' राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार ''यही आदर्श बाद में कुषाणकालीन महाविशाल प्रतिमाओं में आविर्भूत हुआ, जैसे लखनऊ संग्रहालय की मथुरा से प्राप्त बोधिसत्व प्रतिमाएं अथवा बोधिसत्व शाक्यमुनि की सारनाथ मूर्ति में, जिसे लेख के अनुसार मथुरा के भिक्षु बल ने प्रतिष्ठापित किया था।''उत्तरी भारत में मथुरा कला का बड़ा केन्द्र था। सांची, सारनाथ, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पंजाब, राजस्थान का बैराट प्रदेश, बंगाल, अहिच्छत्र, कोसम आदि स्थानों में मथुरा के लाल चकत्तेदार पत्थर की मूर्तियां पाई गई हैं। मथुरा बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मों का केन्द्र था, अतः तीनों कलाओं के अवशेष वहां मिले हैं। उत्तर मौर्यकाल में भरहुत, गया और सांची के बौद्ध स्थलों की पाषाण वेष्टिनियां और प्रवेश द्वारों पर खुदी यक्षों.यक्षिणियों की मूर्तियां हैं। सांची स्तूप में हाथी दांत पर कार्य कुशलता, बुद्ध एवं जातक कथाओं के चित्र, हाथी व घोड़ों पर सवार निकलते जुलूस, मन्दिर में पूजा करते स्त्री पुरुष, जंगलों में घूमते हाथी, शेर, मोर, यक्षी, नाग, पौराणिक कथाओं में वर्णित पशु और अलंकारों से युक्त पुष्पों की चित्रकारी ह, आदि प्रमुख हैं। भरहुत, गया और सांची में और वस्तुतः इस समय की समस्त बौद्ध मूर्तिकला में स्वयं बुद्ध का प्रदर्शन कभी नहीं किया गया है। एक चक्र, रिक्त राजसिंहासन, चरण चिन्हों अथवा एक पीपल वृक्ष जैसे संकेतों द्वारा उन्हें प्रकट किया गया है।

कुषाण राजाओं के समय में विकसित गांधार और मथुरा शैली के अन्तर्गत बुद्ध और बोधिसत्वों की सुंदर मूर्तियों का निर्माण हुआ। जैन तीर्थंकरों की भी अनेक मूर्तियां बनीं। ये दो प्रकार की हैं- एक खड़ी हुईऔर दूसरी बैठी मुद्रा में। मथुरा शैली की उत्तरकालीन मूर्तियों में सौन्दर्य और धार्मिक भावना का विकास दिखाई देता है। मथुरा शैली नेप्रारंभिक शताब्दियों की हृष्ट-पुष्ट यक्ष मूर्तियों तथा ध्यानावस्थित जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों से प्रेरणा प्राप्त की। मथुरा की जैन कला की एक प्रमुख विशेषता थी आयागपट्ट (पूजा शिलाएं)। स्तूप के चतुर्दिक इस प्रकार की पूजा शिलाएं स्थापित की जाती थीं। कला की दृष्टि से ये अत्यंत सुन्दर हैं। मथुरा कला के वेदिका स्तंभों की शालभंजिकाएं उद्यान क्रीड़ा और सलिल क्रीड़ा की विविध मुद्राओं में दिखाई गई हैं। जैन वेदिका स्तंभों पर बनी हुई शालभंजिका मूर्तियां वैसी ही मुद्राओं में हैं, जैसी बौद्ध स्तूपों में।

गांधार और मथुरा से प्राप्त बुद्ध की बहुसंख्यक मूर्तियों में एकभी कनिष्क से पूर्वकाल की नहीं है। कुषाण काल के आरंभ में ब्राह्मण धर्म के देवताओं की अनेक मूर्तियां मथुरा शिल्प में बनाई जाने लगीं। धीरे.धीरे इनकी संख्या बढ़ी और गुप्त काल में अपने पूरे विकास पर पहुंच गई। गांधार शैली रोमन कला से प्रभावित है। स्वात, काबुल और सिंधु इन तीन नदियों की द्रोणियों में घिरा हुआ प्रदेश गांधार था। इसके सात केन्द्र थे- तक्षशिला, पुष्कलावती, नगरहार, स्वात घाटी, कपिशा, बामियां, वाह्लीक या बैक्ट्रिया। गांधार कला की मूर्तियों की विशेषताएं हैं- बुद्ध के जीवन की घटनाएं, बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियां, जातक कथाएं, यूनानी देवी देवताओं और गाथाओं के दृश्य, भारतीय देवता और देवियां, वास्तु सम्बन्धी विदेशी विन्यास, भारतीय अलंकरण एवं यूनानी, ईरानी और भारतीय अभिप्राय एवं अलंकरण। गांधार कला में बुद्ध की जीवन घटनाओं के शिलापट्ट अत्यधिक हैं। बुद्ध की जीवन लीला और जातक कथाओं का अंकन मध्यदेश की कला से ग्रहण करने के साथ.साथ गांधार के शिल्पियों ने ईरानी और यूनानी कला के अनेक प्रभाव और अलंकरण स्वीकार किए। स्वभावतः इसमें भारत, ईरान एवं यूनान, रोम की कलाओं के प्रभावों का सम्मिलन हुआ। इस कला में मथुरा कला से कुछ अभिप्राय लेते हुए शालभंजिका मुद्रा में खड़ी वृक्षका स्त्रियों का भी अंकन किया गया। गचकारी के मस्तक और बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियां बहुत प्रशंसित हुईं। उनमें से कुछ उतनी ही श्रेष्ठ हैं, जितनी बुद्ध कला की सर्वोत्तम मूर्तियां। गांधार शैली के इस स्वरूप का उत्थान चौथी.पांचवीं शताब्दी में हुआ। अग्रवाल के अनुसार'' यह स्वीकार करना आवश्यक है कि गान्धारकला में बुद्ध और बोधिसत्व के मुख अध्यात्म भावना से शून्य हैं और उनमें योगीश्वर बुद्ध की उस छवि का अभाव है, जो मथुरा की अन्तर्मुखी बुद्ध मूर्तियों में पाई जाती हैं। (कला पर विविध प्रभावों का अध्ययन आप इसी इकाई में खण्ड 3.4 के अंतर्गत करेंगे।) इनके अलावा भाजा की गुफा में और उड़ीसा में उदयगिरि में प्राप्त अत्यंत प्राचीन मूर्तियां हैं। सातवाहन काल (दूसरी से तीसरी शताब्दी) में अमरावती के स्तूप में उत्कीर्ण बुद्ध के जीवन के दृ्श्य हैं और उनके चारों ओर मुक्त रूप से खड़ी हुई बुद्ध की आकृतियां हैं। चौथी से छठी तथा सातवीं शताब्दियों का उत्तरार्द्ध गुप्तकाल में सम्मिलित किया जाता है। बाशम के अनुसार ''यदि भरहुत, सांची और मथुरा की शैलियों से ऐन्द्रिय पार्थिवता प्रकट होती है तथा अमरावती की शैली से शक्ति एवं तीव्र गति, तो गुप्तकालीन मूर्तिकला निर्मलता, सुरक्षा एवं निश्चितता की भावना प्रकट करती है। इसी समय भारत ने अपनी कुछ वास्तविक धार्मिक कलाकृतियों की रचना की, विशेष रूप से सारनाथ की सुन्दर बुद्ध मूर्तियों की।'' इनके अलावा गुप्त कालीन ग्वालियर, झांसी की उत्कृष्ट शैली, हिन्दू देवता तथा पौराणिक दृश्यों से युक्त देवगढ़ के मन्दिर की नक्काशीदार मूर्तियां, उदयगिरि की एक गुफा के प्रवेशद्वार पर नक्काशीदार रूप में उत्कीर्ण बाराह की मूर्ति, आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक बिहार और बंगाल के पाल व सेन राजाओं के शासन में स्थानीय काले पत्थर से निर्मित सुन्दर मूर्तियां, उड़ीसा में भुवनेश्वर तथा कोणार्क की सुन्दर मूर्तियां, खजुराहो के मन्दिरों की युगल मूर्तियां प्रमुख हैं। दक्षिण में ऐहोल और बादामी के मन्दिरों में पांचवीं शताब्दी और उसके आगे की उत्कृष्ट कलाकृतियां हैं। कांची के पल्लव राजाओं द्वारा निर्मित मामल्लपुरम की मूर्तियां,

जिनमें सबसे अद्भुत गंगावतरण की विशाल उभरी हुई आकृति है तथा अन्य सुन्दर उभरी हुई मूर्तियां हैं। मामल्लपुरम, एलोरा और एलीफैंटा के बाद पाषाण की अनेक मूर्तियां निर्मित हुईं, परंतु प्रायः अधिक श्रेष्ठ होते हुए भी उनमें प्रारंभिक शैलियों की गंभीरता एवं सौन्दर्य का अभाव है।

भारतीय कला में मिट्टी की मूर्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी सामग्री बहुत है और प्राचीन भी है तथा मूर्तियों में ढाले गए विषय भी विविध प्रकार के हैं। सिन्धु सभ्यता से लेकर विभिन्न कालों में इन मूर्तियों और खिलौनों का प्रचलन रहा है। उत्तरी भारत के कई ऐतिहासिक स्थानों की खुदाई में मनुष्य और पशुओं की आकृति के बहुत से खिलौने और बड़ी मूर्तियां भी मिली हैं। महाभारत औरउत्तरकालीन साहित्य में मृण्मय मूर्तियों के उल्लेख पाए जाते हैं। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की मिट्टी की मूर्ति का उल्लेख है। गुप्त काल में कला की दृष्टि से सुन्दर खिलौने बनते थे। पत्थर की प्रतिमाओं के समान ही बड़े आकार की मिट्टी की मूर्तियां भी बनाई जाने लगीं। मिट्टी के सबसे प्राचीन खिलौने लगभग 2500 ई.पू. हड़प्पा सभ्यता में पाए गए हैं, जिनके निर्माण में साँचों का प्रयोग नहीं हुआ है। इनमें स्त्री मूर्तियाँ और पशु.पक्षी के रूप हैं। स्त्री मूर्तियाँ मातृदेवी की हैं। मातृ मूर्तियों की यह परंपरा सिन्धु युग के बाद भी चलती रही। मथुरा, अहिच्छत्र, कौशाम्बी, तक्षशिला आदि स्थानों से मौर्य.शुंग युग की पुरानी मातृ मूर्तियाँ मिली हैं, वे उसी परंपरा में हैं। ऐतिहासिक युग के खिलौने सिन्धु काल से लगभग दो सहस्र वर्ष बाद के हैं, फिर भी शैली और विषय की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती खिलौनों से सम्बन्धित हैं। मौर्य युग के वास्तविक खिलौनों की प्रामाणिक सामग्री सीमित है। इनमें सबसे विशिष्ट वे मूर्तियाँ हैं जो पाटलिपुत्र से मिली थीं और विशेष प्रकार की प्रभावशाली नर्तकी या नाट्य स्त्रियों की मुद्रा में हैं। शुंग काल से साँचे मिलते हैं और तीसरी दूसरी शताब्दी ई. पू. के लगभग साँचे काम में आने लगे थे। बसाढ़ (वैशाली), कोसम(कौशाम्बी) शुंग कालीन खिलौनों केप्रमुख केन्द्र थे। शक.सातवाहन युग (प्रथम द्वितीय शताब्दी) में दक्षिणापथ में मिट्टी की मूर्तियों में विशेष सौन्दर्य दिखाई देता है।गुप्त युग के आरंभ से उत्तर भारत के अनेक केन्दों में कलात्मक मूर्तियां बनने लगीं। इनमें ब्राह्मण धर्म संबन्धी देवी देवताओं की मूर्तियां, सुन्दर स्त्री.पुरुषों की मूर्तियों से अंकित टिकरे या मस्तक जो सांचों से बने हैं तथा पौराणिक आख्यानों और अलंकरण के विषय से संबन्धित फलक प्रमुख हैं।

4.3.2 चित्रकला

रायकृ◌ृष्ण दास के अनुसार'' चित्रण की प्रवृत्ति मनुष्य में वन्य अवस्था से ही थी। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए उसने संस्कृति के जिन अंगों से श्रीगणेश किया, उनमें चित्रकला भी एक थी। संसार भर में आदिम मनुष्य के अंकित चित्र मिलते हैं। ये विषय, शैली तथा सामग्री की दृष्टि से उस समय के मानव जीवन के प्रतीक हैं। इनके विषय मुख्यतः जानवर, उनका आखेट करते हुए मनुष्य, आपस में युद्ध करते हुए मनुष्य एवं पूजनीय आकृतियां हैं।'' ये रेखाचित्र प्रायः तत्कालीन मानव का निवास स्थल बनी प्राकृतिक कन्दराओंजिन्हें लोकभाषा में आज भी दरी कहा जाता है, की दीवारों पर लाल गेरू या धाऊ पत्थर (हेमेटाइट) से बनाए गए हैं और लोकभाषा में उन्हीं के लिए रकत की पुतरियां शब्द प्रचलित है। इन स्थलों में भोपाल के

समीप भीमबेटका, महादेव पहाड़ी के पचमढ़ी नामक स्थान के इर्द.गिर्द, रायगढ़ के समीप सिंघनपुर और काबरा पहाड़ के चित्र, मिर्जापुर क्षेत्र में लिखुनिया दरी, कोहबर दरी, मेहरिया दरी आदि मुख्य हैं। प्रागैतिहासिक काल में ही आगे चलकर हड़प्पा सभ्यता अर्थात सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्तर्गत हमें विविध चित्रांकनों का निदर्शन होता है।दिनकर लिखते हैं कि ''सिन्धु सभ्यता में रंगे भाण्डों और ठीकरों पर जो चित्रकारी हुई है, वह प्रायः पांच हजार वर्ष पहले के पूर्वजों के चित्र प्रेम की साख भरती है। इन भाण्डों और ठीकरों पर अनेक प्रकार की ज्यामितिक आकृतियां मिलती हैं, जो मुख्यतः काले और फीरोजी रंगों से बनी हैं।''

हड़प्पा सभ्यता में उपलब्ध लगभग 1200 से अधिक घीया पत्थर की बनाई हुई मुहरें कला और लेखों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश पर एकश्रृंग पशु अंकित है, जिसकी पहचान ऋग्वेद के श्रृंगवृष से की जा सकती है। अन्य पशुओं में महावृषभ, छोटे सींगों वाला नटुआ बैल, महिष, गैंडा, व्याघ्र, हाथी, खरगोश, हिरन, गरुड़, मगरमच्छ आदि हैं। इनमें अंकित आकृतियों मेंएकश्रृंग मुद्राओं पर स्तंभ भी प्रमुख हैं। स्तंभ के ऊपर कटोरा या वीरपात्र और उसके ऊपर वेदिका की खुली वेष्टनी या अण्डाकृति गूमठ- इन सबकी सम्मिलित कल्पना किसी देवता के ध्वजचिन्ह के रूप में की गई होगी। ऐतिहासिक युग के स्तंभों में सबसे ऊपर का भाग धर्मचक्र या सिंह, हाथी जैसे पशुओं से अलंकृत है। हड़प्पा सभ्यता की मुद्राओं में वह स्थान वेदिकामय भाग का है, संभवतः इन स्तंभों पर भी वह भाग परवर्ती युगों की भांति वह देवसदन या विश्वदेवों का स्थान माना जाता था। स्तंभ के कई भागों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ज्ञात होता है कि उसका सर्वप्रथम रूप सिन्धुघाटी की मुद्राओं पर है। स्तंभ पूजा की धार्मिक प्रथा का संबन्ध इन्द्र, प्रजापति एवं अन्य कई देवों से था (वासुदेवशरण अग्रवाल)। डॉ आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार ''वेदों के समय भी चित्रों का चलन भारतवर्ष में था। ऋग्वेद में अग्नि के चित्र का हवाला है, जो चमड़े पर बना रहा होगा। उत्तर वैदिक वाङमय में हम ऐसे शब्दों को पाने लगते हैं, जो पीछे चलकर चित्र के प्रसंग में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से एक शब्द छायातप है जो जगत के द्वन्द्व को परिलक्षित कराने में प्रयुक्त हुआ है। जातकों में जिस समाज का वर्णन है उसे हम चित्रकला में पूर्ण रूप से व्याप्त पाते हैं। जातकों में शिक्षा के अट्ठारह विषयों का उल्लेख है, जिनमें चित्रकला भी एक थी। बुद्ध के समय चित्र इतने मोहक बनते थे कि बुद्ध ने भिक्षुओं को चित्र देखने की मनाही कर दी थी।''तीसरी चौथी शताब्दी ई.पू. के बौद्ध ग्रंथ विनय पिटक तथा थेरी गाथा में चित्रों का उल्लेख है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में चित्र के छः अंग माने गए हैं, जो निम्ल श्लोक में वर्णित हैं-

'' रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम।

सदृश्यं वर्णिकाभंगं इति चित्र षडंगकम''

(इन छः अंगों की व्याख्या के लिए देखें, रायकृष्णदास, भारतीय चित्रकला)

मानसोल्लास, कुमार विहार, शिल्परत्न, उत्तररामचरित, जैन ग्रंथ नायधम्मकला में चित्रकला के संकेत हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में तो चित्रकला की विधिवत सांगोपांग व्यख्या ही उपलब्ध है।

प्रत्येक घर चित्र से अलंकृत होता था और उसकी भित्ति पर चित्र बने होते थे। भित्ति चित्र का इस देश में इतना अधिक प्रचार था कि भित्ति शब्द ही यहां चित्रों के आधार के लिए रूढ़ हो गया, जैसे यूरोप में चित्रों का आधार कैनवस समझा जाता है। चित्र तीन प्रकार के फलकों पर बनाए जाते थे। प्रथम फलक भित्ति या दीवार थी। दूसरा फलक धर्म या वस्त्र था और तीसरा फलक लकड़ी, तालपत्र, पत्थर और हाथी के दांत होते थे। भारत में पुराने चित्रों के उदाहरण दीवारों पर मिलते हैं एवं उनकी अपेक्षा नवीन चित्र ताल पत्रों और कागज पर। भित्ति चित्र के जो उदाहरण भारत में उपलब्ध हैं, उनका वातावरण धार्मिक है। पहाड़ों को काटकर यहां चैत्य, विहार और मन्दिर बनाने की प्रथा थी एवं उन्हीं की दीवारों पर पलस्तर लगाकर चूने जैसे किसी पदार्थ की घुटाई करके उस पर चित्र बनाए जाते थे। ऐसी गुफाओं में सबसे प्राचीन जोगीमारा की गुफा है। अजन्ता की गुफाओं के चित्रों के विषय बौद्ध धर्म से संबन्धित हैं। गौतम बुद्ध की जीवन घटनाएं, मातृ पोषक जातक, विश्वान्तर जातक, षडदन्त जातक, रूह जातक और महाहंस जातक आदि बारह जातकों में वर्णित गौतम बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाएं, धार्मिक इतिहास तथा बुद्ध के दृश्य और राजकीय एवं लौकिक चित्र अंकित हैं। अजंता के समान ही उदाहरण सिगिरिया(श्रीलंका) तथा बाध की गुफाओं में भी उपलब्ध हैं। दिनकर के अनुसार ''अजन्ता, सिगिरिया और बाघ में जो चित्र उपलब्ध है, उन्हीं में हम भारतीय चित्रकला की परिणति के प्रमाण देखते हैं। बौद्ध धर्म के साथ.साथ भारत की संस्कृति और कला भी भारत के बाहर पहुंचने के कारण सीलोन, जावा, स्याम, बर्मा, नेपाल, तिब्बत, जापान, हिन्द चीन और चीन में भी भारतीय चित्रकारी के नमूने उपलब्ध हैं एवं उनके अध्ययन के बिना भारतीय कला का अध्ययन पूरा नहीं कहा जा सकता।''गुप्त काल के बाद से चित्रकला का धीरे. धीरे ह्रास प्रारंभ हो हुआ। पाल शासन में बने चित्र अपेक्षाकृत उत्तम कोटि के थे। दक्षिणापथ के चित्रों को देखें तो प्रारंभिक चित्रकला में जो मानव आकृतियां अथवा देवी.देवताओं के चित्र बनाए गए हैं, वे पूरी तरह वहां की नृतात्विक विशेषताओं के अनुरूप वहां के आदिवासियों की शारीरिक बनावट वाली हैं। शकों और पह्लवों की जो आकृतियां दानदाताओं के रूप में चित्रित हैं, वे अपने उष्णीषों , कपड़ों और जूतों के कारण पूरी तरह पहचानी जा सकती हैं। किन्तु आंध्रों का शासनकाल समाप्त होते ही जब दक्षिणापथ में वाकाटकों का युग प्रारंभ हुआ तो उनके समय ये स्थानीय प्रभाव नहीं दिखाई देते। वाकाटक उत्तरी भारत के गुप्त सम्राटों से वैवाहिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों में बंधे हुए थे।

4.3.3 मुद्रा निर्माण कला

प्रागैतिहासिक कालीन मुद्राओं/मोहरों की कला के संबन्ध में आप इसी खण्ड के उपखण्ड 3.3.2 में हड़प्पा सभ्यता की मोहरों के चित्रांकन में पढ़ चुके हैं। मुद्राओं के दूसरे नमूने हमें आहत मुद्राओं (पंचमार्क कॉइन्स)के रूप में मिलते हैं। भारत के सबसे प्राचीन सिक्के निशान लगाने के कारण ही पंचमार्क के नाम से पुकारे जाते थे। चाँदी की प्राचीन आहत मुद्राएं तक्षशिला से मैसूर तक मिली हैं। इन पर लगभग 500 चिन्ह बने हैं, जिन्हें रूप कहा जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आहत मुद्राओं का वर्णन मिलता है। इनमें सूर्य, षडभुजी चिन्ह, चतुश्पद पंक्ति जिनमें हाथी, सिंह, वृषभ और कहीं.कहीं तुरग है, चोटी पर अर्धचन्द्र से युक्त मेरु पर्वत, चक्र,

वेदिका से घिरा हुआ चैत्य वृक्ष, जिस पर पक्षियों के घोंसले हैं या नहीं भी हैं, मछलियों से भरा हुआ सरोवर, शशक, मोर , मेंढक, कछुआ, धनुष बाण, नन्दिपद, स्वस्तिक गर्भित चौकोरे, त्रिभुज, चौखटे में अंकित तीन मानवाकृति आदि। चिन्हों में एक ओर वैदिक प्रतीक हैं, दूसरी ओर ज्यामितीय रेखाओं से बने हुए पशु.पक्षी और फूल.पत्तियों के अनेक अलंकरण हैं। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में विदेशियों के अनुकरण पर लेख सिक्कों पर अंकित किए जाने लगे।कुषाण शासकों ने स्वयं सिक्कों को तैयार कराया और उपाधि सहित अपना नाम खुदवाया। कुषाण शासक विम कडफिस के सिक्कों पर केवल शिव और नन्दी बैल की मूर्ति थी। कनिष्क ने ईरानी, यूनानी ,ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के देवताओं को अपने सिक्कों में स्थान दिया। ''ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से सांचे में ढालकर सिक्के बनाने का पता चलता है। सांचे मिट्टी को पकाकर तैयार किए जाते थे। सांचे बनाने से पूर्व मिट्टी में अक्सर धान का छिलका मिलाया जाता था। टप्पे से भी सिक्के तैयार किए जाते थे। इस रीति से गरम धातु के टुकड़े पर टप्पे के दबाव से चिन्ह तथा लेख गहराई में अंकित हो जाते थे। एक ओर टप्पे के निशान से सिक्के तैयार करने की प्रथा ढालने के काम में लाई गई। ईरानी सिक्कों के आधार पर दोनो तरफ टप्पा मारने का दोहरा प्रयोग किया गया। कुणिन्द, औदुम्बर, नाग तथा यौधेय गणों के गोलाकार सिक्के पाए जाते हैं। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ही आहत (पंचमार्क) सिक्के तैयार करने की पुरानी रीति का टप्पा ने अंत कर दिया। गुप्त कालीन सिक्कों में कला का सूक्ष्म प्रदर्शन किया गया। राजलक्ष्मी, शेर, घोड़े, कमल आदि को उनके प्राकृतिक रूप में दिखलाया गया है। समुद्रगुप्त को स्वाभाविक ढंग से वीणा बजाते हुए अंकित किया गया है। स्कन्दगुप्त के समय में हूण आक्रमण के कारण साम्राज्य के अवनति की ओर अग्रसर होने के कारण सिक्कों की कला में भी ह्रास दिखाई देता है।''(वासुदेव उपाध्याय, भारतीय सिक्के)।

4.3.4 मृद्भाण्ड

हड़प्पा सभ्यता में कुम्हार की चाक पर बने कुछ बर्तन सादे हैं और कुछ पर लाल पोत देकर काली रेखाओं से चित्र बनाए गए हैं। इन पर रंग चढ़ाने के लिए लाल गेरू या हिरमिजी मिट्टी का प्रयोग हुआ है। इनमें कुछ विशेष प्रकार के बर्तन उल्लेखनीय हैं, जैसे नारियल की आकृति के नुकीली पेंदी के मिट्टी के कुल्हड़, दो इंच से लेकर चालीस इंच तक के उठान वाले बहुछिद्र युक्त भांड, संभवतः सुगंधित तेल व श्रृंगार सामग्री रखने के लिए बनाए गए आधे इंच से डेढ़ दो इंच तक के वामनाकृति भाण्ड, खुदे हुए बर्तन भाण्ड, पशु आकृति के बर्तन, नुकीली आकृति के अनाज रखने के बर्तन, शव निखात पात्र आदि। इन पर अंकित चित्रों में भंगिमा युक्त टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं, लहरिया रेखाएं, कंघा, सूर्य, तारे, बाणमुख, चौफुलियाज्यामितिक आकृतियां, फूल.पत्तियों की पंक्तियां, पशु. पक्षी, मछली, पीपल का वृक्ष, मोर,मृगया का चित्र आदि प्रमुख हैं।हमें तीन प्रकार के मृद्भाण्डों का परिचय मिलता है 1. गेरू या लाल रंग से रंगे बर्तन 2. भूरे रंग के बर्तन जिन पर काली रेखाओं के चित्र हैं (1200ई. पू. से 600 ई. पू.) 3. उत्तरी काली पॉलिश वाले बर्तन (नॉर्दर्न ब्लैक पेंटेड वेयर) (600 से 200 ई. पू.)। इनमें से तीसरे प्रकार के चमकीले भाण्ड सारे भारत में प्राक्मौर्य और लगभग मौर्यकालीन स्थानों पर पाए गए हैं।

4.3.5 संगीत, वाद्य,नृ ृत्य

कुछ प्रमाण मिलता है ,जिससे ज्ञात होता है कि आर्य लोग सप्त स्वरों (सरगम) से परिचित थे और सामवेद की ऋचाओं के गायन के निर्देश यह बताते हैं कि वैदिक काल में भक्ति संबन्धी गायन शैली मध्यकालीन सरल स्त्रोत पाठ शैली की भांति थी। ''स्त्री. पुरुष दोनों ही झांझ. मजीरे के वाद्यों के साथ नृत्य में भाग लेते थे। उस समय तीनों ही प्रकार के वाद्यों का आविष्कार हो चुका था- अवनद्ध वाद्य जैसे दुन्दुभि, तंतुवाद्य जैसे कर्करि अथवा वाण या वीणा, जिसके सप्त स्वरों की ठीक पहचान हो चुकी थी और सुषिर वाद्य जिसे नाव्ठी कहा जाता था (राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता)।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में तीस से ऊपर रागों का उल्लेख है। प्रमुख वाद्य यंत्र वीणा था। गुप्त काल के अन्त तक इस वाद्य यंत्र का प्रचलन समाप्त होना प्रारंभ हो गया और उसका स्थान एक नारंगी के आकार की सारंगी ने ले लिया जो या तो उंगलियों से अथवा गज से बजाई जाती थी। इसका स्थान क्रमशः आठवीं शताब्दी में वर्तमान वीणा के प्रारंभिक रूप ने लिया, जिसमें एक लम्बा अंगुलीय पट तथा छोटी गोलाकार आकृति होती थी , जो प्रायः सूखी लौकी से बनाई जाती थी। विभिन्न प्रकार की बांसुरी तथा नरकुल के वाद्ययंत्रों का प्रचार था परंतु तुरही के यन्त्रों का प्रयोग संदेशोंएवं घोषणाओं के अतिरिक्त प्रायः नहीं होता था। सबसे अधिक वर्णन शंख का प्राप्त होता है, जो युद्ध से पूर्व घिसे हुए सिरे द्वारा देवता के आह्वान के रूप में और प्रायः आवश्यक अवसरों पर बजाया जाता था। संगीत की भांति भारतीय नृत्य का भी नाट्य से घनिष्ठ संबन्ध था। नृत्य और नाट्य एक ही कला अर्थात अभिनय के रूप हैं। नाट्य ने मुख्यतः शब्द एवं मुद्रा का प्रयोग किया, जबकि नृत्य ने मुख्यतः संगीत एवं मुद्रा का।बाघ के गुफा चित्र में एक दृश्य नृत्य समाज का है, जिसमें नर्तकी मंडल बांधकर छोटे. छोटे डंडे लड़ाकर नृत्य कर रही है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) स्तूप की विशेषताएं

(ख) गुफा मन्दिर व चैत्य स्तूपों से किस प्रकार भिन्न हैं?

(ग) प्राचीन भारतीय कला में मन्दिरों का स्वरूप

(घ) मूर्तिकला की विशेषताएं

(च) प्राचीन भारतीय चित्रकला की विशेषताएं

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

(क) सांची व सारनाथ के स्तूप जैन धर्म की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

(ख) मन्दिर वास्तु की नागर शैली का विकास दक्षिण भारत में हुआ।

(ग) कोणार्क का सूर्य मन्दिर उड़ीसा में है।

(घ) हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त मुहरों पर अंकित एकश्रृंग पशु की पहचान ऋग्वेद के श्रृंगवृष से की जा सकती है।

(च) अजंता की गुफा में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र अधिक हैं।

(छ) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आहत मुद्राओं का उल्लेख मिलता है।

4.4 भारतीय कला पर विविध प्रभाव

भारत और पश्चिमी एशिया के पारस्परिक संबन्धों के साक्ष्य हड़प्पा सभ्यता के साथ ही मिलने लगते हैं। आरंभयुगीन संपर्कों का प्रभाव कला के रूपों में पाया जाता है, जो पश्चिमी एशिया से भारत तक फैले हुए थे और जिनकी कल्पना में दोनों संस्कृतियों ने भाग लिया (वासुदेव शरण अग्रवाल)। दोनों के सहयोग से उत्पन्न अभिप्राय थे- सपक्ष सिंह, महोरग (समुद्री व्याल/अंग्रेजी ट्राइटन), दो सिर और चार सींगों वाला भैंसा (ऋग्वेद), एक सिर और दस शरीरों वाले वत्स (अथर्ववेद), पशु पक्षियों के मुख वाले रूप, कल्पनाजन्य पशु (ईहामृग) आदि। इनके समानान्तर या मिलते.जुलते बहुत से रूप सुमेर, खत्ती, असीरिया , मेसोपोटामिया, क्रीट, ट्राय, फीनिशिया, हखमनी और शक संस्कृतियों आदि की कलाओं में प्राप्त होते हैं। भरहुत, सांची और मथुरा की कला में ईहामृग पशुओं की सजावट है।मथुरा में लम्बे खिंचे हुए टेढ़े. मेढ़े शरीरों वाले पशुओं का बहुतायत से चित्रण पाया जाता है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''भारत में शिलाओं और स्तंभों पर आलेख अंकित करने की कला ईरान होकर भारत पहुंची। वास्तुकला के संस्कृत ग्रंथों और महाभारत तथा पुराणों में असुर मय की चर्चा आचार्य और असाधारण वास्तुकार के रूप में हुई है। ई. बी.हेवेल ने कुछ पुराने असीरियन मन्दिरों के जो पुनर्निर्मितचित्र प्रस्तुत किये हैं, उनसे हमारे मन्दिर के शिखरों का सम्बन्ध सीधे उनसे स्थापित हो जाता है।इसी प्रकार उनकेद्वारा स्तम्भ निर्माण में किए गए प्रयोगों से फारसियों और यूनानियों के आयोनीय खम्भों का विकास हुआ और आगे चलकर वे तक्षशिला पहुंचे। वे महान कारीगर थे तथा ललित कलाओं के उदाहरण उपस्थित करने में अनुपम थे। उनकी कलात्मक उपलब्धियां महलों के इर्द.गिर्द केन्द्रित थीं। फर्श बनाने की उनकी विशेषता उस चमक में थी, जिसके कारण जहां जल था वहां थल प्रतीत होता था और जहां थल था, वहां जल। असुर कलाकार मय ने महाभारत के युधिष्ठिर के महल में यही चमत्कार उत्पन्न किया था। इसी प्रकार स्पूनर ने आधुनिक पटना के निकट एक गांव कुमरहार में चन्द्रगुप्त मौर्य के राजमहल के अवशेष खोजे, जिसमें ढाई फुट गोलाई वाले , दस फुट ऊँचे स्तंभों की दो पंक्तियों के ऊपर बनाया गया एक स्तंभ कक्ष था। पर्सिपोलिस में दारा और क्षयार्ष (जेरेक्सीज) के महल में भी सौ स्तंभ दस पंक्तियों में खड़े किए गए थे। मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महल की समानता शुषा और एकबताना के महलों से की थी।'' वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि '' हखमनी कला के स्तंभों और मौर्य कला के स्तंभों में आकाश पाताल का अन्तर है। ईरान के राजप्रासादों की अपेक्षा पाटलिपुत्र का राजप्रासाद कहीं अधिक उत्कृष्ट था। ईलियन के अनुसार ''सूसा और एकबताना के राजप्रसाद किसी भांति पाटलिपुत्र के राजप्रासाद से स्पर्द्धा नहीं कर सकते थे।''

भगवतशरण उपाध्याय ने आगे लिखा है कि ''अशोक के काल से पहले भारत में शिलाओं और स्तंभों पर आलेख कभी अंकित नहीं किए गए थे। बुद्ध के अवशेषों वाले पात्रों पर कुछ इंच लम्बे आलेख, जैसा एक

पिपरहवा के स्तूप में प्राप्त हुए हैं, बुद्ध काल के नहीं हैं, क्योंकि उनको अशोक काल की ब्राह्मी लिपि में अंकित किया गया है। अपनी विजय के आलेख चट्टानों और स्तंभों पर अंकित करना फारस के सम्राटों में आम प्रथा थी। उससे पहले असीरिया में , उससे पहले मिस्र, सुमेरिया और बेबीलोनिया में थी।''इसके विपरीत अग्रवाल का मत है कि '' अशोक ने अपना मौलिक विचार स्तंभ शीर्षकों के रूप में प्रकट किया। स्तूप, वेदिका, छत्र, बोधिमंड, एकाश्मक स्तंभ शीर्षक, पर्वत में उत्कीर्ण गुफाएं और धौली में उत्कीर्ण गजतम- ये सब कला के रूप भारतीय भूमि की उपज थे। इस बृहत सूची से केवल स्तंभों को अलग करके उन्हें विदेशी प्रभाव से प्रभावित मानना युक्तिसंगत नहीं है।''वे आगे लिखते हैं ''पर्सी ब्राउन ने लिखा है कि 3000 ई. पू. में ऊर नामक स्थान में चन्द्र मन्दिर के सामने ऐसे स्तम्भ थे।(चट्टान में उत्कीर्ण गुफाओं के सामने के कीर्ति स्तम्भ)उनका मानना है कि मिस्र के मन्दिरों के सामने भी ऐसी ही लाटें थीं और येरूसलम के सोलोमन के मन्दिर के सामने भी दो पीतल के स्तम्भ थे, जिनका प्रभाव कार्ले के कीर्तिस्तम्भों पर पड़ा। किन्तु ऐसे स्तम्भों की कल्पना के लिए भारत से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। यज्ञीय भूमि में और श्मशानों में इस प्रकार के स्तम्भों को स्थापित करने का रिवाज बहुत पुराने समय से था। ऋग्वेद में ही इसका उल्लेख है और लौरियानन्दनगढ़ के मिट्टी के थूहों में ऐसे स्तंभों के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। सांची के महाचैत्य में तोरण के सामने ऐसा ही स्तंभ है।''

''भारतीय वास्तुकला में स्तूप एक विदेशी देन थी। स्तूप जैसे दोनों प्रकार के ढांचे पश्चिमी एशिया और मिस्र में कब के खड़े किए जा चुके थे। बेबीलोन तथा अन्य स्थानों पर एक प्रकार के मन्दिर बनाए गए थे, जिनमें से कुछ सात सात मंजिल के थे और जिनके ठोस बाहरी भाग के चारों ओर वर्तुलाकार सीढ़ियां ऊपर की ओर उठती चली गई थीं। इनको जग्गुरत कहा जाता था। बिना कक्षों वाले मन्दिर के लिए संस्कृत शब्द है जरूक, जो जग्गुरत का बिगड़ा हुआ रूप है। महाभारत में इसे एदुक कहा गया है। अवशेष संचय के लिए निर्मित दूसरे प्रकार के स्तूप की तुलना और संबन्ध मिस्र के पिरामिडों से किया जा सकता है। डॉ आनन्द कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय और इंडोनेशियाई कला का इतिहास' में लिखा है और उसकी पुष्टि लौरिया में ब्लॉख द्वारा की गई खुदाई से हुई है कि उत्तरी बिहार में लौरियानन्दनगढ़ में आठवीं सातवीं सदी ई.पू. के समय के एक मकबरे का अस्तित्व था। डॉ. कुमारस्वामी ने भारत में चट्टानों में काटकर बनाए गए बड़े प्राचीन चैत्य कक्षों और एशिया माइनर के दक्षिणी तट के किनारे पिनारा और जेन्थस नगरों के पहाड़ों में तराश कर बनाए गए मकबरों के बीच समानता बताई है। ''इस प्रकार स्पष्ट है कि सुमेरिया और बाबुल (बेबीलोन) के जग्गुरत और मिस्र के पिरामिड तथा पिनारा और जेन्थस में खोद कर निकाले गए मकबरे उन स्तूपों के पूर्ववर्ती नमूने थे जो गांधार, पश्चिमी पंजाब और सिंध में ईरानियों के प्रभुत्व के समय बने थे''(भगवतशरण उपाध्याय)।के. आर.श्रीनिवासन का मत है कि ''वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्म मूलतः भारतीय होने के कारण उनके मन्दिरों के आकार.प्रकार में उन पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। जो कुछ भी उन्होंने लिया है, वह अपने ही देश की परंपरा से प्राप्त किया है। यही कारण है कि तीनों प्रकार के मन्दिरों की बनावट और उनका स्थापत्य शुद्ध देशीय

सिद्धांतों और स्थापत्य की परंपरागत शैली के अनुसार ही है। अपनी विभिन्न आस्था और विश्वासों के अनुसार पहचान की दृष्टि से अपने मतों के लिए विशिष्ट महत्व रखने वाले कुछ परिवर्तन अवश्य किए गए''। मूर्तिकला के क्षेत्र में यह प्रभाव और भी महत्वपूर्ण है। अशोक से पन्द्रह शताब्दी पहले की सुदूर सिन्धु सभ्यता की मूर्तियों और परखम यक्ष जैसे कुछ अन्य 'क्रूड' नमूनों को छोड़कर जो अशोक से थोड़े ही पहले के हैं, अशोक से पहले की कोई मूर्ति नहीं मिलती। अशोक के स्मारकों की चमत्कारी पॉलिश जिससे वे धातु के बने प्रतीत होते हैं और जिसका उन्हीं के साथ अन्त भी हो जाता है, परखम, पवाया और बड़ौदा में प्राप्त किस्म के स्थानीय नमूनों से भिन्न है। भगवतशरण उपाध्याय का मानना है कि ''वह पॉलिश भी और स्तंभों तथा उनके शिखरस्थ पशुओं की परिकल्पना वहीं से आई जहां से अरमई लिपि, अशोक के शिलालेखों के प्रारंभिक अंश आए थे। अशोक के स्मारकों के तात्कालिक पूर्ववर्तियों का भी हम्मूराबी के स्तंभों से असुरबनीपाल तथा उसके असीरियाई उत्तराधिकारियों के पाषाण स्तंभों तथा हखमनी सम्राट दारा तक और दारा से अशोक के सिंह स्तंभों तक एक अविच्छिन्न सातत्य था। सांची और भरहुत के स्तंभों कीशुंगकालीन रेलिंग उत्कृष्ट हैं। मौर्यकालीन स्तूपों के इर्द.गिर्द सांची और भरहुत की रेलिंगें, जिन पर बड़े सजीव पशु पक्षी अंकित हैं, परवर्ती शुंग युग की उपलब्धियां हैं। शुंगकालीन कला में बौद्ध प्रतीकों के ऊपर भी छत्र लगाए जाने लगे थे। मस्तक के पीछे तेजोचक्र या प्रभामण्डल आरंभ से ही बुद्ध मूर्ति का लक्षण माना गया। इस लक्षण को ईरान के धार्मिक देवताओं से अपनाया गया, जहां सिक्कों पर उन देवों की मूर्तियों में मस्तक के पीछे प्रभामण्डल पाया जाता है। इसी प्रकार यूनानी मूर्तिकारों ने भारतीय जीवन और गाथाओं को , विशेषकर बुद्ध के जीवन को छोटे.बड़े कई रूपों में अंकित किया। मथुरा के लाल चकत्तेदार पत्थर पर बनी कुछ मूर्तियों में गांधार शैली की बुद्ध मूर्तियों के कई लक्षण हैं, जैसे- कुछ मूर्तियों के चेहरे पर मूंछें हैं। छाती पर जनेऊ की तरह रक्षासूत्र या ताबीजी गण्डे हैं और जो बेंत के ऊँचे मूढ़े पर बैठी हैं। वे पैरों में यूनानी ढंग की चप्पल पहने हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार बुद्ध के चेहरे पर मूंछें कभी नहीं दिखाई जाती। यह लक्षण ईरान की मूर्तियों से लिया गया। ताबीजी माला भी ईरानी या पश्चिमी परंपरा से ली गई। कालान्तर में पंजाब और काबुल घाटी में गांधार, भारतीय .यूनानी, भारतीय.हेलेनी या यूनानी.रोमन कलाके रूप हम देखते हैं। गांधार की प्राचीन राजधानी तक्षशिला में आयोनियाई खम्भों वाले अनेक भवन और मन्दिर मिले हैं। यूनानी कारीगरों और वास्तुशिल्पियों ने अनेक मन्दिर बनाए और कश्मीर के मन्दिरों पर हेलेनी वास्तुशिल्प की अनेक छाप छोडीं। । हिन्द यूनानियों के बाद ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के लगभग भारत में प्रवेश करने वाले शक, पह्लव, कुषाण, आभीर और गुर्जरों ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया, जिनमें मध्य एशिया से आई खानाबदोश शक जाति ने भारत में बड़ी संख्या में पूजा की स्थानीय रीतियों व देवी.देवताओं को अपनाया। मथुरा के संग्रहालय में लाल पत्थर की अनेक ऐसी प्रतिमाएं रखी हैं, जो पहली से तीसरी शताब्दी ई. तक की हैं, जिनमें कुछ चार अश्वों के रथ में बैठी दिखाई गई सूर्य की हैं। सूर्य की उपासना के लिए तैयार इस प्रकार की प्रतिमाएं भारत में इस काल से पहले नहीं दिखाई देतीं। ऋग्वेद में भी सूर्य को प्राकृतिक रूप में पूज्य माना गया कुषाणों से पहले सूर्य की कोई प्रतिमा

नहीं मिली है। धोती पहने, उत्तरीय ओढ़े, मुकुट धारी खड़े सूर्य की प्रतिमाएं, (जिनमें उन्हें कमलदल धारण किए हुए अथवा कुहनियों पर से बाहुएं मोड़े दोनो हाथ ऊपर उठाए हुए कमलदलों का स्पर्श करते हुए दिखाया गया है), बाद के मध्यकाल में आईं। भविष्य, शाम्ब तथा अन्य पुराणों में सूर्य की उपासना तथा सूर्य के प्रथम मन्दिर की स्थापना शकद्वीप अर्थात सिंध के मुल्तान स्थान में बताई गई है, जहां शकों ने भारत में प्रवेश करके अपनी बस्तियांबर्साइं थीं। शक और कुषाण सूर्य पूजक थे। कनिष्क के सिक्कों पर सूर्य और चन्द्र की आकृतियां मिलती हैं। भारत में उन्होंने ही सूर्य की उपासना का चलन आरंभ किया और अपने अनुरूप वेशभूषा भी दी। भारत में पहले कुछ एक ही थे। कश्मीर में मार्तण्ड मन्दिर, उड़ीसा में कोणार्क, उत्तर प्रदेश में बहराइच में सूर्य मन्दिर आदि।

प्रसिद्ध ग्रीको भारतीय शैलीगांधार शैली का आरंभ यूनानियों ने किया था, परंतु उसको विकसित करके प्रचलित करने का कार्य शकों और कुषाणों ने किया। फलतः सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियां पहली से तीसरी सदी ई. के दौरान बनी। स्तूपों के स्तंभ, रेलिंग, बुद्ध की मूर्तियों में सिलवटों की लकीरें और सूक्ष्म हुईं। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार ''कुषाणों की उपलब्धियों में गांधार कला ने एक स्पष्ट समान शैली को जन्म दिया और महायान के दार्शनिक सिद्धांतों द्वारा समर्थित बुद्ध की मूर्ति के प्रकट होने से बौद्ध मत पश्चिम और पूर्व में समान रूप से विचारकों तथा आम जनता के स्वीकार योग्य बन गया। कला को आम रूप में एक विशिष्ट कुषाण शैली प्राप्त हुई और नाग.नागिनियों, अप्सराओं और यक्षिणियों, सप्तमातृकाओं, मगरमच्छ और कछुए पर सवार गंगा और यमुना, बोधिसत्वों और आयागपटों की मूर्तियों ने मथुरा कला को समृद्ध किया। वासुदेव कृष्ण पहली बार मूर्तिमान हुए। अगर कुषाण तकनीक पहले प्रकट न हुई होती तो गुप्त युग की कला की उपलब्धियां और सूक्ष्मता मात्र स्वप्न बनी रहती।''

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) प्राचीन भारतीय कला पर विभिन्न प्रभाव

   (ख) गांधार कला का स्वरूप

2. निम्न कथनों के सामने 'सही' और 'गलत' का उल्लेख कीजिए

   (क) चन्द्रगुप्त के राजमहल के अवशेष पटना के निकट कुमरहार में प्राप्त हुए हैं।

   (ख) गांधार कला पर यूनानी प्रभाव है।

4.5 कलाकृतियों हेतु प्रयुक्त सामग्री तथा उसका प्राप्तिस्थान

कला की वस्तु के अध्ययन के लिए अवशेषों प्राप्ति स्थान और तिथिक्रम दोनों से सहायता मिलती है। सिन्धु घाटी में कीरथर पहाड़ी की खदानों का सफेद खड़िया पत्थर (लाइमस्टोन) काम में लाया जाता था। मौर्य कला के लिए चुनार की खदानों का हल्के गुलाबी रंग का ठोस बलुआ पत्थर काम आता था। मथुरा कला में मंजीठी रंग का चित्तीदार बलुआ पत्थर जो सीकरी, बयाना आदि स्थानों में मिलता है, प्रयुक्त किया गया।

गान्धार कला में नीली झलक का सलेटी पत्थर, तथा गुप्त कला में स्थानीय ललछौंह या महावरी पत्थर का प्रयोग होता था। पाल युग में गहरे नीले या काले रंग का पत्थर (ब्लैक बेसाल्ट) , चालुक्य कला में पीले रंग का बलुआ पत्थर, अमरावती एवं नागार्जुनीकोण्डा आदि के स्तूपों में विशेष प्रकार का श्वेत खड़िया पत्थर काम में आता था , जिसे वहां की भाषा में अमृतशिला कहते हैं और जो हमारे यहां के संगमरमर से मिलता है। इसी प्रकार उड़ीसा के मन्दिरों में राजारनिया या मुगनी(क्लोराइट) पत्थर, कहहीं कुरथा (ग्रेनाइट) और कहीं ढुसरिया पत्थर (लेटराइट) और कहीं सेलखड़ी या संगजराहत (एसबेस्टस) और कहीं संगमरमर काम में लाया गया। इस प्रकार कला में प्रयुक्त सामग्री को देखकर आपको कलात्मक सामग्री के स्थानीय भेदों का निर्देश मिल जाता है।चित्रों की सामग्री को देखें तो आदिम चित्रों की सामग्री में धातु (= खनिज, रंग, मुख्यतः गेरू, रामरज, हिरौंजी) है तथा उत्कीर्णन के स्थान गुहागृह तथा खुली चट्टानें हैं। अजंता के चित्रण विधान में दीवार या चित्रण हेतु प्रयुक्त स्थल का पत्थर टपर कर खुरदुरा बना दिया जाता था, जिय पर गोबर, पत्थर के चूर्ण और कभी कभी धान की भूसी मिले हुए गारे का कलेवा चढ़ाया जाता था। यह कलेवा चूने के पतले पलस्तर से ढका जाता था और इस पर जमीन बांधकर लाल रंग की रेखाओं से चित्र टीपे जाते थे, जो रंग लगाकर तैयार किए जाते थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) विभिन्न कलाकृतियों के निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्री पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

4.6 सारांश

प्राचीन भारतीय कला को उसकी विशेषताओं के आधार पर धार्मिक और लौकिक दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कला में जिन धारणाओं और धार्मिक विश्वासों का निरूपण हुआ है, उनमें बुद्ध और बुद्ध के जीवन से जुड़ी घटनाएं, शिव-रुद्र व नारायण-विष्णु को प्रमुख स्थान दिया गया है, तो दूसरी ओर यक्ष, नाग, नदी, सागर, चन्द्र, सूर्य, नदी, स्कन्द आदि मातृभूमि से सम्बन्धित देवताओं व उपासना के प्रतीकों का अंकन हुआ है। देवपूजा के वे प्रकार जैसे लोक में थे, वैसे ही कला में भी अपनाए गए। भारतीय कला के वर्ण्य विषयों में भारतीय जीवन और विचारों की विशद व्याख्या मिलती है। इसमें विशिष्ट और सामान्य जन दोनों का ही अंकन हुआ है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक युगों तक यह कला विभिन्न सभ्यताओं में प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों, अभिप्रायों और विषयों को लेकर चली है। अध्यात्म और सौन्दर्य के सम्मिश्रण ने इसे कलात्मक रूप से और अधिक समृद्ध बनाया है।

मन्दिर, स्तूप आदि धार्मिक वास्तु के प्रतीक हैं।गुप्त काल के स्तंभों पर आधारित बिना छत वाले प्रारंभिक मन्दिरों का स्थान धीरे. धीरे छत वाले मन्दिरों ने लिया और कालान्तर में मन्दिर वास्तुकला की तीन शैलियों का विकास हुआ- नागर, बेसर तथा द्रविड़। प्रारंभिक काल में गुफा मन्दिरों और चैत्यों का भी निर्माण हुआ। इन सभी में उत्कृष्ट मूर्तिकला, सुन्दर चित्रकारी एवं अलंकरण हैं। अजंता की चित्रकला विश्वप्रसिद्ध है। इसी

प्रकार प्राचीन भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में बुद्ध के सम्मान में स्तूप निर्माण हुआ। ये दो प्रकार के हैं- स्मारक के रूप में बने स्तूप ईंट और पत्थरों के बने ठोस ढांचे थे, जो बुद्ध या महावीर के जीवन की किसी घटना के किसी स्मारक में खड़े किए गए थे। दूसरे अस्थि संचायक स्तूप खोखले आकार के थे, जहां अवशेष रखे जाते थे। प्रारंभिक स्तूप विशाल गोलार्द्ध गुम्बदों के रूप में थे, जिनमें एक केन्द्रीय कक्ष में बुद्ध के स्मारक चिन्ह प्रायः सुन्दरता से स्फटिक जड़ित एक छोटी मंजूषा में रखे रहते थे। धीरे-धीरे स्तूपों के अलंकरण में भी वृद्धि हुई। कला के लौकिक पक्ष के अन्तर्गत ग्रामों और पुरों के सन्निवेश, विभिन्न प्रकार के भवन, दुर्ग आदि का निर्माण, पशु पक्षियों (सिंह, हिरन, मोर आदि), पुष्प (जैसे कमल) वृक्ष(वट, अश्वत्थ आदि), मनुष्यों एवं जनजीवन से सम्बन्धित विभिन्न अंकन हुए हैं और ये अत्यंत सजीव हैं। इस समग्र इकाई के अध्ययन से आप समझ पाए होंगे कि भारतीय कला का स्वरूप जितना स्थानीय था, बाह्य प्रभाव से भी वह अछूती नहीं रही। समय समय पर विभिन्न मानव समूह भारतवर्ष की सीमाएं लांघकर इस भूभाग में प्रविष्ट हुए उनकी कला का प्रभाव भी यहां पड़ा (यद्यपि विद्वानों में इस प्रभाव के बारे में विभिन्न मत हैं)और उनके परस्पर समन्वय से भी भारतीय कला में विविधता का समावेश हुआ।गांधार और मथुरा कला इसका एक प्रमुख उदाहरण हैं।

4.7 तकनीकी शब्दावली

1 पत्रवल्लरी/ पत्रलता - पत्तों की बेल

2 ईहामृग-काल्पनिक मृग

3 अभिप्राय- कला में मोटिफ

4 ऐरावत- इन्द्र का हाथी

5 भित्तिचित्र - दीवारों पर बनाए जाते थे।इसके अलावा कपड़े और संभवतः चमड़े पर बनाए जाने वाले 'चित्रपट' एवं लकड़ी, कीमती पत्थरों और हाथी दांत पर बनाए जाने वाले ''चित्रफलक प्रमुख थे।

6 तुषित स्वर्ग- एक स्वर्ग का नाम

7कुक्षि- कोख, गर्भ

8 तिरश्चीन- कुटिल,टेढ़ा

9 धर्मचक्रप्रवर्तन-ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध ने सारनाथ में अपना प्रथम उपदेश दिया, जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जाता है। कला में इसे चक्र के रूप में अंकित किया गया है।

14 यूप- यज्ञ का स्तंभ। दिव्यावदान ने यूप को धर्म का चिन्ह कहा है।

15 हर्मिका- स्तूप का एक भाग, जिसे शिखर के अस्थिपात्र की रक्षा हेतु निर्मित किया जाता है

16 मन्दिर का गर्भगृह-मुख्य पूजा स्थल, जहां उपास्य देव मूर्ति होती है

17 कुम्भाण्ड- एक असुर

18 प्रदक्षिणा- परिक्रमा

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड3.2 के उत्तर

1. (क) देखें 3.2.1(ख) देखें 3.2.4 व 3.2.4.1

2. (क) देखें 3.2.1(गलत) (ख) देखें 3.2.5 (सही)

खण्ड 3.3 के उत्तर

1. (क) देखें 3.3.1.1 (ख) देखें 3.3.1.1 व 3.3.1.2

(ग) देखें 3.3.1.3 (घ) देखें 3.3.1.4

(च) देखें 3.3.2

2. (क) देखें 3.3.1.1 (गलत) (ख) देखें 3.3.1.3 (गलत)

(ग) देखें 3.3.1.3 (सही) (घ) देखें 3.3.2 (सही)

(च) देखें 3.3.2 (सही) (छ) देखें 3.3.3 (सही)

खण्ड3.4 के उत्तर

1. (क) देखें 3.4 (ख) देखें 3.4

2. (क) देखें 3.4 (सही) (ख) देखें 3.4 (सही)

खण्ड 3.5 के उत्तर

1. (क) देखें 3.5

4.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी, 1966

2. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, दिल्ली, 1990

2. आनन्द कुमारस्वामी, इंट्रोडक्शन टु इण्डियन एंड इंडोनेशियन आर्ट, केस्सिंगर पब्लिकेशन, 2003

3 आनन्द कुमारस्वामी,द डांस ऑफ शिवा- फोर्टीन इण्डियन एसेज न्यूयॉर्क 2003,

4 आनन्द कुमारस्वामी, द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ नेचर इन इण्डियन आर्ट, स्टर्लिंग पब्लिकेशन, 1996

5ए.एल बाशम, अद्भुत भारत, हिन्दी अनुवाद, आगरा 1972

6भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, दिल्ली, 1973

7 वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर , 1972

8 कृष्णदत्त बाजपेयी, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ,1972

10 राय कृष्णदास, भारत की चित्रकला, इलाहाबाद,1976 (छठा संस्करण)

8. विशुद्धानन्द पाठक, दक्षिण भारतीय संस्कृति, लखनऊ, 2008

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई - 5 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें

5.3.1 भारत का भौगोलिक वातावरण

5.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

5.4.1 परम्परागत विशेषताएं

5.4.2 नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

5.10 निबन्धात्मकप्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पहली इकाई है । भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था है । इसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक है तथा इसकी विविध विशेषताएं है । प्रस्तुत इकाई में भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित इन बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है ।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वरूप, विशेषताओं एवं महत्व को समझ सकेंगें तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विश्लेषण कर सकेंगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को **पढ़ने** के बाद **आप-**

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को जान सकेंगें।
- विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण एवं उनकी व्याख्या कर सकेंगें ।
- भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को जान सकेंगें ।
- भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताओं को बता सकेंगें ।

5.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें

भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है । इसका कुल क्षेत्रफल 32.87 लाख वर्ग किलोमीटर है जो विश्व की कुल भूमि का 2.4 प्रतिशत है । भारत की भू-सीमा 15200 किलोमीटर व तटीय सीमा 7517.6 किलोमीटर है। यह तीन ओर से समुद्री सीमाओं से तथा एक ओर से हिमालय की पर्वत श्रेणियों **से** घिरा हुआ है, इस कारण भारत को उप-महाद्वीप कहा जाता है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है, जो सम्पूर्ण विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है। भारत में पुरुषों का प्रतिशत 51.54 प्रतिशत तथा महिलाओं का प्रतिशत 48.46 है । लिंगानुपात की दृष्टि से देखा जाय तो 1000 पुरुषों के सापेक्ष महिलाओं की संख्या 940 है। देश में साक्षरता 74.04 प्रतिशत है। वर्तमान में भारत में जनसंख्या का घनत्व 382 है जो 2001 में 325 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था इस देश में अनेक प्रकार की भूमि, खनिज पदार्थ, जलवायु, वनस्पतियां, कृषि उत्पादन तथा पर्याप्त मात्रा में जल संसाधनों की उपलब्धता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना मुख्यतः पांच मदों में वर्गीकृत की जा सकती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

5.3.1 भौगोलिक वातावरण

भारत उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है तथा इसकी आकृति चतुष्कोणीय है । यह विषुवत् रेखा के उत्तर में 8.4' से 37.6' उत्तरी अक्षांश और 68.7' से 97.25 के पूर्वी देशान्तर के बीच फैला हुआ है। भारत की प्राकृतिक सीमाएं उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिन्द महासागर है । भारत की सीमाएं उत्तर - पूर्व में चीन से, पूर्व में बांग्लादेश व म्यांमार से तथा पश्चिम में पाकिस्तान से मिलती हैं।

जलवायु की दृष्टि से यद्यपि भारत की जलवायु सम-शीतोष्ण है तथा अनेक विषमताएं भी हैं, यथा- चेरापूंजी नामक स्थान पर विश्व की सर्वाधिक वर्षा (1145 सेण्टीमीटर से भी अधिक) होती है, तो पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ में न्यूनतम 50 सेण्टीमीटर से कम वर्षा होती है। जलवायु में भिन्नता के कारण भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जिनकी उर्वरा शक्ति भी भिन्न-भिन्न है। साथ ही, यहां की जलवायु तथा मिट्टी में सभी प्रकार की फसलें पैदा करने की क्षमता है।

5. 4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

भारत एक विकासोन्मुख राष्ट्र है अतः इसकी मूल विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: परम्परागत विशेषताएं तथा नवीन विशेषताएं।

5.4.1 भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताएं:

ये वे विशेषताएं हैं जो भारत को एक अल्प विकसित राष्ट्र के रूप में विरासत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय प्राप्त हुईं। प्रमुख परम्परागत विशेषताएं इस प्रकार हैं:

कृषि की प्रधानता - भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वर्ष 1951 में भारत की कार्यकारी जनसंख्या का 69.5 प्रतिशत भाग कृषि में लगा हुआ था, जो वर्ष 2001 में घटकर 64 प्रतिशत रह गया। यह भाग अधिक अधिक होने के कारण भारत को अल्प- विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाता है। यद्यपि वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद में काफी वृद्धि हुई है, तथापि उसमें कृषि का प्रतिशत कम हुआ है। भारत के निर्यात व्यापार में कृषि का योगदान घटकर 13.3 प्रतिशत रह गया है। अभी भी अन्य क्षेत्रों की तुलना में कृषि पर अत्यधिक लोग कार्यरत हैं और भारत में कृषि रोजगार का मुख्य साधन है।

प्रति व्यक्ति निम्न आय - विश्व विकास रिपोर्ट, 2010 के **अनुसार** वर्ष 2008 में भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल 1070 डालर है। यह अमेरिका की प्रतिव्यक्ति आय (47580 डालर) की तुलना में लगभग 44 वां भाग है। वर्तमान समय में यद्यपि भारत निरपेक्ष रूप से विश्व की 12 वीं बड़ी अर्थव्यवस्था होते हुए भी प्रति व्यक्ति आय के मामले में काफी पिछड़ा हुआ है। भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में बाधक है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से देश में निर्धनता का साम्राज्य है। आज भी, भारत की 25 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी **रेखा** के नीचे जीवन-यापन कर रही है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था - भारत ग्रामों का देश है। आज भारत में 6.05 लाख गांव व लगभग 4000 छोटे व बड़े शहर हैं। 2001 की जनगणनानुसार भारत की कुल जनसंख्या **का** 74.3 प्रतिभाग भाग ग्रामों में निवास करता है अर्थात् भारत में 4 व्यक्तियों में से 3 गांव में निवास करते हैं। इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या का यह प्रतिशत विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है, जो भारत को एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करती है। इसके विपरीत विकसित देशों में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत भारत की तुलना में काफी अधिक है।

औद्योगिक पिछड़ापन - अल्प विकसित देशों में उद्योगों की संख्या बहुत कम होती है। उद्योगों की संख्या कम होने बहुत थोड़े लोगों को रोजगार मिल पाता है और **इस** क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है। उद्योगों

के अभाव में आर्थिक विकास की आधारभूत पृष्ठभूमि तैयार किया जाना सम्भव नहीं होता। भारत में 12 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी हुई है और सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान मात्र 25 प्रतिशत है। भारत में शीघ्र लाभ देने वाले उद्योगों में ही विनियोग किया जाता है। इससे अर्थव्यवस्था में उद्यमियों को कार्य करने के लिए उचित एवं अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। पूंजी का अभाव तथा निम्न जीवन स्तर आदि कारकों से औद्योगिक विकास बाधित होता है।

जनसंख्या का भारत- अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धिदर 2 से 4 प्रतिशत वार्षिक है । इस समस्या से अधिकांश विकासशील एवं अर्द्धविकसित देश ग्रसित हैं। 2011 की जनगणनानुसार भारत में जनसंख्या 121 करोड़ है। दस वर्षों में भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत रही। देश में, जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते दबाव के कारण यहां उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम विदोहन के बावजूद प्रति व्यक्ति आय पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ सकी है।

पूंजी का अभाव- भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास का एक अन्य मूल कारण पूंजी का अभाव है जो दो रूपों **में** प्रकट होती है- प्रथम, प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूंजी की निम्न मात्रा; और द्वितीय, पूंजी- निर्माण की प्रचलित निम्न दर। अधिकतर अल्प विकसित देशों में व्यापक गरीबी के कारण पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है। भारत में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक कम होने के कारण यहां पूंजी- निर्माण एवं विनियोग की दर अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। वास्तव में पूंजी निर्माण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। जापान में पूंजी निर्माण की दर 33 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह 24.0 प्रतिशत । भारत में पूंजी की मांग अधिक है, जबकि उपलब्धता कम। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन, भूमि की उत्पादकता बढ़ाने, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु प्रशिक्षण व्यवस्था आदि कार्यों के लिए पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः आर्थिक विकास एवं प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। बैंजामिन हिंगिस के अनुसार "पूंजी का संचय आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। अर्थव्यवस्था चाहे अमेरिका की तरह पूंजीवादी हो अथवा चीन की तरह साम्यवादी; आर्थिक विकास बिना पूंजी-संचय के सम्भव हो ही नहीं सकती।"

बेरोजगारी- भारत जनसंख्या- बहुल अल्प विकसित देश है। मानव श्रम की उपलब्धता उत्पादक कार्यों की तुलना में अधिक है । ऐसी स्थिति में समस्त जनसंख्या को लाभकारी रोजगार उपलब्ध करा पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। वर्तमान समय में, भारत में, अनुमानतः 5 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। प्रतिवर्ष 62 लाख बेरोजगार व्यक्तियों की वृद्धि हो जाती है। भारत में जो व्यक्ति रोजगार **से** जुड़े हैं, उनकी स्थिति भी अच्छी नहीं है। इनमें से कुछ ऐसे लोग **भी** है जिन्हें नियमित रोजगार नहीं प्राप्त होता, अर्थात् जो कार्य कर रहे हैं, उनके लिए पूरे समय के लिए काम नहीं है। ऐसी स्थिति को अर्द्ध रोजगार कहा जाता है। भारत में कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है। यहां कृषि क्षेत्र में भारी प्रच्छन्न बेरोजगारी होती है। इसका कारण यह है कि जब आर्थिक विकास की गति धीमी होती है और जनसंख्या तेजी से बढ़ती है **तो** रोजगार के अवसर उतने नहीं बढ़ते, जितनी कि मांग होती है। इस स्थिति में कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है और छोटी-छोटी जोतों पर जरूरत से अधिक लोग काम करते हैं। इससे कुल उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती। अर्थशास्त्री इस स्थिति को प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी कहते हैं।

प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता - भारत की प्रकृति बहुत उदार है। इसने भारत को प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में प्रदान किये हैं। यहां सदा बहने वाली नदियां हैं। सोना, चांदी, कोयला, लोहा, उर्वरक तथा मैगनीज आदि खनिज पदार्थों

का अथाह भण्डार है, वन सम्पत्ति विशाल है, शक्ति के साधनों का बाहुल्य है। यहां की मिट्टी उपजाऊ है तथा जलवायु बहुत सुहावनी है, परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि इन प्राकृतिक साधनों का समुचित विदोहन नहीं हो सका है। इससे सम्पन्नता होते हुए भी दरिद्रता दूर किया जाना सम्भव नहीं हो सका है। इससे भी भारत को अल्प विकसित राष्ट्र की श्रेणी में रखा जा सकता है।

निर्वल और आर्थिक संगठन- भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक संगठन निर्बल है। यहां बचत की सुविधाएं कम हैं, बैंकिंग सुविधाओं का विकास कम हुआ है, ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी साहूकारों तथा महाजनों का बोलवाला है, जनता को विनियोग क्षेत्रों की पूरी जानकारी नहीं है, औद्योगिक वित्त का अभाव है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए जिन संस्थाओं की आवश्यकता है, उनका यहां अभाव है।

आर्थिक विषमता - अन्य अल्प विकसित देशों के समान ही भारत में भी आय एवं धन (सम्पत्ति) के वितरण में असमानता पायी जाती है। विकसित देशों में जहां कराधान की प्रगामी प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था, शिक्षा व प्रशिक्षण और रोजगार में समान अवसरों के कारण आर्थिक असमानताएं कम हुई हैं, वहां अल्प विकसित देशों में इस दिशा में उतना काम नहीं हुआ है। कृषि क्षेत्र में थोड़े से लोगों के पास भूमि के केन्द्रीकरण और उद्योगों तथा व्यापार पर कुछ ही लोगों के नियन्त्रण और शेष लोगों को अपने श्रम पर निर्भरता के कारण अल्प - विकसित देशों में आय की असमानताएं अधिक हैं। भारत में 50 प्रतिशत व्यक्तियों को कुल आय का केवल 21.2 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। भारत के सभी राज्यों में प्रति व्यक्ति आय समान नहीं है। आर्थिक सर्वेक्षण 2010 के अनुसार प्रति व्यक्ति आय गोवा की सबसे अधिक है, जबकि सबसे कम बिहार की रही है। भारत में आर्थिक विषमता निरन्तर बढ़ती जा रही है। हालांकि इसे दूर करने हेतु आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लिए विभिन्न योजनाएं एवं सुविधाएं चलाई जा रही हैं।

आर्थिक निर्भरता - एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अल्प विकसित देश बहुत समय तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। इनका औपनिवेशिक शोषण करने वाले पूंजीवादी देशों ने इन पर विदेशी व्यापार का ऐसा ढांचा थोपा जिससे ये देश प्राथमिक कृषि वस्तुओं के उत्पादक व निर्यातक बनकर रह गये और औद्योगिक वस्तुओं की मांग को पूराकरने के लिए इन पूंजीवादी देशों पर निर्भर हो गये। स्वतन्त्रता के बाद भी काफी समय तक आर्थिक निर्भरता की यह स्थिति चलती रही। यही कारण है कि भारत चाय और पटसन के निर्यात पर निर्भर बना रहा। पिछले वर्षों से आर्थिक आयोजन प्रक्रिया के कारण अनेक अल्प विकसित देशों के उत्पादन और व्यापार ढांचे में विविधीकरण हुआ है तथा औद्योगिक वस्तुओं के लिए विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है।

रूढ़िवादिता - अल्प विकसित देशों में सामाजिक ढांचे में रूढ़िवादिता अभी भी बनी हुई है सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। इन रूढ़ियों का देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भारत में लोग बाल-विवाह, मृतक भोज, विवाह के समय दावतें तथा आभूषण निर्माण जैसे अनुत्पादक कार्यों के लिए कर्ज लेकर भी अपव्यय करते हैं। कुछ देशों में कृषि वित्त प्रदान करने के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना नहीं की **गयी** है और महाजनों की जकड़ पहले की तरह बनी हुई है। इसका परिणाम यह है कि आर्थिक ढांचा पहले जैसा ही बना हुआ है **और** यह जड़ता विकास में बाधा बन गयी है।

निर्धनता - भारत में अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है । राष्ट्र के अधिकांश भाग गरीबी से ग्रसित हैं। लकड़ावाल फॉर्मूला के अन्तर्गत भारत में सभी संघीय प्रदेशों व राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न निर्धरता रेखाएं निर्धारित की गयी हैं। 1999-2000 में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों की संख्या 26.10 प्रतिशत थी जबकि 2004-05 में य 21.80 प्रतिशत हो गयी। भारत में सर्वाधिक गरीब जनसंख्या वाला राज्य उड़ीसा है, जहां 46.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनवयापन कर रही है । इसके विपरीत जम्मू-कश्मीर में केवल 5.4 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं। **इससे** यह प्रतीत होता है कि गरीबी का अनुपात कम हुआ है, किन्तु कुल गरीबों की संख्या में कमी होना अभी शेष है।

परिवहन व संचार साधनों का अभाव- भारत परिवहन व संचार साधनों की दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ देश है । आज भी कच्ची सड़कों की संख्या बहुत अधिक है । ग्रामों की एक बड़ी संख्या अभी भी सड़कों से नहीं जुड़ सकी है। इसी प्रकार देश के संचार साधनों का पर्याप्त विकास हुआ है, किन्तु फिर भी विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है।

कुशल श्रम व तकनीकी ज्ञान का अभाव - भारत में गत वर्षों में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्षेत्रों में प्रगति होने पर भी तकनीकी ज्ञान का अभाव है और श्रमिकों की कुशलता का स्तर बहुत नीचा है। यहां पर प्रति हैक्टेयर उपज व प्रति श्रमिक उपज दोनों का स्तर अन्य देशों की तुलना में बहुत नीचा है । **अत**: कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्र पिछड़े हुए हैं।

5.4.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास हेतु नियोजन को अपनाया गया है । इसके अन्तर्गत 1951 से पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गयी हैं । इन योजनाओं के क्रियान्वयन से ही अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में विकास की गति में तीव्रता आई है । भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर **इसे** एक विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है । स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था को जो विशेषताएं विरासत में प्राप्त हुई थीं उनमें विकास की प्रक्रिया व प्रयासों के कारण कुछ नवीन विशेषताएं भी जुड़ गयीं ।

भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं वे हैं जो भारत ने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपने प्रयासों से अर्जित की हैं । इस आधार पर भारत को विकासशील राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की जाती है । प्रमुख नवीन विशेषताएं इस प्रकार हैं:

नियोजित अर्थव्यवस्था - 1 अप्रैल, 1951 से भारतीय अर्थव्यवस्था नियोजित अर्थव्यवस्था के रूप में कार्यशील है। 1951 से अब तक 10 पंचवर्षीय योजनाएं एवं 6 वार्षिक योजनाएं पूरी चुकी हैं तथा 11वीं पंचवर्षीय (2007 से 2012) के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया चल रही। भारत में आर्थिक आयोजन के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए साधनों को आवण्टित किया जाता है । 1990 के दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से आर्थिक आयोजन का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि है । जिस देश की अर्थव्यवस्था में लगभग 200 वर्ष तक औपनिवेशिक शोषण के कारण कोई खास विकास न हुआ हो, और वहां की अर्थव्यवस्था संसार में विकास की दृष्टि से बहुत पीछे रह **गयी** हो, वहां आर्थिक संवृद्धि पर जोर देना बहुत आवश्यक है, जो कि आर्थिक नियोजन से ही सम्भव है । I

प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि - देश को आजादी प्राप्त होने के बाद से भारतीय जन सामान्य की प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1950-51 से 2004-05 तक 54 वर्षों की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 2.25 प्रतिशत

वार्षिक वृद्धि हुई है। 1993-94 की कीमतों के आधार पर 2004-05 में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 12416 रुपये थी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आय में निरन्तर वृद्धि होने से भारत विकासशील देशों की श्रेणी में सम्मिलित होने का अधिकारी है। देश के सभी 28 राज्यों व 7 केन्द्रशासित राज्यों में सर्वाधिक प्रति व्यक्ति आय चण्डीगढ़ में है।

सार्वजनिक क्षेत्र - भारत **में** योजनाओं के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में उद्योगों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र में मात्र 5 इकाइयां थीं और इनमें केवल 29 करोड़ रुपये की पूंजी लगी थी। इसकी तुलना में 2004-05 में सार्वजनिक क्षेत्र में 227 औद्योगिक इकाइयों में 357849 करोड़ रुपये की पूंजी का निवेश था। इसके अतिरिक्त सरकार के विभिन्न विभागीय उपक्रमों में भी पूंजी का भारी निवेश है। राज्य सरकारों के उद्यमों में भी काफी पूंजी का निवेश हुआ है। बैंक तथा दूसरे वित्तीय संस्थानों में भारी निवेश है। आर्थिक आयोजन की अवधि में कुल निवेश का लगभग 44 प्रतिशत निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है और शेष निजी क्षेत्र में। आज सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात, सीमेण्ट, रसायन, इंजीनियरिंग, कोयला व अन्य उद्योग स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित वित्तीय संस्थाओं ने निवेश के लिए बचतों या साधनों को एकत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संक्षेप में, आज भारत के आर्थिक ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है।

बचत एवं पूंजी निर्माण की दरों में वृद्धि- भारत में गत दशकों में सकल घरेलू बचत दर में पर्याप्त वृद्धि हुई है। यह आर्थिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। देश में घरेलू बचतों का उपयोग आर्थिक विकास कार्यों में भली-भांति हो रहा है। वर्ष 1950-51 में सकल घरेलू बचत - दर 10.4 प्रतिशत थी, **जो वर्ष** 1997-98 में बढ़कर 26.3 प्रतिशत हो गयी थी। वर्ष 2008-09 में सकल घरेलू बचत-दर (जीडीपी) का प्रतिशत 32.5 आकलित किया गया। इसी प्रकार पूंजीनिर्माण की दर जो वर्ष 1950-51 में 10.2 प्रतिशत थी, वर्ष 2008-09 में बढ़कर 35.6 प्रतिशत हो गयी।

समाजवादी व्यवस्था की ओर - आर्थिक विषमता को कम करने का बराबर प्रयत्न किया जा रहा है। इसी को ध्यान में रखकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति, कृषकों को उनकी भूमि के अधिकार दिलाना, भूतपूर्व देशी रियासतों के राजाओं को मिलने वाला प्रिविपर्स समाप्त करना, सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक उपक्रम स्थापित करना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना, कृषि जोतों की उच्चतम व निम्नतम सीमा निर्धारित करना, खाद्यान्नों का राजकीय व्यापार करना, सहकारी आन्दोलन का विकास करना, कृषकों को ऋणमुक्त घोषित करना आदि। इस प्रकार सरकार नियोजन के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था की ओर अग्रसर है।

बैंकिंग सेवाओं का विकास- आजादी के बाद से देश के बैंकिंग और वित्तीय ढांचे में अनेक प्रगतिशील परिवर्तन हुए हैं। इस अवधि में मुद्रा और पूंजी बाजार के संगठन में सुधार हुआ है, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार हुआ है और आधुनिक बैंक छोटे कस्बों और गांवों तक पहुंच गये हैं। सबसे पहले 1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसका नाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया कर दिया गया। इसके साथ अन्य 8 बैंकों (जो वर्तमान में 7 हैं) को **इसके** सहायक बैंक के रूप में बदल दिया गया, जिन्हें स्टेट बैंक समूह के बैंक कहा जाता है। देश के ऐसे 14 बड़े व्यावसायिक बैंकों का 19 जुलाई, 1969 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इससे इनकी साख और शाखा विस्तार नीतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बैंकों ने कृषि, लघु उद्योग और प्राथमिकता वाले क्षेत्रांओ को बड़ी मात्रा में साख देना आरम्भ किया। 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1975 से भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक खोले गये। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मुख्य रूप से छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, छोटे कारीगरों और समाज के कमजोर वर्गों की साख सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करते हैं। आज लगभग 60 प्रतिशत बैंक शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

औद्योगिक वित्त प्रदान करने के लिए, औद्योगिक वित्त निगम, औद्योगिक विकास बैंक आदि संस्थाएं स्थापित की गयी हैं।

आधारभूत उद्योगों का विकास- आजादी के समय भारत का औद्योगिक ढांचा सामान्य रूप से अल्प-विकसित तो था ही, उसका पिछड़ापन पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में बहुत था। आजादी के बाद से औद्योगिक विकास का स्वरूप राज्य की नीतियों द्वारा निर्धारित होता रहा है I भारत में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद पूंजीगत वस्तुएं उत्पादित करने वाले उद्योगों पर काफी जोर दिया गया था, क्योंकि आयोजकों का विचार था कि बिना इसके अर्थव्यवस्था का समग्र रूप से विकास आसान नहीं होगा। अतः अनेक आधारभूत उद्योग स्थापित किये गये हैं जो पूंजीगत उपकरण तथा कच्चे माल का उत्पादन करते हैं। इससे देश के औद्योगिक ढांचे में मजबूती आई हैं। आयोजन काल में जो आधारभूत उद्योग व्यापक स्तर पर विकसित हुए हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं- लोहा और इस्पात, भारी इंजीनियरिंग, रसायन, उर्वरक, मशीनी औजार, रेल इंजन, बिजली के भारी उपकरण, एल्यूमिनियम तथा पैट्रोलियम आदि।

कृषि को प्रोत्साहन - योजनाकाल से ही भारत में कृषि को विशेष प्रोत्साहन दिया गया था। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र के लिए उत्तरोत्तर व्यय में वृद्धि का प्रावधान किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि के क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन 5.13 करोड़ टन था, जबकि 2009-10 में देश में खाद्यान्न उत्पादन में 218.20 मिलियन टन का अनुमान किया गया। इसके अतिरिक्त भारत में अब वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया जा रहा है। कृषि **को** विकास की दिशा प्रदान करने के लिए हरितक्रान्ति एवं श्वेतक्रान्ति को बहुत समर्थन मिला है, जिसके अन्तर्गत कृषकों ने आधुनिक यन्त्रों का प्रयोग, उन्नत बीज एवं खाद का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों एवं विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत निर्धन एवं पिछड़ा हुआ देश नहीं है, वरन् नियोजित अर्थव्यवस्था के अपनाए **जाने** के फलस्वरूप उन्नति की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। आर्थिक नियोजन के 6 दशकों **में** भारत ने कृषि, व्यापार, उद्योग आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। शिक्षा, परिवहन संचार के क्षेत्र में वृद्धि एवं विस्तार ने देश को विकासशील देशों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत अच्छे भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक संसाधनों, यथा- भूमि तथा मिट्टियां, वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन, शक्ति के संसाधनों, मानव संसाधन, कृषि व सिंचाई, उद्योग एवं परिवहन आदि के लिए तथा उसकी बेहतर उत्पादन क्षमता के कारण एक धनी देश माना जाता है, किन्तु भारत की कुछ पारम्परिक विशेषताएं ऐसी हैं जिनके कारण भारत धनी होते हुए भी निर्धन कहा जाता है। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी, कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति निम्न आय, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, औद्योगिक पिछड़ापन, पूंजी का अभाव, तथा रूढ़िवादिता ऐसी प्रमुख विशेषताएं हैं जो भारत को धनी होते हुए भी निर्धन बनाए हुए हैं।

भारत एक विकासशील देश है, क्योंकि यह एक प्रगतिशील राष्ट्र है जो तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर है। आर्थिक नियोजन, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूंजी निर्माण में तेजी, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो भारत को एक विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा करती हैं। जिस तेजी से भारत विकास के पथ पर बढ़ रहा है, यदि वही गति निरन्तर जारी रहे तो वह दिन दर नहीं जबकि भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में जाना जाएगा।

अभ्यास प्रश्न:

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

अ. भारत की कुल भूमि का क्षेत्रफल.....लाख किलोमीटर है।

ब. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या..... करोड़ है।

स. भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या पर घनत्व ……. व्यक्ति है।

द. भारत में पुरुष एवं महिलाओं का अनुपात 1000 पुरुष: …….. महिलाएं है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न :

अ. शक्ति के संसाधन के रूप में निम्न की गणना नहीं की जाती है:

1. परमाणु 2. कोयला

3. लोहा एवं इस्पात 4. पैट्रोलियम

ब. भारत में सिंचाई का साधन नहीं है:

1. तालाब 2. नल

3. कुंए 4. नहरें

स. भारत, विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है:

1. चौथी 2.बारहवीं

3. आठवीं 4. तीसरी

द. भारत की कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी है:

1. 10 प्रतिशत 2. 12 प्रतिशत

3. 8 प्रतिशत 4. 6 प्रतिशत

य. भारत में नियोजन प्रारम्भ हुआ:

1. 1951 से 2. 1947 से

3. 1950 से 4. 1948 से

3. लघु उत्तरीय प्रश्न:

अ. भारत के प्राकृतिक संसाधन विशाल हैं, कैसे ?

ब. विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषताएं बताओ।

स. भारत के निवासी निर्धन हैं. कैसे ?

द. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना बताइये |

5.6 शब्दावली

- **वर्ग किलोमीटर-** 1 किलोमीटर लम्बा तथा 1 किलोमीटर चौड़ाई वाला वर्गाकार क्षेत्र । जनसंख्या **का** घनत्व - **इसका** तात्पर्य है कि 1 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों की संख्या।
- **समशीतोष्ण-** शीतकाल तथा ग्रीष्मकाल का समान रूप में पाया जाना ।
- **अर्द्धविकसित** एवं **विकासशील** - ऐसे देश जहां नागरिकों को भोजन, कपड़े तथा आवास सीमित मात्रा में ही मिल पाते हों। जहां बेरोजगारी तथा अशिक्षा अधिक पायी जाती है तथा जीवन-स्तर नीचा होता है। **ऐसे** देशों को अर्द्ध विकसित या विकासशील की **संज्ञा** दी जाती है।
- **घरेलू उत्पाद -** देश के अन्दर होने वाला समस्त अन्तिम वस्तुओं का कुल उत्पादन।
- **आर्थिक विषमता-** आर्थिक रूप से अन्तर होना, गरीबी तथा अमीरी के बीच खाई होना।
- **नियोजित अर्थव्यवस्था -** जिस देश में योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया जाय।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति:

अ. 32.87 ब. 121 स. 382 द. 940

2. बहुविकल्पीय प्रश्न:

अ. लोहा एवं इस्पात, ब. नल, स. बारहवीं, द. 12 प्रतिशत, य 1951

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
3. Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण,शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

5.9 उपयोगी ग्रन्थ

• Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
• Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
• Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

5.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को निरूपित कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की कौन-कौन सी नवीन विशेषताएं हैं? उनका संक्षिप्त परिचय भी दीजिए ।

इकाई-6 आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भारत में नियोजन का इतिहास

6.4 आर्थिक नियोजन से अभिप्राय

6.5 अल्पविकसित देशों में आयोजन का औचित्य

6.6 अल्पविकसित देशों में आयोजन की सफलता की शर्तें

6.7 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता

6.8 नियोजन के प्रकार

6.9 भारत में योजना निर्माण प्रक्रिया

6.10 सारांश

6.11 शब्दावली

6.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.14 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह नवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों से आपको अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। पाश्चात्य विकसित देशों में विकास की जिम्मेदारी व्यक्तिगत साहसियों पर सौंप दी गई। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को चक्रात्मक परिवर्तन देखने पड़ते हैं। 1930 की विश्व मन्दी के बाद सरकारों **ने** रोजगार बढ़ाने **और** श्रम उत्पादकता **में** वृद्धि की जिम्मेदारी ले ली। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत जैसे अल्पविकसित देश उपनिवेशवाद के चंगुल से जब मुक्त हुए तो वहाँ की सरकारों ने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का रास्ता चुना जिससे सीमित साधनों में अधिकतम सामाजिक कल्याण किया जा सके। इस इकाई में हम देखेंगे कि भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र हमारे नीति निर्धारकों ने अपनायी। आयोजन की शुरूआत में सरकार ने अर्थ व्यवस्था को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपने नियंत्रण में रखा निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता

कम रही। अस्सी के दशक के अन्त से धीरे-धीरे बन्धकों को सरकार हटाती जा रही है। वर्तमान में हमारी अर्थव्यवस्था के लिए **सरकार** निर्देशात्मक आयोजन विधि का अधिक सहारा ले रही है। आयोजित अर्थव्यवस्था में मूल्य यंत्र के स्थान पर आयोजन अधिकारी अथवा केन्द्रीय संगठन विद्यमान रहता है जो समस्त आर्थिक क्रियाओं को संचालित तथा नियंत्रित करता है । आयोजित अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु का उत्पादन सम्पूर्ण समाज की आवश्यकता तथा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की प्रवृत्ति से नियंत्रित होता है । भारत में आर्थिक नियोजन प्रासंगिक है क्योंकि विशाल जनसंख्या को नियंत्रित करना एवं उसकी जरूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र नहीं लेगा, उसके लिए कर्मबद्ध, **मजबूत** एवं ईमानदार सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता है । इस इकाई में हम देखेंगें इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार जो योजना बनाती है, उसकी निर्माण प्रक्रिया क्या है और उसमें कौन-कौन से संगठन सम्मिलित हैं ।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में नियोजन की पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगें ।
- भारत ने स्वतंत्रता पश्चात आर्थिक नियोजन का रास्ता अपनाया को जान सकेंगें |
- नियोजन कितने प्रकार के हो सकते हैं और भारतीय नियोजन व्यवस्था में किस-किस
- प्रणाली के गुण आते है का वर्णन कर सकेंगें ।
- भारत के योजना निर्माण प्रक्रिया में सरकार - केन्द्र एवं राज्य और विभिन्न संगठनों की क्या भूमिका को जान सकेंगें।

6. 3 भारत में नियोजन का इतिहास

1934 में सर **एम** विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक Planned Economy of India में 10 वर्षीय योजना प्रस्तुत की जिसका मूल उद्देश्य 10 वर्षों में राष्ट्रीय आय को दुगुना करना, औद्यागिक उत्पादन में वृद्धि करना, लघु एवं बड़े उद्योगों का समन्वित विकास करना था । राष्ट्रीय आयोजन समिति 1938 के अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे जो स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री थे इसलिए इस समिति के विचार 1950 में आयोजन की प्रक्रिया का आधार बने। मूल उद्योगों और सेवाओं, खनिज साधनों, रेलों, जल मार्गों, नौ-परिवहन और अन्य सार्वजनिक उपयोगिता वाले उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण होना चाहिए तथा उन बड़े पैमाने के उद्योगों पर थी जिनमें एकाधिकार कायम होने की सम्भावना हो । आर्थिक विकास के लिए अर्थ व्यवस्था का आद्योगिकीकरण, कुटीर उद्योगों सहित आवश्यक है । कृषि क्षेत्र का विकास भी जरूरी है इसके लिए समिति ने सिफारिश की कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन क्षतिपूर्ति देकर हो, सहकारी खेती और ऊँची कृषि आय पर आयकर की भाँति आरोही कर लगाया जाय। इसके आठ उद्योगपतियों ने मिलकर बम्बई योजना के नाम से एक योजना बनाई। आचार्य श्रीमन्नारायण ने गाँधीवादी योजना बनाई जिसमें 10 वर्ष के अन्दर न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा। कृषि एवं उद्योगों का एक साथ एवं संतुलित विकास पर बल दिया। कुटीर एवं लघु उद्योगों पर विशेष बल दिया गया। क्रान्तिकारी **श्री** एन. राय ने जनता योजना बनाई। यह रूसी आयोजन से प्रेरित थी और इसमें सामूहिक या सरकारी खेती एवं भूमि के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की गई। ये सभी कागजी योजनाएं थीं किन्तु ये सभी योजनाओं ने भारत में आयोजन की सोच के लिए प्रेरक का कार्य किया। 1950-51

में प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरूआत हुई तत्पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखला चालू हो गयी। आर्थिक विकास के लिए मिश्रित प्रणाली को चुना गया जिसमें **निजी** एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को समाहित किया गया।

6.4 आर्थिक नियोजन से अभिप्राय

आर्थिक नियोजन से अर्थ एक संगठित आर्थिक प्रयास से है जिसमें एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित एवं सुपरिभाषित सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक साधनों का विविकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं-

• लक्ष्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण - सोच समझकर लक्ष्यों को निर्धारित करना और उनकी प्राप्ति हेतु प्राथमिकताओं के क्रम को निश्चित करना।

• संगठित प्रणाली द्वारा कार्य करना। • केन्द्रीय नियोजन संस्था जो योजनाएं बनायें उन्हें समन्वयित करें और उनके क्रियान्वयन की व्यवस्था करें।

• आर्थिक नियोजन एक निश्चित अवधि हेतु होता है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये जाते हैं। यह सरकारी रणनीति का हिस्सा होता है। राज्य हस्तक्षेपक का कार्य करता है और निजी संस्थाओं को भी सरकारी निर्देशों का पालन करना पड़ता है।

• इसका उद्देश्य समाज का विकास करना, रहन सहन के स्तर को उठाना, आय में वृद्धि करना और सामाजिक बुराइयों का अन्त करना है।

• साधन किसी **भी** देश के सीमित होते हैं इसलिए उनका विविकपूर्ण ढंग से उपयोग करना।

• यह दीर्घकालीन प्रक्रिया है।

• वर्तमान साधनों का ज्ञान तथा उनका सर्वोत्तम आवंटन। संविधान के निदेशक सिद्धान्तों (Directive Principles of Constitution) में राज्य की नीतियों के संचालन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये:-

(क) नागरिकों - पुरूषों और स्त्रियों दोनों को समान रूप से जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधनों का अधिकार मिलेगा।
(ख) भौतिक साधनों के स्वामित्व का वितरण और नियंत्रण सर्वकल्याणकारी हो।
(ग) धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण आम जनता के हितों के विरूद्ध न हो।
आयोजन के फलस्वरूप आर्थिक विकास की गति ऐसी हो कि आम जनता उसे महसूस कर सके जिससे अनियोजित समाज की अपेक्षा प्रगति अल्पकाल में प्राप्त की जा सके। भारत में आयोजन के प्रमुख लक्ष्य निम्नांकित हैं -

• आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।

• सामाजिक न्याय

• पूर्ण रोजगार की प्राप्ति

• गरीबी निवारण एवं रोजगार अवसरों का सृजन आत्म निर्भरता की प्राप्ति

• निवेश एवं पूँजी निर्माण को बढ़ावा

• आय वितरण एवं क्षेत्रीय विषमता दूर करना

• आधुनिकीकरण जिसे छठी योजना में लागू किया गया।

• मानव संसाधन का विकास जिसे आठवीं योजना में लागू किया गया।

• निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में गरीबों को सुरक्षा जाल प्रदान करना।

• तीव्र आर्थिक विकास के साथ समावेशी विकास जिसे ग्यारहवीं योजना में लागू किया गया।

6.5 अल्पविकसित देशों में आयोजन का औचित्य

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब भारत जैसे देश उपनिवेशवाद की जकड़न से छूटे तब उनके सामने समस्या थी कि किस प्रकार वे अपने सीमित संसाधनों को विभिन्न विकासात्मक परियोजनाओं और **अपनी** आवश्यकताओं पर खर्च करें जिससे सामाजिक कल्याण अधिकतम हो। अल्पविकसित देशों में उपभोग की सीमान्त इच्छा बहुत तीव्र होती है तथा प्रदर्शन प्रभाव बहुत बलवती होता है इसलिए पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाने के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक है। इसलिए भारत जैसे गरीब देशों ने पूँजी निर्माण की दर में बढ़ोत्तरी लाने के लिए मूल्य मंत्र प्रणाली को छोड़कर सरकारी हस्तक्षेप प्रधान आयोजन का रास्ता चुना। अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रारम्भ कराने तथा उसे बनाये रखने के लिए आर्थिक आयोजन का सुझाव दिया गया। इन देशों में आर्थिक विकास के लिए राज्य के हस्तक्षेप की नीति इसलिए भी अपनायी जाती है क्योंकि इन देशों में श्रम बेरोजगारी प्रचुर मात्रा में है। मूल्य यंत्र द्वारा संचालित आर्थिक विकास सन्तुलित नहीं होता क्योंकि निजी उद्यमी वहीं विनियोग करते हैं जो क्षेत्र विकसित होते हैं और जहाँ लाभ अधिक हो। इसलिए अल्पविकसित देशों में तीव्र तथा सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए राज्य को आधारभूत संरचना में विनियोग करना पड़ता है। आयोजन ही एकमात्र विकल्प बचता है गरीबी के दुश्चक्र को तोड़ने और सन्तुलित विकास के लिए। इन देशों में साहसियों की कमी होती है। इस स्थिति में सरकार को साहसी का काम करना पड़ता है और आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना पड़ता है। आयोजन इसलिए भी जरूरी है जिससे पूँजी तथा शक्ति का केन्द्रीयकरण कुछ ही हाथों में न हो तथा सबको ठीक ढंग से जीने व कार्य करने का अवसर मिल सके।

6.6 अल्पविकसित देशों में आयोजन की सफलता की शर्तें

1. आयोजन की सफलता के लिए जरूरी है कि सरकार शक्तिशाली तथा कुशल हो तथा आर्थिक संगठन मजबूत हो। योजना के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर होता है इसलिए कमजोर तथा अस्थायी सरकार विकासात्मक कार्यक्रमों को सफल नहीं बना पायेगी। अल्पविकसित देशों में जहाँ प्रजातांत्रिक सरकारें हैं आयोजन बहुत सफल नहीं हुआ है क्योंकि योजना के सम्बन में विभिनन दलों की स्वीकृति लेना बहुत कठिन है। संघीय व्यवस्था में आयोजन के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के बीच समन्वय आवश्यक है। संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्र का शक्तिशाली होना जरूरी है।

2. आर्थिक योजना की क्रिया विश्वसनीय तथा उचित मात्रा में सांख्यिकी आँकड़ों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। ज्वेइंग के अनुसार "प्रभावपूर्ण आयोजन का रास्ता शोध तथा तथ्यों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान के बीच से होकर जाता है। अच्छे प्रशासन तथा प्रोपोगण्डा के अतिरिक्त सन्तोषप्रद आँकड़े, जाँच, रिपोर्ट तथा लागत लेखा आदि आयोजन को प्रभावपूर्ण बनाते हैं। "

3. एक निश्चित उद्देश्य हों जिनकी पूर्ति का प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर किया जा सके।

4.योजना के क्रियान्वयन के लिए प्रशासनिक कुशलता पर निर्भर करता है । अल्पविकसित देशों **में** प्रशासनिक भ्रष्टाचार बहुत अधिक पाया जाता है जिसके फलस्वरूप आयोजन के प्रति असन्तोष लोगों में बढ़ता जा रहा है।

5.जन सहयोग - प्रजातांत्रिक व्यवस्था में आयोजन की सफलता में जन सहयोग का महत्व बढ़ जाता है। इसके लिए जरूरी है कि आयोजन सम्बन्धी नीतियों **में** जनता का विश्वास हो और सरकार उन्हीं के हित के लिए आयोजन करे और यह निर्भर करता है आयोजन के उद्देश्य, उसके क्रियान्वयन एवं उससे प्राप्त लाभ के वितरण पर।

6.7 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता

जीवन स्तर को सुधारने के लिए राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाना जिससे लोगों की क्रयशक्ति बढ़े और देश से गरीबी को दूर किया जा सके। इसके लिए कृषि, उद्योग, सेवाक्षेत्र, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार और सभी क्षेत्र में तीव्र आर्थिक विकास को प्रेरित करना। न्याय के साथ विकास, गरीबी हटाओ, समावेशी विकास इस बात की पुष्टि करते हैं कि राष्ट्रीय आय वृद्धि के साथ इसका समान वितरण जरूरी है। नियोजन प्रारम्भ होने पर यह सोचा गया कि कृषि एवं औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करने से कुल राष्ट्रीय उत्पाद **में** वृद्धि के साथ बेरोजगारी, अल्परोजगार एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या स्वतः समाप्त हो जायेगी और प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से जीवन स्तर उन्नतशील होगा। जब नियोजनकों ने **इस** बात का अनुभव किया कि कृषि तथा औद्योगिक विकास की वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी बढ़ रही है तो उसे रोजगार प्रधान बनाने के लिए विभिन्न योजनाओं में रोजगार सृजन एवं गरीबी निवारण हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये गये जो अनवरत सभी योजनाओं में किसी न किसी रूप **में** विद्यमान हैं।

आय की असानताओं में कमी और समाजवादी समाज की स्थापना से प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा एवं रोजगार में समान अवसर दिये जा सकते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना **में** भारत के आर्थिक आयोजन की दीर्घकालीन उद्देश्य इस प्रकार है- " अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति जो कि वर्तमान परिस्थिति में आयोजन के स्वीकार्य उद्देश्य समझे जाते हैं, भिन्न-भिन्न विचार **नहीं** हैं बल्कि उन सम्बन्धित उद्देश्यों की श्रृंखला है जिनकी प्राप्ति के लिए देश को प्रयास करना है। इनमें से किसी एक उद्देश्य की पूर्ति दूसरे को छोड़कर नहीं की जा सकती, विकास की योजना में इन सबको सन्तुलित महत्व दूना अनिवार्य है।

आयोजकों को दीर्घकालीन उद्देश्यों के साथ अल्पकालीन उद्देश्यों का भी ध्यान रखना पड़ता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि अल्पकालीन लक्ष्य चाहे कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न लगे दीर्घकालीन उद्देश्यों पर हावी नहीं होने चाहिए। आयोजन का सशक्त दार्शनिक आधार होना चाहिए। शोषण खत्म करने के लिए निजी स्वामित्व समाप्त करना आवश्यक हैं मार्क्स और एंजल्स से प्रेरित हो सोवियत रूस में समग्र राष्ट्रीयकरण को आधार बनाये हुए आयोजन का सर्वप्रथम विकास हुआ जिसमें पहली बार निर्धनता, भूख और बेरोजगारी मिटाने के लिए संगठित प्रयास हुआ। रूसी आयोजकों को भारी सफलता का विश्व के पूंजीवादी देशों पर प्रभाव पड़ा।

स्वतंत्रता प्राप्ति पर भारत को व्यापक निर्धनता, व्यापक बेरोजगारी, निरक्षर और अप्रशिक्षित श्रमिकों जैसी संरचनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अतः भारत ने सामाजिक और आर्थिक उत्तोलक के रूप में आयोजन का सहारा लिया। समाजवादी आयोजन से प्रभावित होने के साथ-साथ न्यायोचित समाज के पूर्ण विकास के लिए पूंजीवादी समाज के लोकतांत्रिक मूल्यों को भी अपरिहार्य माना गया। भारत ने समाज के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा को अपनाया जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण न हो और व्यक्ति को आत्माभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता हो जिससे मानवीय व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत पूर्ण और मुक्त विकास लोकतांत्रिक समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य है। हाल ही में सोवियत रूस ने बाजार आधारित अर्थव्यवस्था चालू की है। भारत ने भी 1990 के बाद अर्थव्यवस्था में उदारीकरण को अपनाया और सरकारी नियंत्रण एवं विनियमन को कम करता जा रहा है, परन्तु साथ ही साथ नेहरू के लोकतांत्रिक समाजवाद के दर्शन का परित्याग नहीं कर रहा है। सिर्फ भौतिक समृद्धि, मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न नहीं बना सकी। भौतिक समृद्धि के साथ सभी नागरिकों को समान अवसर मिलने चाहिए जिससे वैयक्तिक और सामूहिक विकास की नीतियाँ अपनायी जा सकें। अनुकूलतम उत्पादन के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर करने का प्रयास नियोजनकर्ताओं को करना होगा।

भारत ने जो मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरूप को अपनाया है उसमें अन्तर्विरोधी प्रेरणाओं में एक और है निजी हित और दूसरी ओर है सामाजिक लाभ। आयोजन का लक्ष्य है इन प्रतिद्वन्दी हितों में तालमेल बिठाकर राष्ट्रीय हित को उन्नतशील करना-

• योजना परिव्यय का महत्वपूर्ण अनुपात प्रतिरक्षा, भारी तथा मूल उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए खर्च किया गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का औद्योगिक आधार स्थापित किया गया।

•आर्थिक आधार संरचना में विस्तार जिससे कृषि एवं उद्योगों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके और प्रत्यक्ष उत्पादक विनियोग क्षेत्र का विस्तार सम्भव हो।

•राज्य ने वित्तीय संस्थानों पर नियंत्रण रखा और जीवन बीमा निगम और वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। 1991 के बाद वित्तीय संस्थानों को भी निजी क्षेत्र के लिए खोला जा रहा है किन्तु सरकार उनको यथासम्भव निर्देशित कर सकती है।

• एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग की स्थापना की गई जिससे व्यापारिक घराने या अन्य पूँजीपति उपभोक्ताओं का शोषण न करें किन्तु नये आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत इसको समाप्त कर दिया गया जिससे अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़े।

• कीमतों को नियंत्रित रखना जिससे जनमानस को कठिनाई का सामना न करना पड़े आयोजन का उद्देश्य होना चाहिए किन्तु राज्य कीमतों की वृद्धि को रोकने में सफल नहीं हो पाया है। व्यापारी दुर्लभता की कृत्रिम परिस्थितियाँ कायम कर कीमतों में वृद्धि कर देते हैं। इससे निपटना सरकार की जिम्मेदारी है। इस दिशा में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से **कमजोर वर्गों** के लिए सरकार वस्तुएं उचित कीमत पर उपलब्ध कराती है।

• शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम **से** कमजोर वर्ग के बच्चों को सहायता देना जिससे उन्हें रोजगार मिले और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठे I

• निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकाओं में ढालने की जरूरत है। खासतौर से 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद जिसमें पूँजीवादी समाज की परिग्रहणशील प्रवृत्ति और लाभ प्रेरणा आयोजन प्रक्रिया में विकृति पैदा कर सकती है।

• 1991 में चालू किये उदारीगरण, निजीकरण, बाजारीकरण और वैश्वीकरण के मॉडल ने भारतीय नियोजन की दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव किये। सरकार ने अर्थव्यवस्था को कई बन्धनों से मुक्त किया जिससे आर्थिक संवृद्धि को गति मिले। आज इस नीति का विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि आर्थिक संवृद्धि तो ऊँची दर पर हुई किन्तु असमानताएं बढ़ी चाहे वह वैयक्तिक हो चाहे क्षेत्रीय और इनके दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं। भारतीय दर्शन के मूल्यों का ह्रास हो रहा है और एक समाज जो स्वार्थ से प्रेरित है, अपने लाभ को अधिकतम करने पर लगा है उसे चाहे जितना नीचे गिरना पड़े और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ चरम की तरफ जा रही हैं। जबकि नियोजन का आधार एक आदर्शवादी, दार्शनिक सोच होना चाहिए तभी विकास टिक **पायेगा**।

डा0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपने विजन 2020 में गरीबी दूर करने और गाँवों में शहरी सुविधाएं उपलब्ध कराने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि "पूरा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग हमारे गाँवों को उत्पादक आर्थिक क्षेत्रों में तब्दील करने के लिए किया जायेगा। " पूरा मॉडल के अन्तर्गत चार प्रकार के सम्पर्क हैं -

1. भौतिक सम्पर्क - 15-25 गाँवों को सड़कों से जोड़कर इसके इर्द-गिर्द एक रिंग रोड का निर्माण साथ ही साथ बिजली, परिवहन आदि की सुविधाएं।

2. डिजिटल सम्पर्क - इन गाँवों के समूहों में दूर संचार और सूचना टेकनोलॉजी सम्बन्धी सेवाएं उपलब्ध कराना जैसे- पी0सी0ओ0, साइबर कैफे आदि।

3.ज्ञान आधारित सम्पर्क - रिंग रोड पर हर पाँच-सात किलोमीटर की दूरी पर स्कूल, उच्च शिक्षा केन्द्र, अस्पताल आदि।

4. आर्थिक सम्पर्क - गाँवों के समूहों में बढ़िया विपणन सुविधाओं की उपलब्धता इस मॉडल के लागू होने से ग्राम क्षेत्रों **से** शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या के प्रवसन को नियंत्रित किया जा सकता है। सामाजिक एवं आर्थिक आधार संरचना को गाँवों में स्थापित करना जिससे वहाँ निवेश बढ़ने के साथ विकास हो। यह माडल रोजगार और सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। सरकार ने पूरा मॉडल का प्रयोग सीमित रखा है, 2004 से यह चल रहा है किन्तु इसे और विस्तृत करने की आवश्यकता है।

6.8 नियोजन के प्रकार तथा प्रजातांत्रिक नियोजन

(क) साम्यवादी तथा प्रजातांत्रिक नियोजन- साम्यवादी नियोजन में सभी आर्थिक निर्णय केन्द्रीय संगठन द्वारा लिये जाते हैं और **इसमें** निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था समाप्त कर दी जाती है। प्रजातांत्रिक नियोजन व्यवस्था दो प्रकार की हो सकती है:

• **उदार या नरम प्रजातांत्रिक नियोजन** - इसका इस्तेमाल तीसा (1930) की मन्दी से उबरने के लिए यू0एस0ए0 एवं ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था को द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात पुनर्गठित करने के लिए किया गया। राज्य बाजार यंत्र की पूरक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है और इसे बाजार मिश्रित प्रणाली भी कहा जाता है।

• दूसरी व्यवस्था अधिक केन्द्रीकृत होती है। इसमें राज्य हस्तक्षेप करने वाली व्यवस्था होती है।

(ख) प्रेरणा द्वारा आयोजन या निर्देशात्मक आयोजन तथा आदेशात्मक नियोजन - निर्देशात्मक आयोजन में केन्द्रीय नियोजन संस्था लक्ष्यों का निर्धारित करती है तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के विनियोग तथा उत्पादन सम्बन्धी योजनाओं को समन्वित करती है। निर्णय विकेन्द्रित रूप में लिये जाते हैं पर सभी क्षेत्रों को निर्धारित लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया जाता है। बाजार व्यवस्था बनी रहती है परन्तु निर्णय से सम्बन्धित अनिश्चितता कम हो जाती है। यह सहभागिता पर आधारित **होती** है। आठवीं योजना में निर्देशात्मक नियोजन की धारणा स्वीकारी गई।

आदेशात्मक आयोजन में अनिवार्यता के लक्षण पाये जाते हैं। प्रशासनिक **मशीनरी** को यह पावर होती है कि वह विनियोग एवं उत्पादन सम्बन्धी सभी निर्णयों को विभिन्न आर्थिक इकाइयों को आदेशित करें। भारत में पहली से चौथी योजना तक इस प्रकार के आयोजन के महत्वपूर्ण लक्षण मिलते हैं।

(ग) केन्द्रीयकृत एवं विकेन्द्रीयकृत नियोजन - केन्द्रीय नियोजन में एक केन्द्रीय संगठन की योजना को बनाने, पूरा करने और निरीक्षण करने की पूरी जिम्मेदारी होती है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन में सरकार, स्थानीय निकाय, व्यक्तिगत उद्यमी आदि मिलकर योजना से सम्बन्धित निर्णय लेते हैं। ग्राम पंचायतों की भागीदारी बढ़ जाती है। जनता सरकार (1977 से 1979) ने भारत में इस मॉडल का प्रयोग किया

(घ) दीर्घकालीन नियोजन एवं चक्रीय योजना - अवधि के आधार **पर** योजना अल्पकालीन या दीर्घकालीन हो सकती है। अल्पकालीन योजनाएं पंचवर्षीय, सात वर्षीय या एक वर्षीय हो सकती हैं। अल्पकालीन योजनाएं दीर्घकालीन योजनाओं के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं। दीर्घकालीन योजनायें 20 से 25 वर्ष के दीर्घकालीन लक्ष्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं।

रोलिंग योजना में प्रत्येक वर्ष की योजना पूरी योजना की आवर्ती योजना होती है। यह योजना बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक वर्ष की योजना को समायोजित किया जाता है। भारत में इसको 1978 में लागू किया गया। इसके अन्तर्गत तीन योजनायें तैयार की जाती हैं - एक योजना चालू वर्ष के लिए अर्थात् अल्पकालीन योजना, दूसरी मध्यकालीन स्वरूप की तीन से पाँच वर्ष की योजना तथा तीसरी दीर्घकालीन योजना जो 10 वर्ष से अधिक की होती है और यह आर्थिक नियोजन की रणनीति बताती हैं। अल्पकालीन एवं मध्य कालीन योजनाएं दीर्घकालीन योजनाओं पर आधारित होती हैं। चक्रीय योजना की धारणा का प्रतिपादन गुनार मिर्डाल ने किया तथा भारत में इसका प्रयोग डी०टी० लकड़वाला ने किया जब वे योजना आयोग के उपाध्यक्ष थे।

(ड.) संरचनात्मक एवं क्रियात्मक नियोजन - संरचनात्मक आयोजन वह आयोजन है जो प्रचलित ढाँचे में आमूल परिवर्तन करके **नये** ढाँचे में लागू किया जाये। इसका उद्देश्य देश के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे को पूर्णतया परिवर्तित कर देना होता है। अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए इसको अपनाया जाता है क्योंकि इन देशों में चालू ढाँचे में आमूल परिवर्तन लाना जरूरी है। इन देशों **में** आर्थिक विकास लाने के लिए परम्परांगत उत्पादन के तरीकों की जगह नये तकनालाजी परिवर्तनों का इस्तेमाल किया जाता है। क्रियात्मक आयोजन का उद्देश्य **समाज** के ढाँचे में परिवर्तन लाये बगैर सुधार करना है। इसमें किसी नये सामाजिक ढाँचे का निर्माण नहीं होता।

भारत जैसे देश जिनका उद्देश्य तीव्र आर्थिक विकास करना है वहाँ संरचनात्मक नियोजन अपनाया जाता है।

(च) भौतिक तथा वित्तीय नियोजन - भौतिक नियोजन का सम्बन्ध मानव शक्ति, मशीनों और कच्चे माल के अनुकूलतम वितरण एवं राशनिंग से है जो देश के उत्पादन में वृद्धि करके विकास प्रक्रिया को गति प्रदान कर सके। **इसके** अन्तर्गत उपलब्ध सम्पूर्ण वास्तविक साधनों तथा इन्हें प्राप्त करने के तरीके के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है जिससे योजना के सम्पादन के दौरान किसी भी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न हो।

जब भौतिक लक्ष्यों को मुद्रा के रूप में व्यक्त कर दिया जाता है तो उसे वित्तीय नियोजन कहते हैं। इसमें योजना **में** होने वाले कुलव्यय को मुद्रा के रूप **में** व्यक्त किया जाता है तथा राष्ट्रीय आय, उपभोग, आयात आदि की वृद्धि के द्वारा होने वाले कुल व्यय को पूरा करने के सम्बन्ध में **अनुमान** लगाये जाते हैं। वित्त भौतिक आयोजन का गतिशीलक है।

(छ) क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय आयोजन - क्षेत्रीय नियोजन किसी अर्थ व्यवस्था के एक विशिष्ट क्षेत्र या भाग तक ही आयोजन सीमित रहता है। इसे आंशिक नियोजन भी कहते हैं। जब नियोजन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित हो और इसका संचालन देश की किसी केन्द्रीय संस्था द्वारा हो तो उसे राष्ट्रीय नियोजन कहते हैं। इसे विस्तृत नियोजन **भी** कहते हैं। क्षेत्रीय नियोजन, राष्ट्रीय नियोजन का ही अंग होता है और विकेन्द्रीयकरण की नीति के कारण क्षेत्र विशेष का प्रभार क्षेत्रीय अधिकारियों को दे दिया जाता है।

6.9 भारत में योजना निर्माण प्रक्रिया

भारत में योजना निर्माण के अन्तर्गत स्वीकृति **से** लेकर क्रियान्वयन के लिए विभिन्न चरणों पर योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें शामिल होती हैं। योजना निर्माण आयोजन की पहली अवस्था है। इसके अन्तर्गत सरकार की नीतियों को ध्यान **में** रख कर अथवा सरकार की राय के अनुसार योजना आयोग आयोजन का उद्देश्य, लक्ष्य, विनियोग की मात्रा, साधनों की उपलब्धता आदि से सम्बन्धित रूपरेखा तैयार करता है। योजना आयोग अनेक खण्डों तथा सेक्शन्स के द्वारा कार्य करता है। इन खण्डों को रूप से पाँच खण्डों में बांटा जा सकता है:-

1.सामान्य खण्ड - यह पूरी अर्थव्यवस्था के कुछ विशिष्ट पहलुओं से सम्बन्धित होता है। जैसे- आर्थिक खण्ड, पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन, श्रम तथा रोजगार खण्ड, सांख्यिकीय तथा सर्वेक्षण खण्ड, कार्यक्रम प्रशासन खण्ड, संसाधन एवं वैज्ञानिक शोध खण्ड, सामाजिक, आर्थिक शोध खण्ड तथा योजना समन्वय खण्ड आते हैं।

2. विषय खण्ड - जो विकास के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित होता है, इसमें कृषि खण्ड, सिंचाई तथा शक्ति खण्ड, भूमि सुधार खण्ड, उद्योग तथा खनिज, ग्रामीण तथा लघु उद्योग, यातायात तथा संवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण आदि खण्ड आते हैं।

3**. समन्वय विभाग -** इसमें दो विभाग हैं-

(a) नियोजन समन्वय विभाग जो योजना आयोग के विभिन्न विभागों के क्रिया-कलापों के बीच समन्वय करता है।

(b)कार्यक्रम प्रशासन विभाग जो राज्यों की योजनाओं के मध्य समन्वय, निगरानी तथा सुझाव दे है।

4. विशेष विकास कार्यक्रम विभाग - यह राष्ट्रीय विकास के विभिन्न कार्यक्रमों से सम्बन्धित है।

5. मूल्यांकन विभाग - विभिन्न प्रस्तावित तथा चल रही योजनाओं के मूल्यांकन से सम्बन्धित है।

कार्यकारी समूहों द्वारा तैयार किए गए क्षेत्रीय कार्यक्रमों के आधार पर योजना आयोग पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त मेमोरैण्डम तैयार करता है जिसे मंत्री परिषद तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने रखा जाता है। इनसे अनुमोदित होने के पश्चात् उनके सुझावों तथा निर्देशों को ध्यान में रखकर पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया जाता है तथा योजना के शुरू होने के अनेक महीने पहले ही प्रकाशित किया जाता है। योजना के प्रारूप को विचार विमर्श हेतु पार्लियामेण्ट,

राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों आदि को उपलब्ध कराया जाता है। इन सबके सुझावों का सन्दर्भ लेते हुए योजना का अन्तिम रूप तैयार किया जाता है तथा मंत्री **परिषद** तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने अन्तिम अनुमोदन के लिए पेश किया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद के अनुमोदन के बाद इसे अन्तिम योजना माना जाता है। अन्तिम रूप में प्रधानमंत्री इसे संसद में सूचनार्थ तथा अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करता है। योजना आयोग एक परामर्शदात्री मण्डल है। इसलिए योजना की रूपरेखा को जब तक सरकार से स्वीकृति नहीं मिल **जाती,** तब तक योजना शुरू नहीं हो पाती। संसद द्वारा अनुमोदन के बाद योजना को वैधानिक रूप मिल जाता है।

क्रियान्वयन - लेविस के अनुसार " योजना का क्रियान्वयन उसे बनाने की अपेक्षा अधिक कठिन है। योजना की रूपरेखा तैयार करना तो कल्पनाओं की कसरत है जबकि उसका क्रियान्वयन वास्तविकता से संघर्ष करना है। जब वास्तविकता अनुमान से भिन्न हो तो परिवर्तित तथ्यों के साथ चलने के लिए योजना में अवश्य निरन्तर संशोधन होना चाहिए। योजना का क्रियान्वयन सरकार के विभिन्न विभागों तथा अधिकारियों द्वारा होता है।

निरीक्षण - समय-समय पर योजना की प्रगति का मूल्यांकन आवश्यक है जिससे यह पता चल सके कि योजना का क्रियान्वयन उसके निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार हो रहा है या नहीं।

योजना आयोग - सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र के पुनर्निमार्ण हेतु 1946 में गठित नियोगी समिति की संस्तुति को संज्ञान लेते हुए 1950 में संविधान लागू होने के बाद मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव द्वारा योजना आयोग का गठन हुआ। यह एक गैर संवैधानिक, सलाहकारी, परामर्शदात्री निकाय है। प्रधानमंत्री पदेन योजना आयोग का अध्यक्ष होता है। योजना आयोग के प्रथम अध्यक्ष पण्डित जवाहर लाल नेहरू थे। योजना आयोग में एक उपाध्यक्ष, तीन पूर्ण कालिक तथा तीन अंशकालिक सदस्य होते हैं। वित्त मंत्री, विदेश मंत्री तथा विनिवेश मंत्री इसके पदेन **सदस्य** होते हैं। उपाध्यक्ष को कैबिनेट स्तर के मंत्री तथा सदस्यों को राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त होता है। योजना आयोग के प्रथम उपाध्यक्ष गुलजारी लाल नन्दा थे। 15 मार्च 1950 में मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव में उपयोग को निम्नलिखित दायित्व सौंपे गये-

1. देश के भौतिक संसाधनों तथा जनशक्ति का अनुमान लगाना और आवश्यकतानुसार उसमें वृद्धि की संभावना तलाशना।
2. देश के संसाधनों के संतुलित उपयोग हेतु प्रभावी योजना बनाना।
3. प्राथमिकताओं का निर्धारण करना और इन प्राथमिकताओं के आधार पर योजना के उद्देश्य निर्धारित करके संसाधनों का आवंटन करना।
4. योजना के सफल संचालन के लिए संभावित अवरोधों की ओर संकेत करना और उन्हें दूर करने के उपाय सरकार को बताना।
5. योजना के प्रत्येक चरण के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक तंत्र का स्वरूप निश्चित करना।
6. योजनावधि में विभिन्न चरणों पर योजना प्रगति का मूल्यांकन करना।
7. आयोग के क्रिया-कलापों को सुविधाजनक बनाने तथा केन्द्र एवं राज्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए परामर्श देना।

राष्ट्रीय विकास परिषद

राज्यों तथा केन्द्र के बीच शक्तियों के विभाजन को ध्यान में रखते हुए राज्यों की हिस्सेदारी योजना तैयार करने में सुनिश्चित करने हेतु 6 अगस्त, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया गया। यह एक संविधानेत्तर निकाय है जिसका उद्देश्य राज्यों और योजना आयोग के बीच सहयोग का वातावरण बनाकर आर्थिक नियोजन को सफल बनाना है। प्रधानमंत्री **इस** परिषद के पदेन अध्यक्ष होते हैं। वर्तमान में सभी राज्यों के मुख्यमंत्री केन्द्रीय मंत्रि परिषद के सभी सदस्य, केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सभी सदस्य राष्ट्रीय विकास परिषद के पदेन सदस्य होते हैं। इसके प्रमुख उद्देश्य हैं - सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में एक समान आर्थिक नीतियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा देश के सभी क्षेत्रों के तीव्र एवं सन्तुलित विकास हेतु प्रयास करना।

राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

• राष्ट्रीय योजना की प्रगति पर समय-समय **पर** विचार करना।

• योजना आयोग को प्राथमिकताएं निर्धारण में परामर्श देना।

• योजना के लक्ष्यों के निर्धारण में योजना आयोग को सुझाव देना।

• योजना को प्रभावित करने वाले आर्थिक एवं सामाजिक घटकों की समीक्षा करना।

• योजना आयोग द्वारा तैयार की गई योजना का अध्ययन करके इसे अन्तिम रूप देना तथा स्वीकृति प्रदान करना अर्थात पंचवर्षीय योजनाओं का अनुमोदन करना।

• राष्ट्रीय **योजना** के संचालन का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

6.10 सारांश

हमने इस इकाई में देखा कि भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात नियोजन का रास्ता चुना और मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली अपनायी भारत को अपनी अर्थव्यवस्था **में** संरचनात्मक परिवर्तन लाने पड़े जिससे देश में विकास की दिशा तय हो सके। भारत में आयोजन के उद्देश्य जो सरकार ने तय किये वे थे- निर्धनता को समाप्त करना और रोजगार के अवसर सृजित करना, आय और सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना, सबको समान अवसर प्रदान करना, एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकना, निजी लाभ की अपेक्षा सामाजिक लाभ को बढ़ाना और लोगों के जीवन स्तर **में** सुधार लाना। भारतीय आयोजन प्रणाली ने कई प्रकारों को समाहित कर रखा है जैसे- लोकतांत्रिक समाजवादी, निर्देशात्मक, लोचशील संरचनात्मक, भौतिक तथा वित्तीय, केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रीकृत, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय तथा दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन। भारत **में** योजना निर्माण प्रक्रिया में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, अर्थशास्त्री, विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, संसद आदि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में शामिल रहते हैं। किन्तु संसद द्वारा अनुमोदन के बाद ही योजना को वैधानिक माना जाता है।

6.11 शब्दावली

- **साहसी -** निवेशक जो उद्यम के लिए रिस्क लेने को तैयार रहते हैं।
- **चक्रात्मक -** बाजार आधारित अर्थव्यवस्था **में** होने वाले उतार चढ़ाव

- **मन्दी -** जब अर्थव्यवस्था में निवेशकों को प्रेरणा देने के लिए उचित माहौल नहीं रहता। लाभ और लाभ की आशा दोनों कम होती है। मूल्य, उत्पादन, निवेश सब निम्न स्तर का होता है।
- **अल्प विकसित** - विकसित देशों की अपेक्षा जिन देशों में आय, उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार आदि का स्तर नीचा हो।
- उ**पनिवेशवाद** - राष्ट्रीय सीमाओं के परे प्रभुत्व का विस्तार
- **क्षतिपूर्ति** - किसी नुकसान के बदले में मिलने वाली राशि।
- **उन्मूलन** - जड़ से खत्म करना।
- **आरोही कर** - आय बढ़ने के **साथ** यदि कर की दर बढ़े।
- **सन्तुलित विकास** - सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास
- **समावेशी** - विकास के पथ पर जो पिछड़ गये हैं सबको लेकर विकास करना।
- **अनवरत** - लगातार
- **उदारीकरण** - नियंत्रण कम करना।
- **वैश्वीकरण** - विश्व से एकीकृत होना
- **पर्सपेक्टिव प्लानिंग**- दीर्घकालीन योजना

6.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

1. Planned Economy of India पुस्तक ……. ने लिखी थी।
2. राष्ट्रीय आयोजन समिति 1938 के अध्यक्ष ……थे।
3. श्रीमन्नारायण ने .....योजना बनाई। .
4. भारत में आर्थिक विकास के लिए .....प्रणाली अपनायी **गयी**।
5. एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए …… की स्थापना हुई।
6. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने..... मॉडल सुझाया।
7. चक्रीय योजना का प्रतिपादन .....ने किया।
8. योजना आयोग .....संस्था है।
9. योजना निर्माण में राज्यों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने हेतु .....की स्थापना की गई।
10. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत जैसे अल्पविकसित देश .....के चंगुल से मुक्त हुए।

उत्तर:-

1. एम. विश्वेश्वरैया 2. जवाहर लाल नेहरू 3. गाँधीवादी 4. मिश्रित 5. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग 6. पूरा 7. गुनार मिर्डाल 8. गैर-संवैधानिक, परामर्शदात्री 9. राष्ट्रीय विकास परिषद 10. उपनिवेशवाद

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

• दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

• लाल, एस. एन. एवं एस. के. लाल (2009), आर्थिक विकास, आयोजन तथा पर्यावरण शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद है।

• लाल, एस. एन. एवं एस. के. लाल (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण. शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

• भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा है।

6.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Mishra, S.K. and V. K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing
3. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy, Academic Foundation House.

6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अल्पविकसित देशों में नियोजन के औचित्य एवं उसकी सफलता की शर्तों पर प्रकाश डालिए?
2. भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता दर्शाइये?
3. नियोजन व्यवस्था कितने प्रकार की होती है?
4. भारत में नियोजन निर्माण प्रक्रिया बताइये?

इकाई - 7 कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

7.1 प्रस्तावना

7.2 कृषि जन्य अर्थव्यवस्था और इसकी अद्वितीय विषेषताएं

7.3 गिरता हुआ प्रतिशत अंश एवं ह्रासमान प्रतिफल

7.4 कृषि एवं विकासषील अर्थव्यवस्था

7.5 जनसंख्या दबाब और बेरोजगारी

7.6 खेती में द्वैतवाद और छोटे खातों की दमनकारी भूमिका

7.7 गरीबी का गंभीर रूप और बलात् अवकाश

7.8 निर्यात आय

7.9 राजनीतिक और सामाजिक आयाम

7.10 भारत में कृषि की स्थिति

7.11 अन्तर क्षेत्रीय प्रभाव

7.12 कृषि निवेश की देखभाल

7.13 सारांश

7.14 शब्दावली

7.15 बोध प्रश्न

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.17 स्वपरख प्रश्न

7.18 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- कृषि अर्थव्यवस्था की अनूठी विशेषताओं की व्याख्या कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर कृषि के प्रभाव की व्याख्या कर सकें।
- विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रास्थिति की व्याख्या कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

शब्द 'कृषि' अक्सर विज्ञान एवं फसलों को बढ़ाने के लिये मिट्टी की खेती के अभ्यास के लिये इस्तेमाल किया जाता है। सामान्यतः इसमें मानव गतिविधियों के तीन समूह शामिल रहते हैं, पहला अनाज, चावल, गन्ना, चाय, कॉफी और विभिन्न खाद्य सामग्री, चारा फसलें से संबंधित है, दूसरा पषुधन की देखभाल से संबंधित है जिसमें दूध मांस के लिये पशु अंडों के लिये पोल्ट्री, मानव उपभोग के लिये मछली पकड़ना, शामिल है। इसमें शहद के लिये मधुमक्खी, पालन और अन्य व्यवसाय जो खेती किसानी से जुड़े हुये हैं, भी शामिल हैं और तीसरे घरेलू खपत और विपणन के लिये बढ़ते हुये पेड़ और जड़ी-बूटियाँ, फल और सब्जियाँ शामिल है। इसमें तम्बाकू, सोयाबीन और विभिन्न प्रकार की जड़ सम्मिलित है। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय कृषि पारंपरिक थी, अब विकास के युग तक पहुँच गयी है और दिन प्रतिदिन परिपवक्ता प्राप्त कर रहा है। जब ब्रिटिश लोगों ने भारत में शासन हेतु प्रवेश किया, तब यद्यपि कृषि पारंपरिक प्रकृति की थी, उसका ग्रामीण उद्योगों के साथ उचित संतुलन था जिसे ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के नाम से जाना जाता है। हालांकि ब्रिटिश शासकों की नीति ने कृषि एवं ग्राम और कुटीर उद्योगों के मध्य संतुलन को नष्ट कर दिया। अपने निहित राजनीतिक हित के लिये उन्होंने जमीन के रूप में मध्यस्थों का एक वर्ग बनाकर एक प्रणाली विकसित की, जो भारत के ग्रामीण इलाकों में सत्ता को नियंत्रित करती थी। जमीदारों का यह वर्ग सामंतषाही के रूप में व्यवहार करता था और इन्हें ब्रिटिश शासकों का संरक्षण प्राप्त था, जिन्होंने किसानों को अपने विषयों के अनुरूप बनाने और उनकी लागत और कड़ी मेहनत पर धन की गणना करने में उनके गलत व्यवहारों को नज़रअंदाज किया। इन सामंती आदत के मालिकों द्वारा खेती करने वाले किसानों के बड़े हिस्से को ले लिया गया और असली कृषकों और किसानों ने अपने निर्वाह के हिस्से के साथ छोड़ दिया। गलत व्यवहार के कारण ब्रिटिषकाल में कृषि एक अनुदान व्यवसाय के रूप में हो गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब योजनाओं ने साकार रूप लेना प्रारंभ किया, कृषि सुधार पर ध्यान केन्द्रित होने लगा और जब 1966 में हरित क्रांति का शुभारंभ हुआ किसानों ने कृषि को व्यावसायिक आधार पर लेना स्वीकार कर दिया। 1950-51 की योजना में अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास के साथ कृषि पर बोझ और निर्भरता धीरे-धीरे कम हुयी।

7.2 कृषि अर्थव्यवस्था और इसकी अनूठी विशेषताएं

कृषि अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का गठन करती है। यदि आर्थिक गतिविधियों का प्रारंभिक प्रयास शुरू होता है और इस तरह की लहर पूरी अर्थव्यवस्था पर प्रति क्रियाओं की एक लंबी श्रृंखला में गतिविधियों की नई लहर पैदा करने तक व्याप्त है, प्रारंभ में, यह प्राथमिक क्षेत्र या तो खाद्य पदार्थों से या प्रकृति से लेकर बनाये गये पदार्थों से मनुष्य की आवष्यकताओं की पूर्ति करता है। मनुष्य का जीवन साथ ही साथ अन्य लोगों का जीवन भी पेड़ पौधों के शोषण पर आधारित होता है।

कृषि अन्य वस्तुओं के निर्माण के लिये खाद्य पदार्थों को उगाने हेतु उत्पादकता की अक्षमषक्ति का इस्तेमाल कच्चा माल के रूप में करती है।

कृषि या उससे संबंधित अन्य व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय उद्भव काल से ही अर्थव्यवस्था की आय का मुख्य भाग कृषि अर्थव्यवस्था है। इसमें काम करने वाले बहुत से लोग अपनी आजीविका प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों से प्राप्त करते है। विनिर्माण क्षेत्र कृषि आपूर्ति पर आश्रित होता है जो समाप्त होने वाले है और औद्योगिक इकाई से बदल कर औद्योगिक उत्पाद में तब्दील होने जा रहे है। भारत में कृषि ऐसा उद्योग है जिसमें 1950-51 में स्वतंत्रता के बाद सबसे अधिक रोजगार प्रदान किये गये। इस क्षेत्र में 69.5 प्रतिषत जनसंख्या कार्यरत है। 2007-10 में अन्य क्षेत्रों के विकास के कारण यह प्रतिषत गिरकर 46 प्रतिषत हो गया जिसमें 65 प्रतिषत जनसंख्या पुरूश कामगार और 45 प्रतिषत स्त्री कामगार इस क्षेत्र में कार्यरत है।

कृषि अधिक गतिविधियों की एक शाखा है। अतः यहां अर्थषास्त्र के मौलिक सिद्धान्त उसी तरह लागू होते हैं जैसे विनिर्माण क्षेत्र में लागू होते है। जाहिर है प्राकृतिक परिस्थितियों में कुछ महत्वपूर्ण उल्लेखनीय अंतर है जिसके अन्तर्गत कृषि पर आधारित उत्पादन किया जाता है। बड़ी संख्या में यह परिस्थितियां उपलब्ध रहती है, और विनिर्माण की स्थिति में यह परिस्थितियां नियंत्रित रहती हैं अतः कृषि उत्पादन में कुछ अनूठी और अजीब विषेषताओं का वर्णन किया जा सकता है, जो औद्योगिक उत्पादन में साधारणतया नहीं पायी जाती है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि दो कारकों तकनीकी उन्नति एवं जनसंख्या वृद्धि पर निर्भर करती है। तकनीकी उन्नति का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जबकि जनसंख्या वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कृषि में मजदूरों की कमी नहीं है। श्रमिकों के माध्यमिक क्षेत्र में प्रवास के द्वारा कृषि बचत बढ़ती है, जो उच्च लाभ संभावनाओं के लिये द्वितीयक क्षेत्र में आती है। यदि नयी तकनीक के कारण कृषि निर्यात बढ़ता है, तो निर्यात से होने वाली आय विदेषी विनिमय प्रदान करती है और आयात की क्षमताओं को उत्पन्न करती है। कृषि अर्थव्यवस्था की कुछ अनूठी विषेषताएं इस प्रकार हैः-

(अ) कृषि आमतौर पर 'ग्रामीण शैली' के रूप में जीवन शैली के तरीकों का एक अनूठा संयोजन बनाती है। ग्रामीण शैली गाँवों और उसकी परिधि में एक विषिष्ट सांस्कृतिक प्रथा है। इसके ग्रामीण पेषे और व्यवसाय के विषिष्ट पैटर्न हैं। ग्रामीण लोगों का मुख्य पेषा कृषि है। गाँवों की जनषक्ति उपयोगिता की पद्धति पूर्णरूपेण कृषि

के पक्ष में है और कृषि से संबंधित गतिविधियाँ भी इसके पक्ष में है। श्रम बल का अधिकांश हिस्सा फसल उगाने, पषुपालन, बागवानी और संबंधित व्यवसायों में लगा रहता है। अतः कृषि एक अलग तरह से जीने का तरीका है, यह रीति रिवाज, चलन, विश्वास और ग्रामीण व्यवहार में अलग है।

(ब) कृषक अपने खेत से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है भूमि और उससे जुड़े वातावरण से भावनात्मक रूप से जुड़ा होता है। किसान का खेती के माहौल और सामुदायिक जीवन से भावनात्मक लगाव शहरी श्रमिकों के कारखानों तथा अलग तरह से काम करने से पूर्णतया अलग है। इन विषेषताओं का प्रभाव नीति निर्माण में सामाजिक और राजनीतिक आयामों पर पड़ता है।

(स) चूँकि कृषि भोजन, अंडे, मास, चीनी, फलों, सब्जियों आदि की आपूर्ति का एकमात्र स्त्रोत है, हम कृषि के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते है। भोजन के बिना मनुष्य का जवीन विलुप्त होने के दुखदचरण तक जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में कृषि से ग्रामीण जनसंख्या, शहरी जनसंख्या, ग्रामीण प्रवासी जो विनिर्माण और निर्माण के कार्यों में लगे है, उनका पेट भरता है शहरी क्षेत्र की तरह ग्रामीण व्यवसायों की भी वृद्धि होनी आवष्यक है, ताकि उद्योग व्यवसाय, निर्माण और अन्य सेवाओं को कच्चे माल की समस्या का और बढ़ती जनसंख्या में भोजन की कमी का सामना न करना पड़े।

(द) 18 वीं शताब्दी के फ्रांस के अर्थषास्त्रीयों के समूह ने जिन्हें फिजियोक्रेट कहा जाता है ने अर्थषास्त्र में विचारकों की एक शाखा का प्रतिनिधित्व किया, जिन्होंने यह निर्धारित किया कि कृषि केवल इस अर्थ में अद्वितीय है कि केवल कृषि को ही कीमत पर शुद्ध अधिषेश का उत्पादन करने की क्षमता है। कृषि में उत्पादन की मात्रात्मक वृद्धि होती है, किन्तु इसकी सीमाएं, अनिष्चितता और स्थिरता विनिर्माण और व्यापार की अपेक्षा कहीं अधिक स्थिर है। प्रकृति और कृषि का सामंजस्य निकटता लिये हुये अंतरंग है, अतः प्राकृतिक चीजों पर यह अधिक आश्रित है। मौसम, जलवायु, वर्षा, तापमान, नमी, मृदा, संपदा और कृषि में अन्य भोगोलिक प्रतिबन्धों में उतार-चढ़ाव जाहिर है। यह सीमांए कृषि की आपूर्ति में बाधा उत्पन्न करती है और कृषि उत्पाद की कीमतों पर असर डालती है।

(क) अर्थषास्त्रियों का दावा है कि उद्योग के मुकावले कृषि पर 'दीघविधि' प्रतिफल का नियम' काफी पहले लागू हो गया था। मौसमी संबंध के कारण कृषि की कुल बिक्री का विकास धीमा और अनिष्चित है।

(ख) कृषि आर्थिक विधि की अकेली विषिष्ट प्रकार नहीं है। यह विभिन्न व्यवसायों की एक व्यापक श्रेणी से संबंध रखती है। इसकी गतिविधियाँ, विविध, जटिल और एक दूसरे से भिन्न है। प्रत्येक व्यवसाय का अपना एक निष्चित सांस्कृतिक, व्यवहार होता है। सूखी भूमि और रेगिस्तान मे खेती करना सिंचित और पानी वाली जगह में खेती करने से अलग है। इससे जुड़े अन्य व्यवसायों का महत्व भी जगह-जगह अलग-अलग होता है।

प्रत्येक क्षेत्र में भूमि उपयोग का तरीका, फसल उगाने का तरीका पूरी तरह अलग होता है। खेती की कीमत और तकनीक में बदलाव का प्रभाव कृषि उत्पादों की कीमतों पर पड़ता है ।

(घ) कृषि क्षेत्र अपने श्रम अधिषेश और अप्रयुक्त जनषक्ति के लिये जाना जाता है क्योंकि भूमि की आपूर्ति थोड़े समय में अपरिवर्तनीय है और वास्तव में नियोजित श्रम के बावजूद जनसंख्या बढ़ती है। जबकि ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश श्रमिक कृषि में कार्यरत दिखायी देते हैं। किन्तु उत्पादन में उनकी राशि शून्य के करीब है। खेती में कम निवेश का परिणाम श्रम की कम मांग का होना है। औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रति कर्मचारी निवेश और उत्पादकता अधिक होती है ताकि शहरी मजदूरी ग्रामीण मजदूरी से अधिक हो। मजदूरों की सीमांत-उत्पादकता बढ़ जाती है, यदि ग्रामीण मजदूर पूंजीपति क्षेत्र में चले जाते हैं, अतः शहरीकरण के लिये प्रवास अपना स्थान लेता है। ऐसा इसलिये है क्योंकि पूंजीवादी क्षेत्र अपने लाभों को पुनः निवेश करने में सक्षम होते हैं और प्रति श्रमिक की उत्पादकता के साथ-साथ रोजगार को भी बढ़ावा मिलता है।

7.3 गिरता हुआ प्रतिषत अंश एवं ह्रासमान प्रतिफल

अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के कारण अक्सर राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि के संबंधित हिस्से में गिरावट आती है। प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्र में श्रमिकों के निरंतर बदलाव के कारण कृषि में कार्यरत श्रमबल के हिस्से में गिरावट आती है और राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान के प्रतिषत में भी कमी आती है। निर्वाह अर्थव्यवस्था में पारंपरिक कृषि व्यवहार में रहती है जहां उत्पादन के बाजार के लिये कोई अभिविन्यास नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र श्रम की प्रति इकाई के लिये पुर्ननवीनीकरण पूंजी की उच्च खुराक का उपयोग करता है। जब कृषि क्षेत्र में जनसंख्या और श्रमबल दोनों बढ़ती है, तब स्व-रोजगार का प्रयास बढ़ता है। अधिकांश श्रमिक पारंपरिक खेती में स्वयमेव कार्यरत हो जाते है। यह तब तक खेती करना चालू रखते हैं जब तक कि श्रम की उत्पादकता शून्य तक या शून्य के आसपास तक नहीं पहुंच जाती। अर्थषास्त्री अक्सर इसे प्रच्छन्न रोजगार के रूप में श्रम की सीमांत उत्पादकता की गिरती हुई स्थिति का नाम देते है।

कृषि उत्पाद द्वारा निर्मित औद्योगिक वस्तुओं के व्यापार के अनुकूल नियमों के खिलाफ कृषि उत्पादों और प्राथमिक उत्पादों के व्यापार की प्रतिकूल शर्तों की वजह से ही कृषि की प्रगति के द्वारा उपनिवेश अर्थव्यवस्था में विकास की सीमित संभावना है। कृषि उत्पादन के आरंभिक दौर में विवरणी की घटती क्रिया ही कृषि में होने वाली हानि की जड़ है।

पारंपरिक अर्थव्यवस्था में गैर -कृषि क्षेत्र का विकास पूर्णरूपेण घरेलू कृषि अवस्था पर निर्भर करता है। भोजन और कच्चा माल की आपूर्ति कृषि द्वारा की जाती है। प्राथमिक क्षेत्र के सहयोग के बिना दीर्घकालीन औद्योगिक क्षेत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती और यह सहयोग तभी संभव होगा जब कृषि के द्वारा दिया जाने वाला उत्पादन योगदान ठोस है या अधिक है। ग्रामीणों की पर्याप्त क्रय क्षमता के बिना औद्योगिक

खरीददारों को खोजने में विफल रहते हैं और विनिर्माण क्षेत्र में नये निवेश की लहर कमजोर पड़ जाती है । पारंपरिक अप्रयुक्त बचत की आपूर्ति के द्वारा औद्योगिक क्षेत्र के विकास में कृषि को सहायता करनी होती है। कृषि द्वितीयक क्षेत्रों के विकास में योगदान देती है और परियोजनाओं को निष्पादित करने के लिये कुछ उद्यमी प्रतिभा प्रदान करके यह योगदान दिया जाता है।

7.4 कृषि एवं विकासशील अर्थव्यवस्था

अब तक हमने कृषि की भूमिका को समझ लिया जो उसे अर्थव्यवस्था के विकास में अदा करनी होती है। आज भारतीय अर्थव्यवस्था कुछ क्षेत्रों में विकास के आधुनिक सतर पर है जबकि कुछ अन्य क्षेत्रों में यह विकास से बहुत दूर है। अब हम भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति और भारतीय संदर्भ में कृषि क्षेत्र के महत्व को जानने का प्रयास करेंगे। अर्थव्यवस्था एक वर्ष के दौरान राष्ट्रों द्वारा चलायी जा रही आर्थिक गतिविधियों का संपूर्ण संकलन की सामूहिक अभिव्यक्ति है, और राष्ट्र यह देश के प्राकृतिक संसाधनों पर कार्य करते हुये करते है। विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ है अतः इन गतिविधियों का आकलन धन के निर्धारण द्वारा किया जाता है। पूरे वर्ष में पूरे उत्पादन की कीमत को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) कहा जाता है। हमारी अर्थव्यवस्था की सापेक्ष स्थिति जानने के लिये हम जी.एन.पी. के प्रति व्यक्ति मूल्य की तुलना दुनिया की अन्य अर्थव्यवस्थाओं से करते है।

पहले से ही ज्ञात तकनीकी के माध्यम से हमारी अर्थव्यवस्था सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ाने में सक्षम है और अर्थव्यवस्था के उत्पादन की उन्नति के लिये नवाचार या नये अविष्कार की कोई आवष्यकता नहीं है, इस तरह की अर्थव्यवस्था को विकासषील अर्थव्यवस्था के नाम से जाना जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक प्रगतिषील अर्थव्यवस्था है। यहां तक कि पहले से ज्ञात उत्पादन की बुनियादी संरचना का एक छोटा सा अतिरिक्त जुड़ाव, भारत को अधिक उत्पादन की ओर अग्रसर करता है। भूमि की प्रति इकाई 'उत्पादकता' का निम्न स्तर विकासषील अर्थव्यवस्था में औसत आय कम रखता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था या 'विकसित अर्थव्यवस्था' इसके ठीक विपरीत, प्रति श्रमिक औसत आय का स्तर उच्च रखती है उसका कारण है संसाधनों का सर्वोत्तम उपयेाग और उच्च उत्पादकता । आधुनिक या 'विकसित' अर्थव्यवस्था में मुख्यतः नये नये आविष्कारों, नवाचारों और ऐसी तकनीक का प्रयोग करके ही पहले से अज्ञात है या जिसका प्रयास ही नहीं किया गया का प्रयोग करके आय के स्तर में बढ़ोत्तरी होती है। विकसित अर्थव्यवस्था में केवल कुषल प्रौद्योगिकी ही उत्पादन बढ़ा देती है जबकि विकासशील अर्थव्यवस्था में आय और उत्पादन में बढ़ोत्तरी आधुनिक देषों से प्रौद्योगिकी के प्रत्यारोपण द्वारा बढ़ायी सकती है। भारत आर्थिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में शीघ्रातिषीघ्र उन्नति पाने के लिये आधुनिक प्रोद्योगिकी को प्राप्त करने का कठिन प्रयास कर रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था ने पिछले छः दषकों में उत्पादन में कई गुना विविधता दी है, फिर भी यह बड़े पैमाने पर कृषि फसलों, खनिज, पषु-पालन आदि जैसे प्राथमिक वस्तुओं के निर्माता के रूप में जाना जाता है। लगभग 58 प्रतिषत ग्रामीण मजदूर अभी भी फसल के लिये समर्पित हैं हालांकि राष्ट्रीय उत्पादन में प्राथमिक क्षेत्र का शुद्ध योगदान तेजी से घट रहा है। 2011 में यह लगभग 18 प्रतिषत था। औद्योगिक और अन्य सेवा क्षेत्रों की तुलना में कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय निराषाजनक रूप से कम है।

7.5 जनसंख्या दबाव और बेरोजगारी

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भारतीय अर्थव्यवस्था संक्रमणकालीन चरण से गुजर रही है जहाँ जनसंख्या दबाव मृत्यु दर तेजी से कम होने के कारण और जन्मदर में धीमीगति के कारण तेजी से बढ़ रहा है। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जनसंख्या दबाव तेजी से बढ़ रहा है। कृषि क्षेत्र में निवेश में कमी और उच्च श्रम आपूर्ति के कारण प्रच्छन्न प्रकार की भयानक बेरोजगारी की स्थिति बढ़ रही है।

यह अच्छी तरह से विदित है कि भारतीय अर्थव्यवस्था यहां तक कि ब्रिटिश शासन काल में भी गाँवों और उप शहरी इलाकों में कुटीर और लघु उद्योग इकाईयों के द्वारा खड़ी हुई है। इससे ग्रामीण श्रमिकों को बड़ी मात्रा में रोजगार मिलता है। विभिन्न प्रकार की षिल्प कलाएं सहायक रोजगार के अवसर प्रदान करती है। लेकिन बदलती हुयी तकनीक और जीवन शैली से षिल्प उत्पादों की मांग तेजी से घट रही है । धीरे धीरे, यह छोटी अर्थव्यवस्था विलुप्त प्राय होने की स्थिति में आ गयी। और ऐसा सिर्फ इन इकाईयों में उचित प्रौद्योगिकी परिवर्तन के अभाव के कारण और सहायक रोजगार उत्पन्न करने वाली गतिविधियों की उन्नति के लिये उचित निवेश की कमी के कारण ऐसा हुआ। षिल्प और कुटीर स्तर के औद्योगिक गतिविधियों का विलुप्त होना कामगारों के मजबूर अवकाश की अवस्था का होना रहा है। ग्रामीण बेरोजगारी कुछ क्षेत्रों में कृषि के यंत्रीकरण का उत्पाद है। कृषि मौसमी प्रकृति की होती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी बेरोजगारी एक आम लक्षण है । अगर कृषि पूंजी निर्माण और कृषि आधारभूत संरचना बनाने के लिये पर्याप्त निवेश किया गया होता तो ग्रामीण बेरोजगारी की अवस्था से बचा जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि ने रोजगार की अवस्था को और भी खराब कर दिया। बढ़ती जनसंख्या के प्रभाव को दूर करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम छः प्रतिषत पूंजी निर्माण के दर की आवष्यकता थी। अतिरिक्त 14 प्रतिषत दस्तावेजों के लिये प्रलेखों और मषीनरी के लिये बुनियादी ढांचे के लिये आवष्यक थे, इमारत में अतिरिक्त 20 प्रतिषत में कृषि में निवेश की वृद्धि सम्मिलित है। भारतीय अर्थव्यवस्था की सकल पूंजी निर्माण दर लगभग 35.9 प्रतिषत है, किन्तु कृषि पूंजी निर्माण और बुनियादी संरचना पर निवेश उद्योग और सेवाओं की तुलना में बहुत कम है। भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि प्रदर्षन में महत्वपूर्ण परिवर्तन संसाधनों के सर्वोत्तम आर्थिक उपयोग के लिये नयी तकनीकों के द्वारा प्रापत किया जा सकता है। 2004-05 में अनाज की घरेलू मांग पुनः 207 मिलियन टन हो गयी जो 2011-12 में बढ़कर लगभग

235.4 मिलियन टन हो गया और समय बीतने के साथ-साथ यह आगे भी बढ़ती गयी। भारत में जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में अनाज के उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही थी।

7.6 छोटे खातों की दमनकारी भूमिका तथा खेती में द्वैतवाद

भारतीय कृषि की एक बहुत ही उल्लेखनीय विषेषता सीमांत और छोटे किसानों की प्रबलता है जो बहुत कम पूंजीगत संपत्ति रखते है और उनकी पहुंच विलय संख्या में पूंजी राषि तक होती है। कृषक श्रमिकों में भारी आर्थिक असमानताएं होती है जो अधिकतर भूमि स्वामित्व और व्यावसायिक संपदा पर आधारित होती है और फसल असफलताओं और घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिये वित्तीय उधारी लेनी पड़ती है। लगभग 50 प्रतिषत भारतीय किसान केबल निर्वाह स्तर पर ही जीवन यापन कर रहे है। किसानों के पास अपना घर चलाने के लिये और जीवनयापन करने के लिये बहुत छोटे खेत है। इन 27 प्रतिषत किसानों के पास कवेल 2.4 प्रतिषत कृषि संपदा पर नियत्रंण है। 60 प्रतिषत किसान भूमि क्षेत्र का 9.3 प्रतिषत ही उपयोग में लाते है। अधिकांश खाते उत्पादक संपदा में छोटे और आकार में भी छोटे है। कृषि का उत्पादकता स्तर कौषल, योग्यता और कृषकों के संसाधनों पर नियंत्रण पर आधारित है। उद्यमिता की निचली गुणवत्ता, कम शैक्षणिक प्रदर्षन, उपकरण और कम ज्ञान अक्सर कम आय की स्थिति का उल्लेख करते है। अनुकरणीय रूढ़िवादिता, भाग्यवाद और अंधविष्वासी प्रकृति की खेती के नये तरीकें को अपनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं। भारतीय कृषि मजदूरों के मानव विकास सूचकांक दुनियां में सबसे कम है। साक्षरता और औपचारिक षिक्षा के स्तर में सुधार के लिये पिछले 6 दषकों की योजना के दौरान भारी प्रयासों के बावजूद कृषि उद्यमियों का ज्ञान आधार अभी भी अन्य विकासषील देषों की अपेक्षा बहुत पीछे है। 2005 में भारत का एच.डी.एल. चीन के 81 के विरूद्ध 128 था। भारतीय कृषि में तकनीकी स्तर में द्वैतवाद एक चिन्हित विषेषता है। भारतीय कृषि में विषेषरूप से पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, पष्चिमी उ.प्र. आदि में महत्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन हुआ है, जबकि भारत के अधिक हिस्से में कृषि उत्पादन के मामले में उल्लेखनीय पारंपरिकता है। 'आधुनिक' और पारंपरिक तकनीकी सहयोग का सह-अस्तित्व भारतीय कृषिकी उल्लेखनीय विषेषता है।

7.7 गंभीर गरीबी और बलात् अवकाश

गंभीर गरीबी, बेरोजगारी और प्रति श्रमिक कम उत्पादन, भारत में कृषि क्षेत्र की उल्लेखनीय विषेषताएं है। खेती के निम्न तकनीकी तरीके, सिंचाई की कमी, फसलों की कम गुणवत्ता, अनुचित उपकरण, पौधों की अपर्याप्त सुरक्षा, अपर्याप्त फसल का समर्थन, आधुनिक आदानों के लिये खराब पहुँच और प्रसंस्करण और उत्पादन क्रय के आधुनिक कौषल आदि जमीन की प्रति इकाई कम उत्पादन के कारण हैं। कम उत्पादकता गंभीर गरीबी की जड़ है। गरीबी का दुष्चक्र गरीब को हमेषा गरीबी में जकड़े रखता है। वास्तव में, बुनियादी ढाँचे पर पर्याप्त निवेश की कमी और एक तरफ फसल की तकनीकों पर शोध और दूसरी ओर बढ़ती आबादी

ने कृषि को अपनी पारंपरिक स्थिति में रखा। संपदा संवर्धन और फसल के लिये तकनीक की उन्नति पर निवेश ने भारतीय कृषि उत्पादकता को बढ़ावा दिया, स्वतंत्रता से पूर्व इन आयामों पर ध्यान दिया जाना चाहिये था। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने के लिये लघु उद्योग और कुटीर षिल्प उद्योग का विकास एक आसान साधन हो सकता है। ग्रामीणों के लिये आय के अतिरिक्त स्त्रोत ढूंढने के लिये पुरानी बेरोजगारी से सहायता मिल सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढाँचे के क्रियान्वयन, निर्माण परियोजनाओं से आय, संपत्ति, दक्षता, पोषण, बचत आदि में बढ़ोत्तरी होगी।

सिंचाई संवर्धन, सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, विद्यालय और अन्य परिसंपत्ति निर्माण सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, भंडारण सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति में सुधार कर सकती है। नरेगा को वर्तमान में इसी तरह के उद्देष्य से लागू किया गया है।

7.8 निर्यात आय

भारत में आर्थिक विकास की समग्र गति प्राथमिक क्षेत्र की वृद्धि और कामकाज पर निर्भर है क्योंकि उद्योग के लिये खाद्य और कच्चे माल की आपूर्ति केवल इसी क्षेत्र द्वारा की जानी है। बढ़ती जनसंख्या का भार इसी क्षेत्र द्वारा लिया जाना चाहिये। निर्यात और व्यवसाय क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भर करता है। कृषि क्षेत्र में किसी भी तरह की कमी के कारण ही खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि और कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि होती है और जिसका असर वेतन और मूल्यों पर पड़ता है। किसी भी क्षेत्र में आर्थिक विस्तार में अधिक श्रम की आवष्यकता होती है जो शहरीकरण की प्रक्रिया में प्राथमिक क्षेत्रों द्वारा प्राप्त किया जाता है। कृषि वस्तुओं के निर्यात अधिषेश का अधिकांश हिस्सा विदेषी मुद्रा उत्पन्न करता है और आयात के लिये हकदारी को बढ़ावा देता है। पूंजीगत वस्तुएं प्राथमिक क्षेत्र में विनिमय द्वारा अर्जित अर्थव्यवस्था के द्वारा खरीदी जाती है। खनिज, भोजन, शक्कर, चाय, मछली, फल, मसाले, दाले आदि विकासषील अर्थव्यवस्था के मुख्य निर्यात है। भारत में निर्यात से होने वाली आय के मुख्य सहयोगात्मक कारक कृषि क्षेत्र जैसे जूट, चाय, वस्त्र, सूत है निर्यात आय में 50 प्रतिषत से ज्यादा का योगदान इन कारकों के द्वारा दिया जाता है। कुछ सहायक उत्पाद जैसे काजू, तम्बाकू, काफी, शक्कर, दालें और सब्जी से बने तेल के निर्यात से लगभग 70 प्रतिषत का योगदान रहता है। 1960-61 में कुल निर्यात का 44.2 प्रतिषत कृषि निर्यात का अंश था। जोकि 1980-81 में घट कर 30.7 प्रतिषत हो गया और 2011-12 में 12.3 ही रह गया।

अब तक पिछड़ने वाली कृषि में जब प्रौद्योगिकी प्रवेश करती है, तो किसानों और प्राथमिक क्षेत्र के अन्य कर्मचारियों के हाथ में आय दोगुनी हो जाती है। इससे शहरी औद्योगिक सामान, विषेषज्ञ और सेवाओं तथा बड़ी मात्रा में विनिर्माण की मांग बढ़ जाती है। और प्राथमिक क्षेत्र एक बाजार या औद्योगिक सामान के खरीददार के रूप में उपलब्ध रहता है। विकासषील कृषि नये कार्यान्वयन, उत्पादन, उपकरणों, मषीनों, रसायनों,

खादों आदि का प्रयास करता है न कि विभिन्न तकनीकी सेवाओं का। नयी मांग ने सभी क्षेत्रों में वृद्धि को ऊपर उठाया।

7.9 राजनीतिक और सामाजिक आयाम

नयी तकनीक और विज्ञान के प्रयोग के कारण खेती उत्पादन ने आधुनिक रूप ले लिया, कृषि एक उद्योग बन गया और एक व्यवसाय के रूप में काम करने लगी। इसने एक नया प्रबंधकीय तरीका अपनाया। खेती की अनिष्चितता की कमी को फसल बीमा ने पूरा किया। जैसे जैसे अर्थव्यवस्था बढ़ती है, राष्ट्रीय आय में कृषि का सापेक्ष हिस्सेदारी कम होती जाती है और तृतीयक गैर औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर बढ़ जाती है। लेकिन तथ्य यह है ग्रामीण क्षेत्रों में समाजशास्त्रीय अन्तर - क्रिया क्षेत्र उपलबध कराकर घर पर उत्पादक प्रदत्त रोजगार में स्थिरता सुनिष्चित करने में कृषि की विषेश भूमिका है। इसके साथ-साथ कृषि का राजनीतिक महत्व भी है। लोकतंत्र मतों की शक्ति से चलता है और ग्रामीणों का मतों की महान शक्ति की वजह से सत्ताधारी सरकार पर अनुषासन रहता है। राज्य की नीतियों को रियासत और घरेलू कृषि को सुरक्षा प्रदान करने के लिये ग्रामीण लॉबी प्रभावित करती है। ग्रामीण विकास परियोजनाओं को सत्ताधारी सरकार का सहयोग मिलता है क्योंकि गाँवों में बड़ी तादाद में मताधिकारी रहते है और सत्ता पर काबिज रहने के लिये छुपे हुये राजनीतिक मुद्दों के कारण भी सत्ता पक्ष ग्रामीण विकास परियोजनाओं को सहयोग प्रदान करता है।

कृषि की भूमिका पर चर्चा का सार इस प्रकार हैः-

1 प्राथमिक क्षेत्र में खाद्य और चारा के स्त्रोत के साथ-साथ औद्योगिक कच्चे माल के स्त्रोत भी है।

2 कृषि जनषक्ति के रोजगार का मुख्य स्त्रोत है।

3 उद्योग और तृतीयक क्षेत्रों में पूंजी आपूर्ति और बचत के स्त्रोत के रूप में कृषि।

4 औद्योगिक सामानों एवं तृतीयक क्षेत्र की सेवाओं के लिये कृषि एक बाजार के रूप में उपलब्ध रहती है।

5 कृषि से व्यापार, यातायात, भंडारण और अन्य संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है।

6 व्यवसाय और उद्योगों में कृषि उद्यमियों के लिये प्रशिक्षण का मैदान है।

7 कृषि विकास के कारण ग्रामीण बुनियादी ढाँचे का विकास होता है।

8 कृषि निर्यात से अर्थव्यवस्था के लिये पूंजी अधिषेश उत्पन्न होती है।

9 विकास की प्रक्रिया में कृषि अन्य क्षेत्रों के लिये भी जनसंख्या और श्रमिकों को उपलब्ध कराता है।

10 कृषि केवल व्यवसाय नहीं है बल्कि यह सामुदायिक जीवन और कठिन ग्रामीण परिवेश में जीवन जीने की कला का प्रारूप है।

11 कृषि विकास के कारण ही स्त्रोतों का एकत्रीकरण और उपयोगिता संभव है।

7.10 भारत में कृषि की स्थिति

भारत में समृद्ध कृषि के लिये प्राकृतिक संसाधन अनुकूल रहते हैं। भारत में लगभग 53.2 प्रतिषत भूमि क्षेत्र कृषि के लिये उपयुक्त है। बांग्लादेश में 60.7 प्रतिषत, डेनमार्क में 56.6 प्रतिषत, यूक्रेन में 57 प्रतिषत भूमि खेती के लिये उपयुक्त है। भारत में कुल 32.4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र है किन्तु यह पूरा खेती के लिये उपलबध नहीं है और न ही पूरे क्षेत्र का भूमि उपयोग का पैटर्न ज्ञात है। कुछ भूमि तो अज्ञात और अमापित है जबकि कुछ भूमि निरंतर बर्फ से ढकी रहती है। लगभग 1,70,17,000 हेक्टेयर भूमि (2009 में) बंजर और खेती के अयोग्य पायी गयी। यह क्षेत्र मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, आन्ध्र, महाराष्ट्र, असम, म.प्र., उड़ीसा, कर्नाटक, हिमाचल और झारखण्ड राज्यों के है। लगभग 1,32,39,000 हेक्टेयर क्षेत्र कृषि योग्य बेकार पड़ी भूमि के रूप में चिन्हित की गयी। यह क्षेत्र लगभग 4,72,262 स्क्वेयर कि.मी. या 14.91 प्रतिषत तक हो सकता है। भारत की कृषि योग्य भूमि 15,59,05,000 हेक्टेयर है जो कुल भूमि का 60.4 प्रतिषत है। यह अमेरिका से दूसरे स्थान पर आता है। अमेरिका की कृषि योग्य भूमि 17,44,42,000 हेक्टेयर है। भारत में कुल कृषि योग्य क्षेत्र 15,55,35,000 हेक्टेयर महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेष, मध्यप्रदेष, आन्ध, कर्नाटक, गुजरात, बिहार, उड़ीसा, और तमिनाडु तक फैला है। भारत का सकल फसली क्षेत्र 19,51,04,000 हेक्टेयर है, जिसका अधिकांश हिस्सा उत्तरप्रदेष, महराष्ट्र, राजस्थान, आनध्र, म.प्र., कर्नाटक, गुजरात पष्चिम बंगाल, उड़ीसा और पंजाब राज्यों में हैं यहाँ 83.31 करोड़ ग्रामीण जनता (2011) 640867 गाँवों में रह रही है, जहाँ का मुख्य व्यवसाय कृषि है। ग्रामीण परिवेश में इस व्यवसाय से जुड़ी अन्य गतिविधियाँ पषुपालन, डेरी, वानिकी, खदान उत्खनन, मत्स्यपालन, षिकार करना आदि है।

खेती में सफलता या असफलता का असर अन्य ग्रामीण व्यवसायों जैसे ग्रामीण षिल्प और ग्रामीण व्यवसाय पर पड़ता है। भारतीय जंगल विभिन्न प्रकार के जंगली उत्पादों के बहुत महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं, जिसके एकत्रीकरण औरप्रसंस्करण से ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार मिलता है। लगभग 2690 ऐसे गाँव जो जंगलों से लगे हुये हैं उनके आदि वासियों को जंगल आश्रय प्रदान करते है। (2005)। सबसे बड़े जंगली क्षेत्र मध्यप्रदेष, आन्ध्र प्रदेष, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, अरूणाचल प्रदेष, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेष, उत्तराखंड और राजस्थान में है। 2002 में भारत का कुल जंगली क्षेत्र 7,68,436 किलोमीटर था जो जंगली क्षेत्र का 23.57 प्रतिषत तक फैला हुआ था। अंडमान निकोबार में 87 प्रतिषत जंगल हैं। सिक्किम, मणिपुर, मिजोरम और हिमाचल राज्यों में बहुत घने जंगल है। अन्य राज्यों जैसे, उत्तराखण्ड, अरूणाचल और त्रिपुरा में उनके क्षेत्र का 65 से 60 प्रतिषत तक जंगल फैला हुआ है। नागालैंड में जंगल समाप्त हो गये और यहाँ अब मात्र 52.05 प्रतिषत जंगल हैं। वनों की कटाई ने वनों को काफी कम कर दिया है जो कि 44.21 प्रतिषत तक रह गया है। वन्यजीव संरक्षण के लिये जंगलों की सुरक्षा अत्यन्त आवष्यक है, पर्यटन विकास के लिये, पारिस्थितिक और पर्यावरण सुरक्षा के लिये

औद्योगिक उपयेाग के बड़े और छोटे जंगली उत्पादों को दर किनार करते हुये जंगलों का संरक्षण अत्यन्त आवष्यक है। वन कृषि और पषुपालन के अच्छेरखरखाव के लिये फायदेमंद है। भारतीय राष्ट्रीय वन नीति में मैदानों में 62 प्रतिषत क्षेत्र और वन क्षेत्र में 33 प्रतिषत वनक्षेत्र के आच्छादन की सिफारिश की गयी। वनीकरण और वन वृक्षारोपण की बहुतसी योजनाएं है। अतः वनों का आच्छादान कम हो रहा है। सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी, सार्वजनिक लकड़ी योजना, वन विकास निगम और बेकार भूमि विकास बोर्ड आदि वन के प्रचार के लिये कामकर रहे है। संयुक्त वन प्रबंधन योजना ने इस मिषन में भूमिहीन महिला और जनजाति की भागीदारी की कोषिश की है। भारतीय वन अधिनियम वनों को सुरक्षा प्रदान करता है। जंगली लकड़ी और जलाऊ लकड़ी की कमी से मूल्यों में वृद्धि हुई और बड़े पैमाने पर अवैध वनों की कटाई को प्रोत्साहित किया। वन, हवा और मिट्टी में नमी को संरक्षित करते है और भूजल को समृद्ध करते है। उच्च उपज वाली किस्मों के कार्यक्रम (एच.वाई.वी.पी.) और गहन क्षेत्र विकास कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) की नयी कृषि पद्धतियों से अधिक सिंचाई की मांग की जाती है। प्रत्येक राज्य में वनभूमि पर अतिक्रमण बढ़ रहा है और इस तरह जमीन की कीमतें प्रति वर्ष आसमान छू रही हैं।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है, 56 प्रतिषत श्रमिक बल कृषि क्षेत्र से रोजगार पाता है और आज भी भारतीय राष्ट्रीय कृषि श्रमिक भूमि के कार्यों में किसान के रूप में कार्यरत है और उनमें से 27 प्रतिषत मजदूर हैं। भारत का लगभग 12.15 प्रतिषत निर्यात सीधे कृषि से प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है और उसमें से 20 प्रतिषत कृषि उत्पादन जैसे जूट, सूत, चीनी इत्यादि से प्राप्त होता है।

7.11 अन्तर क्षेत्रीय प्रभाव

कृषि विकास का पूरी अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह कई तरह से हो सकता हैः-

(अ) कृषि खेती से गैर कृषि गतिविधियों तक मजदूरों के एक बड़े खण्ड को संजोकर रखती है।

(आ) यह न केवल उद्योग, यातायात, व्यापार, सेवा क्षेत्रों के लिये कच्चामाल और भोजन उपलब्ध कराती है बल्कि प्रवासी श्रमिकों के हिस्से को बचाती है ताकि पूंजी उत्पन्न की जा सके।

(इ) कृषि अन्य क्षेत्रों के उत्पाद के लिये बाजार के रूप में कार्य करती है।

(ई) कृषि वैकल्पिक उत्पाद जैसे पेट्रोल के लिये ईथानौल, डीजल के लिये जटरोपा आदि भी उपलब्ध कराती है।

(उ) बढ़ी हुई कृषि आय संपूर्ण अर्थव्यवस्था को विभिन्न प्रभावों के द्वारा क्रियाषील करती है। निर्यात और औद्योगिक विकास कृषि उन्नति पर निर्भर करते है।

(ऊ) कृषि मौलिकता को सभी के द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

7.12 कृषि निवेश की देखभाल

खाद्य की कमी, फसल की विफलताओं और औद्योगिक कच्चेमाल के क्षेत्र में संकट से कृषि विकास में सतर्कता उत्पन्न हुई विषेश रूप से द्वितीय विष्वयुद्ध के बाद वाले समय में कृषि विकास पर अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1955) में 1960 करोड़ रूपये कृषि विकास पर व्यय किये जो कि व्यय योजना का 31 प्रतिषत था किन्तु बाद में आगे आने वाली योजनाओं में व्यय के प्रतिषत की तरह कृषि पर निवेश का अंश भी घटता गया। ग्यारहवीं योजना में यह व्यय योजना का केवल 18 प्रतिषत था (2007-12)। किन्तु ग्यारहवीं योजना में वास्तविक व्यय 36,44,720 तक बढ़ गया । कृषि पर इतनी भारी राषि का व्ययं सिंचाई, मृदा संरक्षण, सूखी-खेती, भूमि सुधार, उर्वरक आपूर्ति, नयी तकनीक और उनके क्रियान्वयन से संबंधित था। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों (सी.डी.पी.) विस्तृत काम, भूमि सुधार, ग्रामीण यातायात, विद्युतीकरण, विपणन, सहकारी ऋण, बीज विकास और चुनिंदा फसलों में गुणवत्ता सुधार में अनुसंधान के अन्तर्गत कृषि सहायता सेवाओं की उत्पत्ति हुई।

यह माना जाता है कि भारत में कृषि स्वतंत्रता के बाद पहले दो दषकों तक अल्पविकसित और पारंपरिक थी। उच्च उपजों वाले विभिन्न कार्यक्रमों एच.वाई.वी.पी. द्वारा लायी गयी हरित क्रांति ने चुनी हुई फसलों में उपज में चमत्कारिक वृद्धि की। किसानों को दी जाने वाली सहायक सेवाओं में विषेषतः सिचांई, मृदा संरक्षण, ग्रामीण कृषि साख, उत्पादन आपूर्ति, भंडारण, विपणन, खरीद एवं आधार मूल्य गारंटी तथा खाद्य वितरण आदि ने भोजन और कच्चेमाल की कीमतों में कमी लाने हेतु नेतृत्व किया।

यह महसूस किया जाता है कि प्रौद्योगिकी निरंतर संषोधन के अन्तर्गत है और नयी खोजों से सहारा भी मिल रहा है, भारतीय कृषि अक्सर घरेलू खपत और निर्यात के लिये बढ़ती मांग को पूरा करने में विफल रहती है। खरीद नीति पर्याप्त भंडारण सुविधाएं देने में असमर्थ है। ग्रामीण विकास कृषि सुधार और मुर्गीपालन, दुग्धपालन, सुअर पालन, मत्स्यपालन, फल आदि क्षेत्रों के विकास पर निर्भर करती है इसके साथ ही फूल उगाने की परंपरा भी सब्जी जैसी है, अतः फूलों की खेती के विकास पर ग्रामीण विकास निर्भर करता है।

विष्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के कारण नये विकास ने भारतीय कृषि के विकास के लये एक उत्साहवर्धक वातावरण तैयार किया, जहाँ कृषि की नयी तकनीक और व्यवसायीकरण में नये आयामों को खोला और नये बाजारों तक अपनी पहुँच बनायी। भारतीय कृषि को सिंचाई परियोजनाओं, बिजली परियोजनाओं, दुग्ध पालन तकनीक, फसल अनुसंधान, बुनियादी आधारभूत सुवधिाओं और वर्षा संचयन के लिये आधुनिक तकनीक पर तत्काल बड़े निवेश की आवष्यकता है।

7.13 सारांश

कृषि एक व्यवसाय के साथ साथ फसल की उर्वरता का विज्ञान भी हैं इससे संबद्ध कई व्यवसाय हैं जैसे दुग्ध व्यवसाय, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन, मधुमक्खी पालन, भेड़ और ऊन, और पषुपालन । कृषि किसी भी

अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र के मुख्य भाग को निर्मित करता है। कृषि की कुछ मुख्य विषेषताएं है जैसे जीवन जीने का ग्रामीण पारंपरिक आधार। यह खाद्य और कच्चेमाल का उत्तम स्त्रोत है। यह लागत पर शुद्ध, अधिषेश उत्पन्न करता है। अन्य व्यवसायों की तुलना में कृषि पर अभी तक कम से कम विवरणी का कानून लागू होता है। अर्थव्यवस्था का ढाँचागत परिवर्तन कृषि के सापेक्ष प्रतिषत सहयोग को कम कर देता है। प्रगतिषील अर्थव्यवस्था में कृषि जीविकोपार्जन और रोजगार का मुख्य स्त्रोत है। चूंकि व्यर्थ भूमि की आपूर्ति तय है, इसलिये औद्योगकीकरण के द्वारा जनसंख्या वृद्धि के उद्भव में कमी आयी। कृषि की प्रकृति मौसमी है अतः मौसमी बेकारी कृषि की एक मुख्य विषेषता है। कृषि उपभोग पर अधिषेश उत्पन्न करती है, पूंजी निर्माण की गति भी तेजी से आर्थिक विकास के लिये बहुत कम है। श्रम, कच्चामाल, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के लिये बाजार उपलब्ध कराने में कृषि क्षेत्र सहयोग करता है तथा साथ ही निर्यात योग्य अधिषेश भी उपलब्ध कराता हैं

7.14 शब्दावली

छोटे खाते: छोटी खेती की सीमा ।

कृषि: खेती की भूमि, बढ़ती फसल और चारा, प्रजनन और पषुधन, खेती को बढ़ाने से संबंधित विज्ञान, कला या व्यवसाय।

7.15 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

1. ..... की ह्रासमान प्रतिफल का नियम ..... की तुलना में कुछ जल्दी लागू होता है।
2. ..... गिरी हुई अर्थव्यवस्था में उपयोग में लायी जाती है जहां उत्पादन का बाजार के लिये कोई अभिविन्यास नहीं है।
3 भारत में आर्थिक विकास की समग्र गति ..... क्षेत्र के विकास और कामकाज पर निर्भर है।
4 भारत की लगभग --------- प्रतिषत भूमि कृषि क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) 1 कृषि, उद्योग 2 परंपरागत उद्योग 3 प्राथमिक 4. 53.2

7.17 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की क्या भूमिका है ?
2. भारतीय कृषि किन कठिनाईयों का सामना करती है ?
3 भारत में कृषि उत्पाद की खराब उपज के क्या कारण है, व्याख्या कीजिए।

4 भारतीय कृषि में होने वाले सुधारों का सुझाव दीजिए ताकि यह भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक प्रभावशील अवयव बन सके।

5 भारत में कृषि के मषीनीकरण के लाभ एवं हानियों को समझाइये।

6 भारत कें कृषि से संबंधित योजनाओं और नीतियों की चर्चा कीजिए।

7 भारतीय कृषि की विषेश विषेषताओं की व्याख्या कीजिए।

8 भारत में हरित क्रांति पर प्रकाश डालिये ।

7.18 संदर्भ पुस्तकें

1. Rudder Datt and KPM Sundharam, "Indian Economy, S. Chand and Co., New Delhi.
2. Census of India (2011), Report of the Technical Group on Population constituted by the National Commission on Population (2006).
3. UNDP – Human Development Index, 2007 to 2009.
4. R.H. Cassen, India – Population, Economy and Society, (Delhi, 1929).
5. Government of India: Reports of Economic Surveys.
6. Jean Dreze and Amartya Sen, India – Economic Development and Social Opportunity, (Delhi, 1996).
7. T. N. Krishnan "Population, Poverty and Employment in India", Economic and Political Weekly, Nov. 14, 1992, p. 2480.
8. Pravin Visaria, "Demographic Dimensions of Indian Economic Development" in P.R. Brahmananda and V. R. Panchmukhi The Development Process of the Indian Economy, (Bombay, 1987).
9. Does India's Population Growth Has A Positive Effect on Economic Growth? Rohan Kothari, Social Science 410, Nov. 1999.
10. Population and Economic Development in India, N.R. Narayan Murthy, July, 2005.
11. India Development Report, 2010.
12. Mahendra K. Premi – 'Population of India in the New Millenium, Census-2001 (New Delhi, NBT 2006).
13. Rakesh Mohan and Chandra Shekhar Pant, "Morphology of Urbanization in India', Economic and Political Weekly, September, 18, 1982, p. 1537.
14. Frederick Harbison and Charles A. Myeres – "Education, Manpower and Economic Growth (New Delhi, 1970).
15. Indian Economy: Ruddar Datt, KPM Sundaram, S. Chand, New Delhi.
16. The Indian Economy, Environment and Policy: Ishwar C. Dhingra, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
17. Indian Economy: Mishra & Puri, Himalaya Publishing House, New Delhi.

इकाई आठ : भारत में संवैधानिक विकास (1861, 1909, 1919 तथा 1935 के अधिनियम)

8.1 प्रस्तावना

8.2 इकाई के उद्देश्य

8.3 भारत में चुनाव प्रणाली का प्रारम्भ

8.3.1 1861 के एक्ट से पूर्व की संवैधानिक स्थिति

8.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान

8.3.3 1861 के एक्ट के गुण

8.3.4 1861 के एक्ट के दोष

8.4 1909 का इण्डियन काउंसिल एक्ट

8.4.1 भारतीयों द्वारा स्वराज्य अर्थात् स्वशासन की मांग

8.4.2 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान

8.4.3 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के गुण

8.4.4 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के दोष

8.5 1919 का गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट

8.5.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान संवैधानिक सुधार हेतु अनुकूल वातावरण का विकास

8.5.2 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

8.5.3 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के गुण

8.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष

8.6 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट

8.6.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट से लेकर 1933 के व्हाइट पेपर के प्रकाशन तक की गतिविधियां

8.6.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

8.6.3 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण

8.6.4 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के दोष

8.7 सार संक्षेप

8.8 पारिभाषिक शब्दावली

8.9 सन्दर्भ ग्रंथ

8.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हो गया था। पिछली इकाइयों में यह चर्चा हो चुकी है कि 1857 के विद्रोह का दमन करने के बाद अंग्रेज़ों ने यह समझ लिया था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में भारतीयों को किसी भी प्रकार हिस्सेदारी न दिया जाना तथा शासक एवं प्रजा में दूरी बनाए रखना अनुचित था। महारानी विक्टोरिया के 1858 के घोषणा पत्र में भारतीयों तथा ब्रिटिश प्रजा में किसी प्रकार का भेदभाव न करने के आश्वासन की चर्चा भी हो चुकी है। इस इकाई में अंग्रेज़ों द्वारा भारत में संवैधानिक सुधारों की अत्यधिक मन्द गति तथा उनके भारतीयों की आंकाक्षाओं तथा मांगों से बहुत कम होने की विवेचना की जाएगी।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रखर तथा विकसित होने के साथ ब्रिटिश भारतीय सरकार पर संवैधानिक सुधार तथा लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित करने के लिए दबाव निरन्तर बढ़ता चला गया। इन परिस्थितियों में भी सरकार टुकड़े-टुकड़े में ही सुधार परोसती रही। इस इकाई में भारतीयों द्वारा संवैधानिक सुधारों की मांगों को लेकर आन्दोलन करने तथा उनके कारण सरकार को सुधार करने के लिए विवश होने की समीक्षा की जाएगी। भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के विभिन्न चरणों की इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

8.2 इकाई के उद्देश्य

1858 में भारत ब्रिटिश ताज के अधीन हो गया था। स्वाभाविक रूप से इसके कारण भारत में संवैधानिक परिवर्तन अपेक्षित थे। इस इकाई में आपको ब्रिटिशकालीन भारत में संवैधानिक विकास से अवगत कराया जाएगा। इसको पढ़ने के बाद आप अवगत होंगेः

- भारत में इंग्लैण्ड के समान लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित किए जाने की दिशा में क्रमिक विकास से।
- भारत में सीमित चुनाव प्रणाली के प्रचलन, प्रान्तों में और फिर केन्द में आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना से।
- भारत में संवैधानिक सुधार की धीमी गति और भारतीयों की संवैधानिक सुधार हेतु बढ़ती हुई मांगों के लिए किए गए आन्दोलनों से।

8.3 भारत में चुनाव प्रणाली का प्रारम्भ

8.3.1 1861 के एक्ट से पूर्व की संवैधानिक स्थिति

1765 में बादशाह शाहआलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर अंग्रेज़ों ने भारत में अपने साम्राज्य की नींव डाली थी। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत की सर्वोच्च सत्ता के रूप में

स्थापित किया गया और गवर्नर जनरल व गवर्नरों की कार्यकारिणी का गठन हुआ। अगले साठ वर्षों में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन एक ओर सुदृढ़ हुआ, दूसरी ओर उसका विस्तार भी हुआ। 1833 के चार्टर एक्ट में शक्ति का केन्द्रीयकरण करने के उद्देश्य से बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रास की सरकारों से कानून बनाने का अधिकार तक छीन लिया गया और यह दायित्व गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के विधि सदस्य को सौंपा गया। 1853 के चार्टर एक्ट से पूर्व ही भारतीयों द्वारा केद्र तथा प्रान्तों में विधान सभाओं के गठन और उनमें भारतीयों के प्रतिनिधित्व की मांग उठने लगी थी। 1857 के विद्रोह के दमन के बाद यह अनुभव किया गया कि शासक वर्ग और प्रजा के मध्य किसी प्रकार का वैचारिक आदान-प्रदान नहीं है। सैयद अहमद खान ने अपनी पुस्तक असबाब-ए- बग़ावत-ए-हिन्द में शासक और प्रजा के बीच की इस दूरी को विद्रोह का एक प्रमुख कारण माना था। अगस्त, 1858 में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया। महारानी विक्टोरिया ने 1858 के अपने घोषणापत्र में भारतीयों को यह आश्वासन दिया कि वो भारतीयों को अपनी अन्य प्रजा के समान ही अधिकार और सुविधाएं देंगी। इस प्रकार भारतीयों को संवैधानिक एवं राजनीतिक सुधारों की आशा बंधने लगी। सर बार्टल फ्रेयर (गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य) जैसे उदार ब्रिटिश अधिकारी सेफ़्टी वॉल्व के रूप में भारतीयों को राजनीतिक एव संवैधानिक सुधार दिए जाने पर ज़ोर दे रहे थे। इन परिस्थितियों में 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट पारित हुआ।

8.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान

1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में इंग्लैण्ड की भांति भारत में संसदीय प्रणाली और प्रतिनिधि सभा के गठन का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इसमें वाइसरॉय की परिषद के सदस्यों की संख्या 4 से बढ़ाकर 5 कर दी गई। इन 5 सदस्यों में से 3 की नियुक्ति भारत सचिव द्वारा और 2 की ब्रिटिश ताज द्वारा की जानी थी (1869 से सभी सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार ब्रिटिश ताज के हाथों में आ गया)। नया सदस्य कानून का विशेषज्ञ रक्खा गया। शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभागीय प्रणाली का, अर्थात् कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ किया गया। विभिन्न सदस्यों को अलग-अलग विभागों के संचालन का दायित्व दिया गया परन्तु महत्वपूर्ण मामलों में समस्त परिषद का निर्णय मान्य होना था।

वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद का विस्तार किया गया। इसमें कानून बनाने के लिए न्यूनतम 6 और अधिकतम 12 अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान रक्खा गया जिनमें कमसे कम 5 गैर सरकारी सदस्य होने थे। गैर सरकारी अतिरिक्त सदस्यों में भारतीयों को भी नियुक्त किया जाना था। इन अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर जनरल को दिया गया और इनका कार्यकाल 2 वर्ष रखा गया।

प्रान्तीय परिषदों में भी अतिरिक्त सदस्यों का प्रावधान रक्खा गया। इनकी न्यूनतम संख्या 4 और अधिकतम 8 रक्खी गई।

8.3.3 1861 के एक्ट के गुण

शक्ति के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाते हुए अनेक अधिकार केन्द्र के नियन्त्रण से हटाकर प्रान्तों को दे दिए गए। कार्यकारी परिषद में अतिरिक्त सदस्य के रूप में भारतीय सदस्य रक्खे जाने से शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी की शुरूआत हुई। विभागीय प्रणाली लागू होने से शासन को सुचारु रूप से चलाने में सहायता मिली। इस एक्ट से शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ने गति पकड़ी। लॉर्ड मेयो के शासनकाल में इसमें और गति आई। इस एक्ट के फलस्वरूप पहली बार भारतीय वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में उसके समक्ष बैठ सके। शासन में भारतीयों को हिस्सेदारी की शुरूआत को लॉर्ड रिपन के शासन काल में और अधिक विस्तार दिया गया। मई, 1882 के 'लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट एक्ट' के अन्तर्गत स्थानीय निकायों - नगर पालिकाओं और जिला परिषदों में स्वायत्त शासन की स्थापना की गई। लॉर्ड डफ़रिन के शासनकाल में दिसम्बर, 1885 में सर बार्टल फ्रेयर तथा ए0 ओ0 ह्यूम के मतानुसार भारतीयों के आक्रोश को विद्रोह में विकसित न होने देने के उद्देश्य से सेफ़्टी वॉल्व के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए भी इस एक्ट ने अनुकूल वातावरण विकसित किया।

8.3.4 1861 के एक्ट के दोष

इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल के विस्तार के बावजूद गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की शक्तियां असीमित रहीं। कार्यकारी परिषद के अतिरिक्त सदस्यों में हैदराबाद के सालारजंग और महाराजा पटियाला जैसे भारतीयों को सम्मिलित तो किया गया परन्तु आमतौर पर वह सरकार के चाटुकार ही होते थे। गैर सरकारी यूरोपियन सदस्यों में अधिकांश व्यापारी होते थे जिनकी कि अभिरुचि मुख्य रूप से अपने व्यापारिक हितों को सुरक्षित रखने में होती थी, आम भारतीयों के हितों की उनको कोई चिन्ता नहीं होती थी।

इस एक्ट से लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की दिशा में पहला प्रयास तो हुआ पर कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। इस एक्ट ने चुनाव की प्रणाली लागू नहीं की। चार्ल्स वुड द्वारा हाउस ऑफ कॉमन्स में यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत में इंग्लैण्ड जैसी पार्लियामेन्ट स्थापित किए जाने की कोई योजना नहीं है।

1.1861 के एक्ट के गुण एवं दोशों पर चर्चा कीजिए-

8.4 1909 का इण्डियन काउंसिल एक्ट

8.4.1 भारतीयों द्वारा स्वराज्य अर्थात् स्वशासन की मांग

1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में भारतीयों को अपेक्षित सुधार नहीं दिए गए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस निरन्तर मांग कर रही थी कि भारत में जन-प्रतिनिधि सभाओं का गठन किया जाए और इसके लिए चुनाव की प्रक्रिया लागू की जाए। परन्तु इस एक्ट को लागू किए जाने से पहले ही भारत सचिव लॉर्ड क्रॉस ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार का भारत में संसदीय प्रणाली लागू करने का कोई इरादा नहीं है। यह अवश्य किया गया कि केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद के अतिरिक्त सदस्यों की न्यूनतम संख्या 10 और अधिकतम 16 कर दी गई और उनके कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि कर दी गई। गवर्नर जनरल को विभिन्न संस्थाओं से अपने प्रतिनिधियों के नाम मंगवाने और उनमें से अतिरिक्त भारतीय

सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में सरकारी सदस्यों का बहुमत बनाए रखा गया। अब विधान परिषद में प्रश्न कर सकते थे और पूरक प्रश्न भी कर सकते थे। सदस्य बजट पर बहस भी कर सकते थे किन्तु उस पर वोट नहीं दे सकते थे इसलिए अभी भी नीति निर्धारण में उनकी भूमिका मात्र सलाहकार और आलोचक की थी। स्वाभाविक रूप से भारतीय संवैधानिक सुधारों की इस कछुआ चाल से सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। लोकमान्य तिलक जैसे उग्रवादी नेता स्वराज्य से कम कुछ भी लेने को तैयार नहीं थे। लॉर्ड कर्ज़न के दमनकारी शासन (1899 से 1905) ने भारतीयों के रोष में वृद्धि की। उसने शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को पलट दिया और उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण बढ़ा दिया। उसके बंगाल विभाजन के निर्णय ने भारतीयों के सब्र का बांध तोड़ दिया। 1905 से स्वदेशी आन्दोलन और क्रान्तिकारी आतंकवाद ने सरकार की मुश्किलें बढ़ा दीं। अब स्वराज्य अथवा स्वशासन की मांग ज़ोर पकड़ने लगी।

1905 में लॉर्ड कर्ज़न के बाद लॉर्ड मिन्टो भारत का वाइसराय बनकर आया और इसके कुछ ही समय पश्चात उदारवादी जॉन मॉर्ले ने भारत सचिव का कार्य भार सम्भाला। लॉर्ड मॉर्ले के मस्तिष्क में ब्रिटेन की सरकार और भारत के उदारवादी राजनीतिज्ञों बीच एक गठबन्धन की योजना थी। बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण भारत में व्यापक अशान्ति थी। 1905 के कांग्रेस अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष गोपाल कृष्ण गोखले ने एक ओर भारत में स्वशासन की मांग की थी तो दूसरी ओर उन्होंने भारत सचिव की काउंसिल में कम से कम तीन भारतीय सदस्यों की मांग रखी थी। सरकार की फूट डाल कर शासन करने की नीति के फलस्वरूप एक ओर मुस्लिम शिष्ट मण्डल द्वारा मुसलमानों के लिए विशेष शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक सुविधाओं और अधिकारों की मांग को लॉर्ड मिन्टो द्वारा सहानुभूतिपूर्वक सुना गया और कुछ ही समय बाद मुस्लिम लीग की स्थापना हो गई तो दूसरी ओर 1907 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन परिस्थितियों में नए वाइसराय तथा भारत सचिव ने आपस में मिलकर विधान परिषदों में सुधार की एक योजना प्रस्तुत की जिसे 1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट का नाम दिया गया परन्तु इसकी प्रसिद्धि इसके निर्माताओं - मॉर्ले तथा मिन्टो के नाम पर 'मॉर्ले-मिन्टो सुधार' के रूप में ही हुई।

8.4.2 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान

1. 1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में चुनाव की व्यवस्था लागू की गई किन्तु मताधिकार के लिए सम्पत्ति की शर्त रख दी गई जिसके कारण मात्र 3 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हो सका।

2. मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया। मुसलमानों के निर्वाचक मण्डल को मुस्लिम प्रतिनिधियों का चुनाव करना था।

3. काउंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 69 की गई जिसमें से 37 सरकारी और 32 गैर सरकारी होने थे। गैर सरकारी सदस्यों में 5 गवर्नर-जनरल द्वारा नामित और 27 चुने हुए सदस्य होने थे। चुने हुए 27 सदस्यों में 7 प्रान्तों के 7 ज़मींदारों, 5 प्रान्तों के 5 मुसलमान, और 2 चैम्बर ऑफ कॉमर्स के प्रतिनिधि होने थे। केवल 13 स्थान सामान्य वर्ग के लिए थे। इन 13 स्थानों के लिए दोहरी अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अपनाई गई थी। चुने हुए सदस्यों को ब्रिटिश साम्राज्य

के प्रति निश्ठा की शपथ लेना आवश्यक था। प्रान्तीय विधान परिषदों के 200 गैर सरकारी सदस्य केन्द्रीय विधान परिषद के इन 13 सदस्यों का चुनाव करते थे।

4. प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या 30 से 50 तक रखी गई और इनमें गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया।

5. इस एक्ट में भारत सचिव की कार्यकारिणी परिषद, वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद तथा प्रान्तीय कार्यकारिणी में दो-दो भारतीय सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया।

6.केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की गई। सदस्य अब प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते थे, किसी भी विषय पर बहस कर सकते थे किन्तु उस पर मत नहीं दे सकते थे। वे सदन में प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे किन्तु कानून बनाने का उन्हें अधिकार नहीं था। काउंसिल के क्षेत्र में विस्तार के बाद भी वह मुख्य रूप से सरकार की सलाहकार की भूमिका निभा रही थी। वास्तविक शक्ति उसके पास नहीं थी।

2. 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान लिखिये-

8.4.3 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के गुण

इस एक्ट में पहली बार चुनाव की प्रक्रिया लागू की गई और केन्द्रीय विधान परिषद एवं प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या में और उनके अधिकारों में काफ़ी वृद्धि की गई। प्रान्तों में तो गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया। केन्द्रीय विधान परिषद के सदस्यों में देश के प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, दिनशा वाचा, मदन मोहन मालवीय, तेज बहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना, नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर, श्री निवास शास्त्री आदि सम्मिलित थे। भारतीयों को संसदीय प्रणाली का आंशिक अनुभव इस एक्ट ने उपलब्ध कराया था। भारत सचिव, वाइसराय तथा गवर्नरों की कार्यकारिणी में दो-दो भारतीय सदस्यों की नियुक्ति भारत के शासन में भारतीयों की बढ़ती हुई हिस्सेदारी की ओर संकेत करती थी।

8.4.4 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के दोष

पृथक प्रतिनिधित्व से हिन्दू-मुस्लिम सम्बंधों में तनाव बढ़ा और इसने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त की भावना को बढ़ावा दिया। पृथक निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था अन्याय और भेदभाव की नीति पर आधारित थी और समानता की भावना के सर्वथा विरुद्ध थी। इस व्यवस्था से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य में वृद्धि हुई और साम्प्रदायिकता का ज़हर धीरे-धीरे अन्य समुदायों में भी फैलने लगा था। इस एक्ट के तुरन्त बाद हिन्दू साम्प्रदायिक दलों का गठन भी होने लगा था। मुसलमानों के साथ पक्षपात किया गया। प्रान्तीय परिषदों में जनसंख्या में उनके प्रतिशत की तुलना में उनके लिए अधिक स्थान थे। इस एक्ट में मुस्लिम मतदाताओं के लिए और शेष मतदाताओं के लिए योग्यता की शर्तों में भी भेदभाव किया गया था। मुसलमानों में ज़मींदारों, समृद्ध व्यापारियों, स्नातकों तथा वकीलों, डॉक्टरों आदि को मताधिकार प्रदान किया गया था जबकि अन्य को मताधिकार के लिए नगरपलिका या जिला परिषद का सदस्य होना आवश्यक था। इस एक्ट से मुसलमान सन्तुष्ट होने के स्थान पर दिनों-दिन और अधिक अधिकारों तथा सुविधाओं की मांग करने लगे।

मुसलमानों की देखा-देखी अन्य समुदाय भी पृथक प्रतिनिधित्व की मांग करने लगे और धीरे-धीरे सामप्रदायिक प्रतिनिधित्व के दायरे में अन्य समुदाय भी आने लगे। 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में इस व्यवस्था के विस्तार की चर्चा की जाएगी।

यह एक्ट उग्रवादियों की आकांक्षाओं पर खरा उतर ही नहीं सकता था। इसका उद्देश्य मुसलमानों तथा नरमपंथियों को सन्तुष्ट करना था परन्तु इससे नरमपंथी भी सन्तुष्ट नहीं हुए। दिसम्बर, 1909 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं ने इस एक्ट में मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था किए जाने का कड़ा विरोध किया।

1. 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के गुण एवं दोषों पर चर्चा कीजिए-

.....

.....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान।

(ख) 1909 के के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(1) 1861 के एक्ट में वाइसराय की कार्यकारिणी में अतिरिक्त सदस्यों की न्यूनतम संख्या क्या थी?

(2) 1909 के एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कितनी थी?

8.5 1919 का गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट

8.5.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान संवैधानिक सुधार हेतु अनुकूल वातावरण का विकास

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मित्र राज्यों द्वारा यह घोषणा की गई थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग ले रहे हैं। 1916 के होमरूल आन्दोलन में डोमिनियन स्टेटस दिए जाने की मांग की सरकार ने उपेक्षा नहीं की और अगस्त, 1917 में भारत सचिव मॉन्टेग्यू की यह घोषणा हुई -

हिज़ मैजेस्टी की सरकार तथा भारत की सरकार की यह नीति है कि प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को धीरे-धीरे अधिक से अधिक भागीदारी दी जाए और स्वायत्त शासित संस्थाओं का इस प्रकार क्रमिक विकास किया जाए कि ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जाए।

इस घोषणा में भारतीयों की स्वशासन दिए जाने की मांग को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि भारतीयों को स्वशासन कब, कितना और किस प्रकार दिया जाएगा। भारतीयों ने प्रथम विश्वयुद्ध में प्राण-प्रण से अपना सहयोग दिया था। स्वाभाविक था कि इस बिना शर्त सहयोग के पुरस्कार के रूप में सरकार भारतीयों को संवैधानिक सुधार दे और भारतीयों को यही पुरस्कार उसने 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में प्रदान किया।

8.5.2 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का वर्गीकरण किया गया। केन्द्र सरकार को प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, भारतीय रियासतों से सम्बन्ध, मुद्रा, सार्वजनिक ऋण, धार्मिक मामले, रेलवे, फ़ौजदारी एवं दीवानी कानून, भारतीय सर्वेक्षण विभाग, पुरातत्व विभाग, जनगणना, संचार और लोक सेवा आयोग का दायित्व दिया गया। प्रान्तों को स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ऊर्जा, भू-राजस्व, जंगलात, सहकारी समिति, जेल, आबकारी और प्रेस पर नियन्त्रण आदि विषय प्रदान किए गए। इस एक्ट में समवर्ती (कॉनकरेन्ट) विषयों की कोई सूची नहीं थी।

इस एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था, इनमें प्रमुख थे - वित्त, कानून एवं शान्ति व्यवस्था, संचार, पुलिस तथा अकाल सहायता। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर तथा उसकी 4 सदस्यीय कार्यकारी परिषद द्वारा संचालित होना था। आमतौर पर इन 4 कार्यकारी परिषद सदस्यों में से 2 भारतीय हुआ करते थे। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। इन हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, स्थानीय स्वशासन आदि सम्मिलित थे। इन हस्तान्तरित विषयों पर भी गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया था। इन सबके ऊपर केन्द्र सरकार थी जो आवश्यक समझ कर प्रान्तीय सरकारों पर इच्छानुसार अपना निर्णय थोप सकती थी। प्रान्तीय स्तर पर हस्तांतरित विषयों के सन्दर्भ में भारत सचिव के नियन्त्रण को कम किया गया।

प्रान्तीय विधान सभाओं तथा परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। बंगाल में 140, बम्बई में 114, मद्रास में 132 तथा संयुक्त प्रान्त में यह संख्या 123 रखी गई। इनमें सदस्यों को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुना जाना था। मताधिकार के लिए सम्पत्ति और वार्षिक आय की शर्त लगा दी गई। इस एक्ट में ब्रिटिश भारत की लगभग 25 करोड़ आबादी में से लगभग 53 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ जो उसकी वयस्क जन संख्या का लगभग 4 प्रतिशत था। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिए सुरक्षित सीटों पर मताधिकार की शर्तें अपेक्षाकृत आसान थीं ।

केन्द्रीय विधान सभा का विस्तार किया गया परन्तु उसमें उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं की गई।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया और अब सिक्खों, एंग्लो-इण्डियनों तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को भी इसके घेरे में लिया गया।

केन्द्रीय विधान सभा में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। केन्द्र सरकार में पहली बार द्वि-सदनीय व्यवस्था अर्थात् विधान सभा तथा काउंसिल ऑफ स्टेट स्थापित की गई। काउंसिल ऑफ स्टेट के सदस्यों की संख्या 60 रखी गई जिनमें 34 सदस्य निर्वाचित और 26 मनोनीत होने थे। भारतीय शासकों को काउंसिल ऑफ स्टेट में अपने प्रतिनिधि नामांकित करने का अधिकार दिया गया था। काउंसिल ऑफ स्टेट में सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया।

विधानसभा के सदस्यों की संख्या 144 निश्चित की गई जिनमें 104 निर्वाचित तथा शेष सरकारी व गैर सरकारी मनोनीत सदस्य होने थे। निर्वाचित 104 सीटों में 52 सीटें सामान्य वर्ग के लिए, 30 मुसलमानों के लिए, 2 सिखों के

लिए, 9 यूरोयिनों के लिए, 7 ज़मींदारों के लिए और 4 भारतीय व्यापारियों के लिए निर्धारित थीं। विधानसभा में सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष रखा गया।

केन्द्र में कोई विधेयक तभी अधिनियम का रूप ले सकता था जब कि वह दोनों सदनों से पारित हो तथा गवर्नर जनरल द्वारा उसे स्वीकार कर लिया जाए।

केन्द्र सरकार में विधान मण्डल के अधिकार बहुत सीमित रखे गए। केन्द्र में विधान मण्डल को गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद को संचालित अथवा नियन्त्रित करने का कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद की सदस्यों की संख्या 6 रखी गई थी जिसे आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद केन्द्रीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी बल्कि गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव के प्रति जवाबदेह थी।

केन्द्र में दोनों विधान मण्डलों में बजट को प्रस्तुत किए जाने की व्यवस्था की गई परन्तु इन सदनों में केवल सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते थे। गवर्नर जनरल को ही इन पर निर्णय लेने का अधिकार था जिसकी कि शक्ति इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री और संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से भी अधिक थी।

इस एक्ट में लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान रखा गया था।

लन्दन में भारत के हाई कमिश्नर की नियुक्ति का प्रावधान।

इस एक्ट के पारित होने के 10 वर्ष बाद शासन-व्यवस्था की जांच के लिए एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी परन्तु इसके पारित होने के 8 वर्ष बाद ही इस कार्य के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति कर दी गई।

3.1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधानों पर चर्चा कीजिए-

8.5.3 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के गुण

इस एक्ट में पहली बार भारतीयों को उत्तरदायी शासन (प्रान्तों में आंशिक रूप से) का अवसर प्रदान किया गया और 1917 की मॉन्टेग्यू की घोषणा को क्रियान्वित कर भारतीयों की दीर्घ काल से चली आ रही स्वशासन की मांग को (आंशिक रूप से) स्वीकार कर लिया गया। इस एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या में काफ़ी वृद्धि की गई और उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई। इंग्लैण्ड में भारतीय हाई कमिश्नर की नियुक्ति से परतन्त्र भारत की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। इस एक्ट से प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ, पहली बार भारतीयों को शासन करने का अवसर मिला और उन्हें इसका उपयोगी अनुभव प्राप्त हुआ।

8.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष

1919 के एक्ट में भारतीयों को उनकी आशाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए गए थे। डोमिनियन स्टेटस, होम रूल अथवा स्वराज्य की मांग से ये सुधार बहुत कम थे। मॉन्टेग्यू की 1917 की घोषणा के बाद भारतीयों ने इससे कहीं अधिक सुधार की अपेक्षा की थी। द्वैध शासन की संकल्पना और सरंचना दोनों ही दोषपूर्ण थीं। बंगाल में 1765 में क्लाइव ने द्वैध शासन स्थापित किया था और तभी इस प्रणाली की दुर्बलताएं स्पष्ट हो गई थीं। शासकीय कार्य का एक-

दूसरे से स्वतन्त्र दो इकाइयों में विभाजन नितान्त अव्यावहारिक था। सुरक्षित और हस्तान्तरित विषयों का विभाजन भी दोषपूर्ण था। इन विषयों को भी एक-दूसरे से पूरी तरह अलग करके दो स्वतन्त्र इकाइयों को नहीं सौंपा जा सकता था। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से आए हुए मन्त्री अपने क्षेत्र की जनता के प्रति जवाबदेह थे इसलिए उनके लिए जनता के हित सर्वोपरि थे जबकि गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और नौकरशाही की निष्ठा ब्रिटिश ताज तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति थी और उनके लिए साम्राज्यवादी हित ही सर्वोपरि थे इसलिए मन्त्रियों का गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा इण्डियन सिविल सर्विस अथवा इण्डियन पुलिस के अधिकारियों से तालमेल बैठ पाना असम्भव था। मन्त्री अपने ही विभाग के उच्च अधिकारियों पर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। अपनी जनता और विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ मन्त्री गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन भी थे और वही उनको नियुक्त अथवा अपदस्थ करने का अधिकार भी रखता था।

सुरक्षित विषयों का वित्तीय आधार सुदृढ़ था जब कि हस्तान्तरित विषयों को वित्तीय आवंटन में प्रायः उपेक्षा का सामना करना पड़ता था।

प्रान्तीय विधान परिषदों में मतदाताओं की संख्या लगभग 53 लाख थी किन्तु केन्द्रीय विधान परिषद के लिए मतदाताओं की संख्या मात्र 5 लाख थी।

भारत में राजनीतिक दलों को संसदीय प्रणाली का विशेष अनुभव नहीं था और न ही सरकार चलाने के लिए ये दल आपसी तालमेल बिठाने में सक्षम थे। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों के कार्यों और उनकी नीतियों पर साम्प्रदायिकता और स्थानीयता की भावना इतनी हावी रहती थी कि वह आपस में तालमेल बिठाकर जनता को हित को सर्वोपरि रखकर कार्य नहीं कर पाते थे। हस्तान्तरित विषय सुरक्षित विषयों की तुलना में कम महत्वपूर्ण थे। उनका संचालन करने के बाद भी मन्त्रीगण भारत के संवैधानिक विकास में अपना कोई योगदान नहीं दे सकते थे। हसन इमाम की अध्यक्षता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में इस एक्ट को कांग्रेस ने खारिज कर दिया और असहयोग आंदोलन में स्वराज्य प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कांग्रेस का चुनाव के बहिष्कार का निर्णय स्वीकार नहीं किया। उन्होंने 'इण्डियन लिबरल फ़ेडरेशन' का गठन किया और 1920 के चुनाव में भाग लिया और उसमें चुने जाने के बाद वह बंगाल में मन्त्री भी बने। प्रान्तों में द्वैध शासन लगभग डेड़ दशक तक चला। भारतीयों को शासन संचालन का आंशिक दायित्व दिए जाने का यह अव्यावहारिक एवं आधा-अधूरा प्रयोग पूरी तरह से असफल और निष्फल रहा।

8.6 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट

8.6.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट से लेकर 1933 के व्हाइट पेपर के प्रकाशन

प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था जो कि 1919 के एक्ट के बाद 1920 में लागू की गई थी, वह पूर्णतया असफल सिद्ध हुई थी। भारतीयों में असन्तोष एवं आक्रोश बढ़ता जा रहा था और इसकी परिणति समाजवादी, समाम्यवादी एवं क्रान्तिकारी विचारधारा के विकास में परिलक्षित हो रही थी। कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस जैसे युवा पूर्ण स्वराज की मांग कर रहे थे और चन्द्रशेखर आज़ाद व भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी

समाजवादी लोकतान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाना चाहते थे। इस अशान्तिपूर्ण वातावरण में सरकार ने स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन 1929 के स्थान पर 1927 में ही ब्रिटिश सांसद जॉन साइमन के नेतृत्व में 7 यूरोपियन सांसदों के दल, साइमन कमीशन के रूप में कर दिया। समस्त श्वेत सांसदों के इस कमीशन का सभी भारतीय राजनीतिक दलों ने विरोध किया और कांग्रस ने 1928 में संवैधानिक सुधार की योजना 'नेहरू रिपोर्ट' के रूप में प्रस्तुत की जिसमें भारत को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने का प्रावधान था। सरकार ने इस रिपोर्ट की अवज्ञा की जिसके जवाब में 1929 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया। 1930 में गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा नमक सत्याग्रह के रूप में पूर्ण स्वराज्य के लिए व्यापक आन्दोलन हुआ जो कि मार्च, 1931 के गांधी-इर्विन समझौते के बाद स्थगित हुआ। अब गांधीजी 1931 की दूसरी गोल मेज़ सभा में भाग लेने के लिए लन्दन गए।

जून, 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बंटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी।

1930, 1931 तथा 1932 की तीन गोल मेज़ सभाओं के बाद मार्च, 1933 में भारत के नए संविधान पर एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया और इसे संयुक्त संसदीय समिति के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। 2 अगस्त, 1935 को एक विधेयक पारित किया गया जिसके पश्चात 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट अस्तित्व में आया।

2.6.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान

संयुक्त संसदीय समिति ने 1933 के व्हाइट पेपर पर विचार विमर्श करने के बाद 22 नवम्बर, 1934 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। 2 अगस्त, 1935 को एक विधेयक पारित किया गया जिसके पश्चात 1935 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट अस्तित्व में आया। इस एक्ट में केन्द्र में संघीय शासन स्थापित किया गया और प्रान्तों मंे नई शासन प्रणाली के अन्तर्गत भारतीयों को अपनी सरकार चलाने का अवसर दिया गया जिसे प्रान्तीय स्वायत्ता के नाम से जाना जाता है।

इस एक्ट में बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया और अदन को भी ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य से अलग कर उसे पृथक उपनिवेश बना दिया गया।

बम्बई प्रान्त में से सिंध को अलग कर उसे एक पृथक प्रान्त बनाया गया और इसी प्रकार उड़ीसा को बिहार से अलग कर एक पृथक प्रान्त बनाया गया। इस प्रकार भारत में इन दो नवगठित प्रान्तों को मिलाकर कुल 11 प्रान्त हो गए।

संघ में ब्रिटिश भारत के प्रान्त तथा भारतीय रजवाड़ों के शासकों को अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने का अधिकार था जबकि ब्रिटिश राज्यों से सदस्य चुन कर भेजे जाने थे।

केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई अर्थात् आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान रखा गया। गवर्नर जनरल को रक्षा, विदेश, संचार और धार्मिक मामलों के शासन का दायित्व दिया गया था। शेष विषयों का

दायित्व केन्द्रीय विधान परिषद के चुने हुए सदस्यों में से गठित मन्त्रिमण्डल को दिया जाना था। यह संघीय व्यवस्था इंग्लैण्ड की कन्ज़रवेटिव पार्टी की नीतियों के अनुरूप बनाई गई थी।

केन्द्रीय विधान परिषद के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई। भारतीय शासकों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया और उन्हें अपने राज्य में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य नहीं किया गया।

विदेश विभाग के अन्तर्गत ब्रिटिश जहाज कम्पनियों के हितों की रक्षा का प्रावधान रखा गया। रिज़र्व बैंक, मुद्रा, भारतीय ऋण, रेलवे बोर्ड, ब्रिटिश भारतीय सेना आदि पर केन्द्रीय विधान परिषद का कोई अधिकार नहीं रखा गया। गवर्नर जनरल की सम्मति के बिना कोई वित्तीय बिल केन्द्रीय विधान परिषद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। 80 प्रतिशत बजट पर केन्द्रीय विधान परिषद को कोई अधिकार नहीं मिला। इस एक्ट ने अगली पीढ़ी तक भारतीय सेना, भारतीय वित्त, विदेश सम्बन्ध पर ब्रिटिश नियन्त्रण स्थापित कर दिया।

गवर्नर जनरल को भारत सचिव की निगरानी में अत्यधिक सर्टिफ़ाइंग शक्तियां दी गई।

मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए जिन्ना की 14 सूत्री मांगों में से अधिकांश को स्वीकार कर लिया गया।

इस एक्ट में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा पृथक निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था को और सीटों के आवंटन की व्यवस्था को पूर्ववत बनाए रखा गया।

एक संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान रखा गया।

संघीय व्यवस्था तभी लागू हो सकती थी जब कि आधे से अधिक रियासतें उसमें शामिल होना स्वीकार करतीं। अधिकांश भारतीय रियासतों ने संघ में शामिल होने से इंकार कर दिया इस कारण संघीय व्यवस्था लागू नहीं हो सकी।

प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था जो कि 1919 के एक्ट के बाद 1922 में लागू की गई थी, और जो पूर्णतया असफल सिद्ध हुई थी, उसे समाप्त कर दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्तता इस एक्ट की प्रमुख विशेषता थी। 1935 के एक्ट में उसे समाप्त कर दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्तता साइमन कमीशन की संस्तुति पर स्थापित की गई थी। इस एक्ट के द्वारा प्रान्तों को स्वतन्त्र वैधानिक इकाइयों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। कुछ विषयों को छोड़कर शेष सभी में, प्रान्तों को, केन्द्र सरकार से नियन्त्रण से मुक्त रखा गया।

11 प्रान्तों में से 6 प्रान्त - बंगाल, बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार और आसाम में द्वि-सदनीय व्यवस्था की गई।

इस एक्ट में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था को तो लागू नहीं किया गया किन्तु मताधिकार की न्यूनतम योग्यताओं को शिथिल किया गया। इसके फलस्वरूप प्रान्तीय विधान परिषदों के लिए मतदाताओं की कुल संख्या जो 1919 के एक्ट के अन्तर्गत मात्र 53 लाख थी, अब वह बढ़कर 3.5 करोड़ हो गई।

प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था को ध्यान में रखकर गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को संवेदनशील विषयों के लिए विशेष अधिकार प्रदान किए गए। गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को न्याय-व्यवस्था, भारतीय रियासतों, अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों तथा ब्रिटिश व्यापारिक एवं औद्योगिक हितों की रक्षार्थ विशेषाधिकार प्रदान किए गए जिनका प्रयोग उसे अपने विवेक के आधार पर करना था परन्तु ऐसा करते समय उसके लिए गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त करना आवश्यक था।

इस एक्ट के आधार पर 1937 में आम चुनाव हुए और उसके बाद 11 प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ।

2. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान क्या थे? लिखिये-

.....

.....

8.6.3 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण

इस एक्ट ने पहली बार भारतीयों की पूर्ण स्वराज को प्रान्तीय स्तर पर स्वीकार कर प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की थी जो कि पिछले सभी एक्ट्स की तुलना में बहुत बड़ा और व्यापक सुधार था। इस एक्ट के आधार पर प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ जिन्होंने जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी नीतियों के संचालन का प्रयास किया और ऐसे अनेक सुधार किए जिनकी कल्पना भी ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं की जा सकती थी।

लोकप्रिय सरकारों ने अनेक राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया।

इस एक्ट में मताधिकार की शर्तों को शिथिल कर लगभग 20 प्रतिशत वयस्कों को प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए मताधिकार प्रदान कर दिया गया था।

8.6.4 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के दोष

संघीय द्वैध शासन की व्यवस्था में गवर्नर जनरल को रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया, रेलवे बोर्ड, भारतीय ऋण, ब्रिटिश भारतीय सेना, प्रतिरक्षा, विदेशी मामले आदि पर समस्त निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया गया और 80 प्रतिशत वित्तीय मामलों पर मतदान किया ही नहीं जा सकता था। यह व्यवस्था एक ऐसी गाड़ी थी जिसका इंजिन कमज़ोर परन्तु ब्रेक्स बहुत शक्तिशाली थे। यह व्यवस्था उत्तरदायी शासन का उपहास थी, इसीलिए भारतीय राजनीतिक दलों ने इसे खारिज कर दिया। भारतीय रियासतों ने इसे इसलिए खारिज किया क्योंकि संघ में शामिल होने के बाद उन्हें अपने-अपने राज्यों में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। भारतीय रियासतों के बहुमत द्वारा स्वीकृति के बाद ही इस संघीय व्यवस्था को लागू करने की शर्त भी अंग्रेज़ों की एक चाल थी। भूला भाई देसाई ने संघीय व्यवस्था की आलोचना की, विशेषकर वाणिज्य के क्षेत्र में गवर्नर जनरल के पास अपरिमित शक्तियांे की व्यवस्था उन्हें लोकतान्त्रिक प्रणाली के विरुद्ध लग रही थी।

प्रान्तीय स्वायत्तता में भी गवर्नर को अपरिमित शक्तियां प्रदान की गईं। 1939 में जब कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों ने भारत को विश्वयुद्ध में भारतीयों से परामर्श किए बगैर शामिल किए जाने के विरोध में त्यागपत्र दिए तो उसके बाद से द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक गवर्नरों ने उन प्रान्तों में निर्बाध शासन किया और इस प्रकार प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान किए जाने के पीछे भी ब्रिटिश सदाशयता पर सन्देह किया जा सकता है। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस एक्ट में भी भारतीयों की आकांक्षाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए और भारतीयों को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए आवश्यकता से अधिक सावधानियां बरती गईं। यह एक्ट सुधार कम और सुधार का नाटक अधिक था।

3. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के गुण एवं दोषों पर चर्चा करें-

.....

.....स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) प्रान्तों में द्वैध शासन की कार्य प्रणाली।

(ख) 1935 के एक्ट में संघीय शासन की व्यवस्था के दोष।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(1) किस वरिष्ठ नेता ने कांग्रेस छोड़कर नए राजनीतिक दल की स्थापना कर 1920 के चुनाव में भाग लिया था?

(2) क्या भारतीय रियासतों ने संघीय शासन की व्यवस्था को स्वीकार किया था?

8.7 सार संक्षेप

1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभागीय प्रणाली का, अर्थात् कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ किया गया। वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद तथा प्रान्तीय परिषदों का विस्तार किया गया।

1909 के इण्डियन काउंसिल एक्ट में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में चुनाव की व्यवस्था लागू की गई किन्तु इसमें मात्र 3 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हो सका। मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या और उनके अधिकारों में वृद्धि की गई। पृथक प्रतिनिधित्व से हिंदू-मुस्लिम सम्बंधों में तनाव बढ़ा और इसने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त की भावना को बढ़ावा दिया।

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। प्रान्तीय विधान सभाओं तथा परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। इस एक्ट में ब्रिटिश भारत में लगभग 53 लाख लोगों को मताधिकार प्राप्त हुआ। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया। केन्द्र सरकार में पहली बार द्वि-सदनीय व्यवस्था स्थापित की गई। केन्द्र सरकार में विधान मण्डल के अधिकार बहुत सीमित रखे गए। प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था नितान्त दोषपूर्ण थी। इस एक्ट को कांग्रेस ने खारिज कर दिया और असहयोग आंदोलन में स्वराज्य प्राप्ति को लक्ष्य बनाया गया।

1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में केन्द्र में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत द्वैध शासन स्थापित किया गया और प्रान्तों में प्रान्तीय स्वायत्ता स्थापित की गई। केन्द्रीय विधान परिषद के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई। भारतीय शासकों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया और उन्हें अपने राज्य में लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू करने के लिए बाध्य नहीं किया गया। भारतीय शासकों द्वारा संघीय व्यवस्था अस्वीकार करने के कारण इसे लागू नहीं किया गया।

प्रान्तीय स्वायत्तता इस एक्ट की प्रमुख विशेषता थी। इस एक्ट में मताधिकार की न्यूनतम योग्यताओं को शिथिल किया गया। इस एक्ट के आधार पर 1937 में आम चुनाव हुए। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस एक्ट में भारतीयों की आकांक्षाओं की तुलना में बहुत कम सुधार दिए।

8.8 पारिभाषिक शब्दावली

सेफ़्टी वॉल्वः जनता के असन्तोष को विद्रोह के रूप में विकसित होने से पहले ही उसका निदान।

कैबिनेट सिस्टमः मन्त्रिमण्डल प्रणाली।

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्टः स्वशासित स्थानीय निकाय, जैसे जिला परिषद और नगरपालिका।

अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणालीः एक निर्वाचक मण्डल द्वारा प्रतिनिधियों का चुनाव करने की व्यवस्था।

काउंसिल ऑफ़ स्टेटः उच्च सदन।

कन्ज़र्वेटिव पार्टीः अनुदारवादी दल

8.9 सन्दर्भ ग्रंथ

फिलिप्स, सी0 एच0 (सम्पादक) - दि इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान 1858 टु 1947, सेलेक्ट डॉक्यूमेन्ट्स, ऑक्सफ़ोर्ड, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, बम्बई, 1969

काश्यप, सुभाष - भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, दिल्ली, 1997

बैनर्जी ए0 सी0 (सम्पादक) - इण्डियन कॉन्सटीट्यूशनल डॉक्यूमेन्ट्स (भाग,1,2,3,4), कलकत्ता, 1961

8.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 2.3.2 1861 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के मुख्य प्रावधान।

(ख) देखिए 2.3.2 1909 के मॉर्ले-मिन्टो सुधार के मुख्य प्रावधान।

2.(1) 6 सदस्य।

(2) 27 निर्वाचित सदस्य।

1. (क) देखिए 2.5.4 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के दोष।

(ख) देखिए 2.5.2 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के मुख्य प्रावधान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(1) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी।

(2) नहीं।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के गुण-दोषों की समीक्षा कीजिए।

2. 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट के अन्तर्गत सीमित मताधिकार की व्यवस्था का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

3. 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की प्रान्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत हस्तान्तरित विषयों का वर्णन कीजिए।

4. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत संघीय शासन में भारतीय रियासतों के शासकों के लिए क्या व्यवस्था की गई थी?

5. 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता को लागू किया जाना क्या भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की एक महान उपलब्धि माना जा सकता है?

इकाई नौ : भारतीय संविधान का स्वरुप

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 संविधान की प्रस्तावना

9.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

9.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

9.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

9.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

9.4.4 पंथ निरपेक्ष

9.4.5 समाजवादी राज्य -

9.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

9.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

9.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

9.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

9.6 लोक कल्याणकारी राज्य

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निमार्ण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि

- भारतीय संविधान इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे |
- भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
- भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये गये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
- आप जान सकेगें कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

9.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को

बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

> " हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
> सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
> विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
> प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
> उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
> सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए
> दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

4.गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।

5.न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।

6.एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

9.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

4.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ..... । '

4.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्क्तभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

द. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

9.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

9.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

9.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्राव धान नहीं किया था इसका प्रावधान 42 वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है |इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।-

9.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

9.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन् का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

द. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

9.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉं के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

9.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियॉ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियॉ
2 .ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
. .4.आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
. .5.कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन ,का केंद्र के पास होना अवशिष्ट शक्तियों
. .6.आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची

..7.दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
. .8पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

9.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रुप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य/असत्य

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य/असत्य

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्य/असत्य

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है । सत्य/असत्य

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है । सत्य/असत्य

9.7 सारांश

इकाई 4 के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है| जिसमें जिसमे विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए | जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण,

उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ | इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए | जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है |इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई | 9

9.8 शब्दावली

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।
धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।
समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।
संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई दस: स्थानीय शासन- परिचय, भूमिका, महत्व

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

10.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषा

10.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

10.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

- **10.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध**
- **10.5.2केन्द्रीय शासन का भार कम होना**
- **10.5.3सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना**
- **10.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना**
- **10.6.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता**
- **10.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास**
- **10.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन**
- **10.5.8 नीति निर्माण में सहायक**

10.5 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग में स्थानीय शासन व्यवस्था, लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित राजनीतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित है। लोकतंत्र की मूल मान्यता सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना है और इसका आशय होता है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी को शासन कार्यों में अभीष्ट स्थान देना। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस भावना को मूर्त रूप देने में स्थानीय शासन व्यवस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेष तौर पर तब जबकि इन संस्थाओं में प्रबन्ध न कार्य स्वयं नागरिकों की सहभागिता से होता है। इन संस्थाओं को जहाँ लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है वहीं जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढाती है। भारत जैसे देश में जहाँ दो-तिहाई से भी अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो, वहाँ स्थानीय शासन की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत का विस्तृत भू-भाग, कल्याणकारी सरकार के विस्तृत कार्य एवं दायित्व, स्थानीय समस्याओं का दिन-प्रतिदिन व्यापक होना आदि चुनौतियों के समाधान के लिए स्थानीय शासन ही कारगर हथियार है। डी0 टाकविले के अनुसार, ''स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएं होती हैं। एक राष्ट्र स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है किंतु स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नहीं हो सकती है।'' स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक महत्त्व को देखते हुए भारतीय संविधान में 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन करते हुए संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया, और 14 अप्रैल 1993 से स्थानीय शासन (पंचायती एवं नगरीय) में विभक्त कर लागू कर दिया है। यह भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के पश्चात तीसरे स्तर की सरकार बन गयी।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्ता को सैद्धान्तिक स्तर पर भी महसूस किया जाना अपेक्षित है; जबकि व्यवहार में ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें स्थानीय स्वशासन के सभी सदस्यों में सहभागितापूर्ण लोकतंत्र फल-फूल सके। विश्व का लोकमत इस दृष्टिकोण का कायल हो रहा है कि स्थानीय स्वशासन राष्ट्रीय विकास और लोगों की प्रभावकारी सहभागिता के लिए अत्यावश्यक है और समस्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अखण्ड एवं अपरिहार्य अंग इतना ज्यादा कि 08 अक्टूबर 1985 को यूरोपीय परिषद के 11 सदस्यों ने स्थानीय स्वशासन के यूरोपीय घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में परम्परा के द्वारा स्थानीय सरकारों पर सरकार के कतिपय बुनियादी कार्यों का दायित्व निर्भर है।

हमारे देश का स्थानीय स्वशासन दो स्तरों- नगरीय एवं ग्रामीण में विभक्त है नगरीय क्षेत्र में स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत संचालित इकाइयां नगर निगम, नगर पालिकाएं, अधिसूचित क्षेत्र समितियां, छावनी बोर्ड संस्था है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायतीराज व्वस्था के त्रिस्तरीय रचना- जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं ग्राम पंचायत को अपनाया गया। स्थानीय शासन को विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से संबोधित किया जाता है। इंगलैण्ड में इन्हें स्थानीय सरकारें कहा जाता है। फ्रान्स में स्थानीय प्रशासन (प्रीफेक्ट व्यवस्था) तथा अमेरिका में नगर पालिका शासन कहते हैं। सोवियत रूस में इसे म्युनिसिपल सोवियतन कहा गया है। किन्तु भारत में इसे 'स्थानीय स्वशासन' से पुकारा जाता है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में स्थानीय शासन को समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा में स्थानीय शासन के महत्व को जान पायेंगे।
- स्थानीय शासन के माध्यम से राजनीतिक विकास में जनसहभागिता एवं नियंत्रण को समझ पायेंगे।

10.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। स्थानीय स्वशासन वर्तमान की भाँति नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में विभक्त थी विशेष रूप से ग्राम पंचायतों का अस्तित्व अति प्राचीन है। 'पंचायत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' से हुई है जिसका आशय पाँच व्यक्तियों के समूह से है। वैदिक सभ्यता के साहित्य में सभा एवं समितियों का वर्णन मिलता है जो प्रजा की भलाई के लिए राजा को सलाह देती थी। जिससे अतिशासन पर नियंत्रण सम्भव होता था।

रामायण महाभारत काल के साहित्य में सभाओं, समितियों तथा गाँवों का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के गांवों का वर्णन है- घोश एवं ग्राम। मनुस्मृति के अनुसार गाँव का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था उसका कार्य 'कर' संचित करना था। दस गाँव के अधिकारी को 'दशिक', 20 गाँव के अधिकारी को 'विधाधिप' सौ गाँवों पर शतपाल और एक हजार गाँव के अधिकारी को सहस्रपति कहते थे। मौर्य काल के विदेशी यात्री मेगस्थनीज द्वारा भी स्थानीय शासन में नगरों एवं ग्राम आत्मनिर्भर छोटे गणतंत्रों के रूप में बताया गया। अर्थशास्त्र में कोटिल्य द्वारा स्थानीय स्वशासन पर काफी विस्तार से बताया गया और मौर्य शासकों के काल में इसका स्वरूप काफी विकसित था। गुप्त काल में गाँव के लिए ग्राम समितियों का विकास हो चुका था प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रान्तों को नगर एवं ग्राम में विभक्त किया गया था। नगर का अधिकारी 'नगरपति' एवं ग्राम का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। राजपूत कालीन युग में भी प्रशासन की मूल इकाई ग्राम ही थी जिसका शासन प्रबन्ध सभा एवं समितियों द्वारा होता था नगरीय शासन प्रबन्ध 'पहनाधिकारी' द्वारा होता था।

सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक शासन रहा, जहाँ निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारीता द्वारा स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को कमतर कर दिया गया। सत्ता के केन्द्रीयकरण ने स्थानीय स्वायत्ता को प्रायः समाप्त ही कर दिया था। मुस्लिम शासनकाल में स्थानीय संस्थाओं के प्रति उपेक्षा देखने को मिलती है इस काल में स्थानीय संस्थाओं और स्वशासन का स्वरूप वह नहीं रहा था जो प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है, विशेष रूप से जमींदारी प्रथा के आरम्भ होने के पश्चात। सत्ता के प्रति यह दृष्टिकोण आगे मुगलकाल में भी जारी रहा और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा के महत्त्व पर कम ध्यान दिया गया। किन्तु स्थानीय प्रशासन पर 'आईन-ए-अकबरी' में नगर प्रशासन की जिम्मेदारी जिस अधिकारी पर थी वह 'कोतवाल' कहलाता था।

ब्रिटिश के प्रशासन में स्थानीय शासन के विषय में पर्याप्त विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि भारत में स्थानीय स्वशासन प्राचीन काल से ही मौजूद रहा किन्तु इसका वर्तमान स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली और विकास ब्रिटिश राज की ही देन है।

स्थानीय स्वशासन में शासक वर्ग का निर्वाचन जो प्रतिनिधियात्मक व उत्तरदायित्व की ओर संकेत करता है, का विकास ब्रिटिश शासन में आरम्भ हुआ।

ब्रिटिश काल में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अपेक्षा नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था इसका आरम्भ 1687 मद्रास नगर निगम की स्थापना से माना जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश काल में विकसित हुआ भारत का स्थानीय शासन लगभग 330 वर्ष पुराना है।

आजादी के पश्चात भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों, परम्पराओं एवं विरासतों को प्रजातांत्रिक संवैधानिक व्यवस्थाओं के साथ स्वभाविक रूप से अपनाया गया और हमारे नीति निर्माताओं द्वारा स्थानीय शासन के महत्त्व को समझते हुए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वायत्ता प्रदान की गयी। निर्वाचक गणों के प्रति उत्तरदायी पूर्ण शासन को बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन को विकसित करने का पुनित कार्य न केवल राज्य को सौंपा गया बल्कि नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पंचायतों एवं नगरीय शासन को 1992 में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन कर संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। तब से भारतीय स्थानीय स्वशासन हमारी संघात्मक संरचना में शासन के तीसरे सोपान (केन्द्र, राज्य, स्थानीय) के रूप में एक मजबूत कडी का काम कर रहा है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से भारतीय संघात्मक शासन व्यवस्था ग्राम पंचायतों एवं नगरीय प्रशासन में आत्मनिर्णय उत्तरदायित्व एवं जनसहभागिता द्वारा विकास को पुख्ता किया जा रहा है।

10.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है नागरिकों का अपने ऊपर स्वयं का शासन अर्थात लोगों की अपनी शासन व्यवस्था। प्राचीन काल में स्थानीय स्वशासन विद्यमान था तथा ग्रामीण शासन प्रबन्ध न के लिए लोगों के अपने, कायदे कानून होते थे। इन नियमों के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वैच्छिक भूमिका निभाता था। क्योंकि इससे शान्ति व्यवस्था बनाने में, सहभागितापूर्ण कार्यों में, समस्याओं के समाधान की क्षमता में विशेष योग्यता प्राप्त होती थी ताकि सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

स्थानीय स्वशासन को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाऐं निम्न प्रकार हैं-

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, ‘‘पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबंधित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने वाली सत्ता ही स्थानीय शासन है।’’

एल0 गोल्डिंग के कथनानुसार ‘‘स्थानीय सरकार को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है किन्तु सम्भवतः इसकी सबसे सरल परिभाषा यही है कि यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबन्ध है।’’

हरमन फाइनर कहते हैं कि ''जिस श्रेणी संघवाद तथा समानुपातिक प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं, उसी में स्थानीय स्वायत्त शासन की गिनती है। ये सब व्यवस्थाएं समूह के अत्याचारों समतलन मानकीकरण तथा व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के प्रति परम्परागत घृणा से बचाव का साधन है।''

डब्ल्यू0 ए0 राब्सन के शब्दों में, ''सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है जो बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके, साथ ही यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में हिस्सा हो। स्थानीय शासन के ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस विषय में न्यूनाधिक अन्तर हो सकता है।''

वी0 वी0 राव के अनुसार, ''स्थानीय शासन सरकार का वह भाग है जो स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करता है, जो सत्ताधारी राज्य सरकार के अधीन प्रशासन चलाते हैं परन्तु उनका निर्वाचन राज्य सरकार के स्वतंत्र एवं सक्षम निवासियों द्वारा किया जाता है।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्थानीय लोगों द्वारा मिल-जुल कर अपनी समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानूनों के अनुरूप हो। स्थानीय शासन से हमारा अभिप्राय यह है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाए। यदि स्थानीय क्षेत्र का प्रशासन केन्द्र या राज्य सरकारों के अधिकारियों द्वारा चलाया जाए तो वह स्थानीय प्रशासन होगा न कि स्थानीय स्वशासन। स्थानीय स्तर की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान करने के लिए प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं स्थापित की जाती हैं। ये संस्थाएं ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ मूल्य एवं मान्यताएं होती हैं। इन्हीं मूल्य एवं मान्यताओं से राष्ट्र की सामाजिक राजनीतिक संस्थाएं उनकी कार्यप्रणाली तथा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निर्धारित होता है। इस तरह की संस्थाएं लचीली होती हैं। अतः ये समाज के बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालने का प्रयास करती हैं।

10.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

समकालीन परिदृश्य में जन आकांक्षाओं की उभरती हुई प्रवृत्तियों तथा लोककल्याणकारी राज्यों की मान्यता के फलस्वरूप राज्यों के कार्यों में उल्लेखनीय रूप से विस्तार हुआ है। केवल केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार ही इन कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकती। इसी कारण लोकतांत्रिक देशों में राष्ट्रीय एवं प्रांतीय सरकारें अपने कार्यों को गति देने की दृष्टि से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को पर्याप्त उत्तरदायित्व देती है। स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए हैराल्ड जे लास्की ने कहा है, ''हम लोकतंत्रीय शासन से पूरा लाभ उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह न मान लें कि सभी समस्याएं केन्द्रीय समस्याएं नहीं हैं और उन समस्याओं को उन्हीं लोगों द्वारा हल किया जाना चाहिए जो उन समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।''

जब कोई जन समूह किसी स्थान विशेष पर मिल-जुल कर सामुदायिक जीवन का आरम्भ करता है तो पारस्परिक सम्बन्धों के निरूपण से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध नागरिक जीवन की सुविधाओं की व्यवस्था से होता है जैसे बिजली, पानी, सडक, संचार, स्वास्थ, आवास और स्वच्छता आदि। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन की आवश्यकताओं की न्यूनतम अवधारणा भी बदलने लगी है। स्थानीय शासन को जो कार्य करने चाहिए इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। उपलब्ध सुविधाओं का परिवर्धन एवं नई सुविधायें जुटाना तथा भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार कर, मानवीय जीवन के शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उत्तरदायित्व है।

जहाँ एक ओर मनुष्य के जीवन को बेहतर से बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उद्देश्य है वहीं प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूक कर समाज को शासन व्यवस्थाओं के साथ सामंजस्य बिठाकर सतत विकास के पथ पर अग्रसर करना भी है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में स्थानीय स्वशासन संघवाद और सत्ता के विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में तीन स्तर के शासन में बुनियाद का कार्य करता है। वस्तुतः आजकल लोगों के दैनिक जीवन में स्थानीय शासन की भूमिका प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन से भी अधिक हो गयी है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि स्थानीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से इसका महत्व और अधिक बढता ही जायेगा। जैसे-जैसे लोग राजनीतिक दृष्टि से जागरूक होते जाऐंगे, राजनीतिक संस्कृति मजबूत होगी और उत्तरदायित्व और सहअस्तित्व पर आधारित शासन व्यवस्था का यह स्तर, नागरिक सहभागिता को और मजबूत करेगा और भविष्य की नागरिक सेवाओं के निष्पादन में मील का पत्थर भी साबित होगा।

10.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

स्थानीय शासन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

10.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध

यदि स्थानीय संस्थाएं न हों तो स्थानीय विषयों का प्रबन्धन भी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा किया जायेगा जिससे उनके पास कार्यों की अधिकता होगी। स्थानीय स्वशासन के कारण नागरिकों के धरातलीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन स्थानीय संस्थाएं कुशलतापूर्वक करती है इससे न केवल समस्याओं का त्वरित निदान होता है बल्कि संस्थाओं व नागरिकों के मध्य सीधा व सहभागी सम्बन्ध स्थापित होता है जो कुशल प्रबन्धन का द्योतक है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को न समझ सकें और स्थानीय समस्याओं का हल ढूँढ निकालना उनके लिए सम्भव न हो। दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने में उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इन कार्यों को स्थानीय शासन आसानी से कुशलतापूर्वक कर सकता है।

10.5.2 केन्द्रीय शासन का भार कम होना

जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने केन्द्र सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। ऐसे में अगर स्थानीय विषयों को भी केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पन्न करने से उसके कार्य भार में अत्याधिक वृद्धि से असंतुलन बढेगा और केन्द्र सरकार अपने कार्य भी सही प्रकार से नहीं कर सकेगी। स्थानीय संस्थाएं केन्द्रीय सरकार के कार्य भार को

कम करने में मदद करती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का कुछ बोझ अपने ऊपर ले लेता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासन को सौंप देता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारों को बहुत से कार्यों या जिम्मेदारियों से मुक्त कर देता है।

10.5.3 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना

प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सामान्य नागरिकों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कितनी रूचि ली जाती है। यह रूचि संस्थाओं द्वारा एवं स्वयं नागरिकों द्वारा उत्पन्न होनी चाहिए। इससे विश्वास और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है और जनसाधारण बढ़-चढ़ कर भागीदार बनते हैं। सार्वजनिक जीवन के प्रति जागरूकता बढ़ना स्थानीय शासन की संस्थाओं का दायित्व है। स्थानीय शासन जनता के सबसे निकट होता है इसलिए लोग यह भी मानते हैं कि वे इन संस्थाओं पर अच्छे कामकाज के लिए अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। नागरिकों की भावना और क्रियाशीलता समस्त जन समुदाय में जागरूकता का संचार करती है।

10.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना

स्थानीय शासन एक ओर जहाँ राजनीतिक शिक्षण का माध्यम बनना है, वहीं स्थानीयता से राष्ट्रीयता तक एकता की भावना का संचार करता है। प्रजातांत्रिक स्वरूप में नागरिक स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के भाव को प्राप्त ही नहीं करते, बल्कि उसकी रक्षा हेतु एकता के सूत्र में बंध कर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान भी बनते हैं। जनता राजनीतिक तौर पर सजग रहती है और करों के औचित्य, चुनाव के तरीके और शासन के कार्यों को समझ सकती है कि शासन अपने कार्यों अर्थात कर्तव्यों को पूरा कर रही है या नहीं। नागरिक सार्वजनिक मामलों से परिचित हो जाता है। स्थानीय संस्थाएं नागरिकों को राज्य और देश की राजनीति में भाग लेने योग्य बनाती है।

10.5.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता

स्थानीय शासन का एक बड़ा लाभ यह होता है कि राज कर्मचारियों की शक्ति को बढने से रोका जा सकता है। एक ओर तो नौकरशाही को यह बताया जाता है कि वे लोकसेवक हैं दूसरे जनता द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई प्रकार के नियंत्रणों से शक्ति और विवके के फैलाव पर रोक लगती है, जिससे क्षेत्राधिकार की सीमाओं में मितव्ययिता के साथ नौकरशाही, लोकसेवकों के रूप में कार्य करती है।

10.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास

स्थानीय स्वशासन के माध्यम से जनता शासकीय कार्यों में सक्रिय एवं सकारात्मक सहयोग प्रदान करती है। ब्राइस ने इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''स्थानीय संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं, वरन् इसके साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। सहयोग की सकारात्मक सोच नागरिकों को सामान्य समस्याओं के प्रति रूचिवान बनाती है। योग्यता एवं ईमानदारी से कर्त्तव्य पालन की भावना अच्छे नागरिकों का निर्माण इसी स्वशासन में ही सम्भव होता है।''

इस प्रकार स्थानीय शासन आधुनिक राज्यों के लिए न केवल आवश्यक बन गई है, बल्कि ये प्रजातंत्र की आधारशिला हो गई है। स्थानीय संस्थाएं स्थानीय उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में अहम

भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय समाज संवैधानिक सरकार के संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रजातंत्र को अपने घर से आरम्भ होना चाहिए और इसके लिए स्थानीय सरकार सबसे उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार वास्तविक प्रजातंत्र के लिए स्थानीय संस्थाएं अति आवश्यक है।

10.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन

स्थानीय शासन जनता को सुविधाएं पहुँचाने का एक साधन है। स्थानीय शासन सफाई, सडकों, स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि की समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाता है। जनता के लिए भी यह अधिक सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि द्वारा हल न करके स्थानीय शासन द्वारा हल की जाए।

10.5.8 नीति निर्माण में सहायक

स्थानीय सरकार राज्य सरकारों को समस्त ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों की जनता से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं और आँकड़े उपलब्ध कराती है। जनसंख्या, आय, पुरुष, महिला, शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, भूमि, उत्पादन, आदि बातों की जानकारी स्थानीय सरकार ही प्रदान करती है। इन सूचनाओं के आधार पर राज्य सरकार अपनी नीतियां तैयार करती हैं, जिससे योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्माण होता है, जिससे समस्त राष्ट्र का हित निहित होता है। इन नीतियों तथा योजनाओं को सफल बनाने में स्थानीय शासन का अत्यधिक योगदान होता है।

10.6 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

यद्यपि भारत के संविधान में स्थानीय शासन को परिभाषित नहीं किया गया है। सातवीं अनुसूची में कहा गया हैः ''स्थानीय शासन अर्थात म्युनिसिपिल कॉरपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, जिला परिषदों, खदान अभिकरणों और स्थानीय स्वशासन तथा ग्राम प्रशासन के हेतु अन्य स्थानीय अभिकरणों के गठन एवं शक्तियां।''

इस प्रकार 1992 तक भारत में स्थानीय शासन राज्यों के विवेक पर निर्भर था। इस कमी को दूर करते हुए संविधान में दो संशोधन किए गये। इन दो संविधान संशोधनों के माध्यम से भारतीय स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो गया। 73वां संशोधन जो ग्रामीण पंचायती राज संस्थाओं के विकास से सम्बन्धित है और 74वां संशोधन जो नगरीय प्रशासन से, दोनों के द्वारा सत्ता का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। संविधान में ऐसा करने वाला भारत दुनियां का पाँचवां देश बन गया।

10.7 सारांश

स्थानीय स्वशासन एक प्राचीन अवधारणा है विशेष रूप से भारतीय संस्कृति में इससे जुड़ी संस्थाओं को विकास क्रम में प्राचीन से अद्यतम तक परिभाषित किया जा सकता है।

यह शासन का ऐसा स्वरूप है जो नागरिक विकास के लिए स्थानीय मुद्दों के समाधान में जनसहभागिता की जरूरत पर विशेष बल देता है। स्थानीय स्वशासन,भारतीय संघात्मकता एवं एकात्मकता रूपी प्रजातंत्र पर आधारित सत्ताविकेन्द्रीकरण मूल्यों की आधारशिला है। संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने से यह नियंत्रण एवं उत्तरदायी पूर्ण शासन

व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-निर्माण से क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन तक जनसहभागिता पर आधारित है। सही मायने में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई 'स्थानीय स्वशासन' ही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता देने के लिए भारतीय संविधान में कौन-कौन से संशोधन किए गये?
2. भारत में स्थानीय स्वशासन को कितने भागों में विभक्त किया गया है?
3. पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के किस शब्द से हुई है?
4. भारत में नगर निगम की सर्वप्रथम स्थापना कब और कहाँ हुई?

10.8 शब्दावली

परिवर्धन- विस्तरण या विस्तार, द्योतक- प्रतीक या चिन्ह स्वरूप, उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी, जनसाधारण- आमलोग, आधारशीला- नींव

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 73वां और 74वां संवैधानिक संशोधन, **2.** दो भागों में- नगरीय और ग्रामीण, **3.** पंचायतन, **4.** 1687 में मद्रास नगर निगम

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एल0 गोल्डिंग, लोकल गवर्नमेंट, इंगलिश यूनिवर्सिटी, लंदन 1955
2. जेम्सब्राइस, मार्डन डेमोक्रेसीज, मैकमिलन प्रेस न्यूयार्क 1921
3. जे0 एस0मिल, रिप्रेजेन्टिव गवर्नमेंट एवरिमेंस लाइब्रेरी एडीसन प्रेस लंदन 1957
4. एस0आर0 माहेश्वरी, ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारत में स्थानीय स्वशासन के महत्व को विस्तार से समझाइये।
2. स्थानीय स्वशासन को परिभाषित कीजिए और उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. स्थानीय शासन के लाभों को विस्तार से समझाइये।
4. स्थानीय शासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियाद है,विश्लेषण कीजिए।

ईकाई ग्यारह : आधुनिक भारत में लिंगभेद एवं जाति व्यवस्था

11.1. प्रस्तावना

11.2. उद्देश्य

11.3. लिंगभेद

11.3.1 ब्रिटिश कालीन लिंगभेद

11.3.2 लिंगभेद के कारण

11.3.3 लिंगभेद सुधार आंदोलन

11.3.4 स्वतंत्रता पश्चात् लिंगभेद की स्थिति

11.4. जाति व्यवस्था

11.4.1 ब्रिटिश कालीन जाति व्यवस्था

11.4.2 जाति-व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन व विघटन

11.4.3 स्वतंत्रता पश्चात् जाति व्यवस्था स्वरूप

11.4.4 स्वतंत्रता पश्चात् जाति व्यवस्था के विघटन के कारण

11.5. सारांश

11.6. संदर्भ ग्रंथ

11.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

11.1. प्रस्तावना

आधुनिक भारत में लिंगभेद एवं जाति व्यवस्था भारत की जटिलत्तम एवं शायद सबसे प्राचीन रूप है। लिंगभेद द्वारा समाज या संस्कृति अपने स्त्री और पुरुष सदस्यों को एक निश्चित स्थिति प्रदान करती है और उसी के अनुसार स्त्री और पुरुष समूहों में एक ऊँच-नीच का संस्तरण हो जाता है।

लिंग पर आधारित स्तरीकरण- लिंग-स्तरीकरण सम्भवतः सबसे प्राचीन एवं सरल स्तरीकरण है। प्रत्येक समाज या संस्कृति अपने स्त्री और पुरुष सदस्यों को एक निश्चित स्थिति प्रदान करती है और उसी के अनुसार स्त्री और पुरुष-समूहों में एक ऊँच-नीच का संस्तरण हो जाता है। उदाहरणार्थ, पितृसत्तात्मक या पितृवंशीय परिवार वाले समाजों में पुरुषों की स्थिति ऊँची तथा स्त्रियों की स्थिति नीची होती है। परम्परागत हिन्दू-समाज इसका एक उत्तम उदाहरण है जिसमें कि पुरुष ही परिवार का संचालक होता है, वह ही सम्पत्ति की देखरेख करता, पारिवारिक झगड़ों का निपटारा करता और सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व सामुदायिक विषयों में उसका निर्णय ही अन्तिम होता है। इसके विपरीत, नारी की स्थिति नीची होती है और उसके बारे में यह सोचा जाता है कि नारी अबला और शक्तिहीन होती है और उसे प्रत्येक अवस्था में, जन्म से लेकर मृत्यु तक, किसी-न-किसी पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है। अनेक संस्कृतियों में धर्म और जादू के क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक गिरी हुई होती है। उदाहरणार्थ,

नीलगिरि की टोडा जनजाति, जोकि विशुद्ध रूप से पशुपालक है, स्त्रियों को मासिक-धर्म आदि के कारण अपवित्र तथा अयोग्य मानती है; स्त्रियाँ इस जनजाति की भैंसशालाओं के पास तक नहीं जा सकतीं। इसके विपरीत, मातृसत्तात्मक या मातृवंशीय परिवार वाले समाजों में स्त्रियों की स्थिति ऊँची तथा पुरुषों की स्थिति नीची होती है। खासी जनजाति के देवता भी स्त्री होते हैं। पुरुष अपनी सारी कमाई शादी से पहले अपनी माता को और शादी के बाद अपनी पत्नी को देता है। धार्मिक क्रियाओं में भी स्त्रियों का प्रमुख स्थान होता है और बच्चों का परिचय माँ के परिवार के अनुसार ही होता है। विवाह के बाद पति को अपनी पत्नी के घर आकर बस जाना पड़ता है। इसी प्रकार से हम कह सकते है कि राज्य का शासक एवं मुख्य पुरोहित स्त्री ही होती है।

निश्चित अर्थ में भारत जाति प्रथा का आगार है और यहाँ शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं; चाहे उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति-प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई। आज भारत में लगभग 3,000 जातियाँ और उपजातियाँ हैं और उनके अध्ययन के लिए, जैसा हट्टन का कथन है, विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि असंख्य विद्वानों ने इस जाति-प्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इतिहासकारों ने इस जाति-प्रथा का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वनों ने जाति-प्रथा की उत्पत्ति को समझाया है तो कुछ ने जाति-प्रथा की गतिशीलता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आधुनिक समय में जाति-प्रथा में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण किया है। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जाति-प्रथा के महत्व या कार्यों का निरूपण किया है, फिर भी सम्पूर्ण भारतीय जाति-प्रथा का पूर्ण विश्लेषण व निरूपण पूर्ण रूप से आज भी प्रस्तुत किया जा रहा है या नहीं, इस विषय में अब भी सन्देह है। अतः इस अध्याय में हम जाति-प्रथा के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक एक विनम्र रूपरेखा ही प्रस्तुत कर सकेंगे।

11.2. उद्देश्य

इस ईकाई का उद्देश्य है कि आधुनिक भारत में लिंगभेद और जाति व्यवस्था पर प्रकाश डालना है।

- लिंगभेद के क्या कारण है?
- लिंगभेद के परिणाम।
- जाति व्यवस्था के कारण।
- जाति व्यवस्था के परिणाम।
- समाज के बहुआयामी परिवर्तन को लक्षित करना।
- भारत में विद्यमान सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक आस्थाओं पर विचार करना।

11.3. लिंगभेद

लिंग-विभेदीकरण सामाजिक विभेदीकरण का शायद सबसे प्राचीन रूप है। स्त्री और पुरुष की शारीरिक रचना बिल्कुल भिन्न होती है और इसी आधार पर उनमें अन्य विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, स्त्रियों को निर्बल, भावुक, धार्मिक एवं अन्धविश्वासी माना गया है, जबकि पुरुषों को तार्किक, उदार, साहसी तथा प्रगतिशील बताया गया है। इसी विभेद के आधार पर स्त्रियों और पुरुषों में कार्यों का विभाजन भी होता है। यह ठीक है कि संस्कृति-विशेष का भी इन कार्यों के विभाजन पर प्रभाव पड़ता है, फिर भी स्त्री और पुरुष के विशिष्ट कार्यों का एक सार्वभौम प्रतिमान अवश्य होता है जैसे घर-गृहस्थी से सम्बन्धित कार्य स्त्रियाँ करती हैं, जबकि जीविका-पालन, शासन-प्रबन्ध आदि से सम्बन्धित कार्य पुरुष करते हैं। वास्तव में कार्यों का यह विभाजन स्त्री और पुरुष में शरीर, स्वभाव, रुचि आदि में अन्तर के कारण भी होता है। उदाहरण के लिए, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, खाना-पकाना, ललित-कलाएँ आदि स्त्रियाँ सरलता से सीख जाती हैं, जबकि गणित व विज्ञान से सम्बन्धित क्रियाएँ, मशीन का काम और कठोर परिश्रम व शारीरिक दृढ़ता के ऐसे ही अन्य काम पुरुषों को दिए जात हैं। यद्यपि इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिन कामों को स्त्रियाँ करती हैं उन्हें पुरुष सीख ही नहीं सकते या जिन कार्यों को पुरुष करते हैं, जिन्हें स्त्रियाँ सीख नहीं सकतीं। फिर भी लिंग पर आधारित स्त्री-पुरुष का भेद सामाजिक विभेदीकरण का महत्वपूर्ण स्वरूप है क्योंकि इसी के आधार पर अन्य अनेक सामाजिक विभेद भी उत्पन्न होते हैं।

11.3.1. ब्रिटिश कालीन लिंगभेद

ब्रिटिश काल से हमारा तात्पर्य 18 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर स्वतन्त्रता से पूर्व तक के समय से है। अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों द्वारा समाज-सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये लेकिन सरकार की ओर से लिंगभेद की स्थिति में सुधार करने के कोई भी व्यावहारिक प्रयत्न नहीं किये गये। अपने हितों को पूरा करने के लिए स्त्रियों का शोषित बने रहना अंग्रेजों के लिए भी लाभप्रद था। इसका परिणाम यह हुआ कि 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्त्रियों की निर्योग्यताओं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। निम्नांकित क्षेत्रों में स्त्रियों की निर्योग्ताओं के आधार पर इस काल में उनकी दयनीय स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है:

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने, स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारों की माँग करने और व्यवहार के नियमों में किसी प्रकार का भी परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। स्त्रियों में अज्ञानता इस सीमा तक बढ़ गयी कि स्वतन्त्रता के पहले तक स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 6 से भी कम था। यह शिक्षा भी केवल कामचलाऊ ही थी। किसी भी स्त्री द्वारा बाल-विवाह अथवा पर्दा-प्रथा का विरोध करना उसके चरित्र के लिए एक कलंक समझा जाता था। स्त्री के सम्बन्ध उसके माता-पिता के परिवार तक सीमित थे तथा परम्परागत धार्मिक दायित्वों का निर्वाह करना ही उनके मनोरंजन का एकमात्र साधन था।

पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों के समस्त अधिकार समाप्त हो गये। सैद्धान्तिक रूप से स्त्री परिवार के सभी कार्यों की संचालिका थी लेकिन व्यवहार में यह सभी अधिकार परिवार के 'पुरुष कर्ता' को प्राप्त हो गये। स्त्री का विवाह बहुत छोटी आयु में ही हो जाने के कारण उसका जीवन आरम्भ में ही परम्परागत निषेधों और रूढ़ियों से युक्त हो गया। वैदिक काल की 'साम्राज्ञी' सब सास की सेविका बन गयी। परिवार में स्त्री का एकमात्र कार्य बच्चों को जन्म देना और पति के सभी सम्बन्धियों की सेवा करना रह गया। परिवार में दहेज की मात्रा, सदस्यों की सेवा और धार्मिक कार्यों को

लेकर स्त्री का शोषण एक बहुत सामान्य-सी बात हो गयी। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि स्त्रियाँ स्वयं भी इस अत्याचार को अपने पूर्व जन्म के कर्म का फल मानकर इससे सन्तुष्ट रहती थीं। इससे उनकी स्थिति में निरन्तर ह्रास होता गया।

आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों की निर्योग्यताएँ सबसे अधिक थीं। उन्हें संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने से ही वंचित नहीं रखा गया बल्कि स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में भी हिस्सा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था। स्त्री स्वयं 'सम्पत्ति' बन चुकी थी, फिर उसे सम्पत्ति के अधिकार किस तरह प्रदान किये जा सकते थे? स्त्रियों के द्वारा कोई आर्थिक क्रिया करना एक अनैतिक कार्य के रूप में देखा जाने लगा। हमारे समाज का इससे बड़ा दिवालियापन और क्या हो सकता है कि एक स्त्री भूख और प्यास से चाहे कितनी ही संतप्त हो लेकिन कोई आर्थिक क्रिया करना उसकी कुलीनता और स्त्रीत्व के विरुद्ध मान लिया गया। इन आर्थिक निर्योग्यताओं का ही परिणाम था कि स्त्री को बड़े अमानवीय व्यवहार के बाद भी पुरुषों की दया पर ही निर्भर रहना पड़ता था। आत्महत्या इस निर्भरता का एकमात्र समाधान रह गया।

राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा हिस्सा लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। जब घर के अन्दर स्त्रियों पर मनमाना शोषण करने वाला पुरुष घर से बाहर अंग्रेजों का गुलाम था तो स्त्रियों द्वारा राजनीति में भाग लेने की कल्पना भी कैसे की जा सकती थी? यद्यपि 1919 के बाद स्त्रियों को मताधिकार देने के प्रयत्न किये गये लेकिन इसमें कोई व्यवहारिक सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1937 के चुनाव में पति की शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर बहुत थोड़ी-सी स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया। वास्तव में स्त्रियों की सम्पूर्ण राजनीतिक चेतना अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर ही बन्द थी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सन् 1919 के पश्चात् कुछ स्त्रियों ने राजनीति में भाग अवश्य लिया लेकिन कुलीन परिवार इसका सदैव विरोध करते रहे।

11.3.2. लिंगभेद के कारण

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि वैदिक संस्कृति में स्थिति अत्यधिक उच्च थी लेकिन ईसा के लगभग 300 वर्ष पहले से उनके अधिकार कम होना आरम्भ हो गये और बाद में अनेक परिस्थितियों के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति 'दासता' के स्तर तक पहुँच गयी। स्त्रियों की स्थिति के इस कल्पनातीत ह्रास को निम्नांकित प्रमुख कारकों के आधार पर समझा जा सकता है:

अशिक्षा- कुछ विद्वान हिन्दू वर्ण-व्यवस्था और कर्मकाण्डों की जटिलता को लिंगभेद का कारण मानते हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि यदि स्त्रियाँ शिक्षित होतीं, तब न तो उन्होंने पक्षपातपूर्ण धार्मिक विधानों को स्वीकार किया होता और न ही वे अपने अधिकारों से वंचित हो पातीं। शिक्षा के अभाव में स्त्रियों का जीवन अपने परिवार तक ही सीमित हो गया। उनकी एकमात्र शिक्षा पिता और पति द्वारा मिलने वाले स्वार्थपूर्ण धार्मिक उपदेश थे। इन रूढ़िगत उपदेशों द्वारा स्त्री को अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भूल जाने के लिए बाध्य किया गया और पति तथा पुत्र की सेवा करना ही उसका एकमात्र धर्म निर्धारित कर दिया गया। इसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था एकपक्षीय हो गयी जिसमें पुरुषों के अधिकार निरन्तर बढ़ते गये और स्त्रियों की स्थिति निम्नतम हो गयी। जिन स्त्रियों ने कुछ शिक्षा ग्रहण की थी, वे इसका उपयोग तथाकथित धर्मशास्त्रों को पढ़ने में करने लगीं क्योंकि उस समय स्त्रियों द्वारा सतियों और पतिव्रत धर्म की कथाएँ पढ़ना ही नैतिकता की कसौटी मानी जाती थी। अशिक्षा के कारण स्त्रियाँ अपनी इस स्थिति को ही समाज

का धर्म समझने लगीं और यही रूढ़िगत आदर्श माता द्वारा अपनी पुत्री निरन्तर हस्तान्तरित होने लगे। अशिक्षा के कारण धर्म के वास्तविक रूप को कभी समझा ही नहीं जा सका।

कन्यादान का आदर्श- हिन्दू संस्कृति में 'कन्यादान' के आदर्श का प्रचलन वैदिक काल से ही रहा है लेकिन उस समय सामाजिक व्यवस्थाओं का रूप अत्यधिक परिष्कृत होने के कारण इस आदर्श का दुरुपयोग नहीं किया गया। कन्यादान का आदर्श वास्तव में कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ने से सम्बन्धित था क्योंकि 'दान किसी सुपात्र को ही दिया जा सकता है।' इसी भावना के आधार पर वर के चुनाव में स्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रतादी जाती थी। स्मृतिकाल के बाद के कन्यादान की विवेचना इस प्रकार की जाने लगी जैसे कन्या एक 'वस्तु' हो। इस आधार पर यह विश्वास किया जाने लगा कि जो वस्तु एक बार दान कर दी जाती है, उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही पुनः दान में दिया जा सकता है। दान प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसका किसी भी प्रकार अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पुरुष सुपात्र बन गया और प्रत्येक स्त्री दान में दी जाने वाली एक निर्जीव वस्तु हो गयी। इस प्रकार कन्यादान सम्बन्धी विश्वास स्त्रियों के अधिकारों को समाप्त करने वाला एक प्रमुख कारक बन गया।

पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता- उत्तर वैदिक काल के पश्चात् से स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार समाप्त हो जाने के कारण वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णतया पुरुषों पर निर्भर हो गयीं। ऐसी स्थिति में परिवार के सदस्यों द्वारा शोषण होने पर भी वे परिवार की सदस्यता को नहीं छोड़ सकतीं थीं। अशिक्षा के कारण स्वतन्त्र रूप से कोई आर्थिक क्रिया करना भी उनके लिए सम्भव नहीं रह गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों पर पुरुषों का एकाधिकार निरन्तर बढ़ता गया। इस आर्थिक कारक का महत्व इसी तथ्य से स्पष्ट होता है कि उच्च जातियों की अपेक्षा निम्न जातियों में स्त्रियों सामाजिक स्थिति में कभी इतना ह्रास नहीं हुआ क्योंकि वे आर्थिक रूप से पुरुषों की दया पर इतना अधिक निर्भर नहीं रही है। आर्थिक निर्भरता ही व्यक्ति का सब कुछ सह लेने के लिए बाध्य कर देती है। निर्भरता की स्थिति में अधिकारों की माँग करने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

संयुक्त परिवार व्यवस्था- संयुक्त परिवार का ढाँचा इस प्रकार का है कि स्त्रियों को स्वतन्त्रता और सम्पत्ति-अधिकार देकर इसे किसी प्रकार भी सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। इसके फलस्वरूप संयुक्त परिवारों ने अनेक गाथाओं और तथाकथित धार्मिक आदर्शो के आधार पर स्त्रियों को यह विश्वास दिलाया कि पति के क्रोधी, पापी और दुराचारी होने पर भी उसकी देवता के रूप में पूजा करना स्त्री का परम धर्म है। संयुक्त परिवार के पुरुष शासकों को सम्भवतः यह भय था कि स्त्रियों में चेतना का विकास होने से परिवार में उनका शासन समाप्त हो जायेगा। इस आशंका को समाप्त करने के लिए भी स्त्रियों को सभी अधिकारों से वंचित करके उनका मनमाना शोषण किया जाता रहा। इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में संयुक्त परिवार एक गुणकारी संस्था होते हुए भी स्त्रियों की स्थिति को गिराने में अत्यधिक सक्रिय रहे हैं।

बाल-विवाह- बाल-विवाह भी लिंगभेद का एक प्रमुख कारण है। छोटी आयु में ही विवाह हो जाने के कारण स्त्रियाँ न तो शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और न ही समाज की मौलिक संस्कृति को समझकर अपने अधिकारों की माँग कर सकती थीं। अल्पायु से उन्हें पति की उचित और अनुचित आज्ञाओं का पालन करने की सीख मिलने के कारण यही उनका पर्यावरण बन गया। जब तक उनकी बुद्धि परिपक्व हो, तब तक अनेक बच्चों की माँ बन जाने के कारण वे अपने को पूरी तरह असमर्थ और संयुक्त परिवार पर आश्रित पाती थीं। आज भी बहुत-से व्यक्ति बाल-विवाह का समर्थन इसलिए करते हैं जिससे नव-विवाहित स्त्रियों को सभी प्रकार के नियन्त्रण में रहने के योग्य बनया जा सके। उनके लिए स्त्रियों की चेतना और अधिकारों का आज भी कोई मूल्य नहीं है।

वैवाहिक कुरीतियाँ- अनेक वैवाहिक कुप्रथाओं, जैसे अन्तर्विवाह, कुलीन विवाह, विधवा-विवाह पर नियन्त्रण और दहेज-प्रथा आदि ने भी लिंगभेद बनाने में काफी योग दिया है। इन प्रथाओं के कारण समाज और परिवार में स्त्रियों को एक भार के रूप में समझा जाने लगा। माता-पिता के सामने एक ही समस्या थी कि किसी प्रकार उनकी पुत्री का विवाह हो जाये। योग्य वर का चुनाव करने का कुछ भी महत्व नहीं रह गया। इस परिस्थिति में वर-पक्ष के व्यक्ति स्त्री को एक 'लाभप्रद वस्तु' के रूप में देखने लगे जिसके आने का एक-मात्र लाभ अनेक उपहारों को प्राप्त करना था। अधिक से अधिक उपहार प्राप्त करने के लिए प्रत्येक त्यौहार और संस्कार के समय कन्या-पक्ष के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वह वर-पक्ष को कुछ धन और वस्तुएँ भेंट करें। इस प्रकार प्रत्येक माता-पिता के लिए कन्या का जीवन एक आर्थिक-भार बन जाने के कारण स्त्रियांे की सामाजिक स्थिति निरन्तर गिरती गयी।

11.3.3. लिंगभेद सुधार आन्दोलन

स्वार्थ, शोषण और अन्याय जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, तब उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी अवश्य होती है। हिन्दू समाज में भी 19 वीं शताब्दी के आरम्भ से स्त्री शोषण के विरुद्ध होने वाला आन्दोलन इसी प्रतिक्रिया को स्पष्ट करता है। यद्यपि सन् 1813 में सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से यह आदेश दिया गया था कि वह सभी वर्गों में शिक्षा का प्रसार करे लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्त्री शिक्षा को भारतीय मनोवृत्तियों के विरुद्ध कहकर इसे कोई महत्व नहीं दिया। इसके पश्चात् अनेक प्रगतिशील भारतीयों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के प्रयत्न किये लेकिन वह सभी प्रयत्न व्यक्तिगत स्तर पर ही थे, इन्हें सरकार की ओर से संरक्षण नहीं मिल सका।

सर्वप्रथम राजा राममोहन राय (1772-1833) ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना करके सती-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसके फलस्वरूप सन् 1829 में इस प्रथा को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को सम्पत्ति अधिकार देने, बाल-विवाहों को समाप्त करने और स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने के क्षेत्र में भी राजा राममोहन राय ने महत्वपूर्ण कार्य किये। सच तो यह है कि आपके ही प्रयत्नों से समाज-सुधार आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो सका। महर्षि दयानन्द ने सबसे पहले सन् 1875 में मुम्बई मेंे आर्य समाज की स्थापना करके हिन्दू-समाज को वैदिक आदर्शों की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। आप स्मृतियों और रूढ़िवादी हिन्दू-धर्म के कटु आलोचक थे। उत्तर भारत में स्त्री शिक्षा का प्रसार करने तथा पर्दा-प्रथा और बाल-विवाह का विरोध करने में इस संस्था का योगदान सबसे अधिक रहा है। ईश्वरचन्द विद्यासागर महर्षि दयानन्द के ही समकालीन समाज सुधारक थे। आपने यद्यपि किसी सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर आपके प्रयत्नों से स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। आपने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के लिए विधवा-विवाह और बहुपत्नी विवाह सम्बन्धी परम्परागत नियमों का व्यापक विरोध किया तथा स्त्री-शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। श्री ईश्वरचन्द की व्यावहारिकता का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है कि आपने अपने लड़के तक का विवाह एक विधवा स्त्री से कर दिया जिसकी उस समय कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इन्हीं प्रयत्नों से सन् 1856 में 'विधवा विवाह कानून' पास हो सका। श्री ईश्वरचन्द के द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि उस समय 69 वर्ष के एक ब्राह्मण की 80 पत्नियाँ थीं जिनमें सबसे छाटी पत्नी की आयु केवल 17 वर्ष थी। कुलीनता की विषम समस्या को समाप्त करने के लिए भी आपने एक स्वस्थ जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। स्त्री शिक्षा के प्रति आपकी जागरूकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि सन् 1855 और 1858 के बीच ही आपने बहुत-से कन्या विद्यालय खोलकर स्त्रियों में अपने

अधिकार के प्रति जागरूकता उत्पन्न की। पूना में प्रो. कर्वे ने अनेक विधवा आश्रम खोलकर स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करना आरम्भ कर दिया। इसी शताब्दी में अनेक प्रगतिशील महिलाओं, जैसे- दुर्गाबाई देशमुख, रमाबाई और रूखमाबाई ने भी पुरानी रूढ़ियों की चिन्ता न करते हुए स्त्रियों को अपने अधिकार माँगने और समाज में एक सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी में होने वाले इस सुधार-आन्दोलन को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- (क) महात्मा गाँधी द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत सुधार प्रयत्न, (ख) स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य, तथा (ग) संवैधानिक व्यवस्थाएँ।

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम संगठित आधार पर स्त्रियों के अधिकारों के औचित्य को स्पष्ट किया। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति सम्बन्धी सुधार कार्य को अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख अंग बना लिया। राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के बाद प्रत्येक वर्ष स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने से सम्बन्धित प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को भेजकर उन्होंने सरकार का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। इन प्रस्तावों में विशेष रूप में स्त्री शिक्षा के प्रसार, दहेज और कुलीन विवाह प्रथा पर नियन्त्रण, अन्तर्जातीय विवाह के प्रसार तथा बाल-विवाह की कानून द्वारा समाप्ति पर विशेष जोर दिया गया। राष्ट्रपिता गाँधी ने स्त्रियों की निद्रा को तोड़कर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप पहली बार लाखों स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी से निकलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ीं। उन्होंने पहली बार अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचाना। इससे स्त्रियों में एक नवीन चेतना का विकास हुआ और यही चेतना बाद में उनकी प्रगति का आधार बन गयी।

अनेक स्त्री संगठनों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। यद्यपि सन् 1875 में 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद्' की स्थापना हो जाने से महिलाओं को संगठित हो जाने का अवसर अवश्य मिल गया लेकिन सर्वप्रथम श्री रानाडे और डॉ. ऐनी बेसेण्ट के प्रयत्नों से समस्त महिला संगठनों को एकजुट होकर सुधार कार्य करने की वास्तविक प्रेरणा मिली। इसके फलस्वरूप 1929 में विभिन्न महिला संगठनों ने एक होकर 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' का आयोजन किया। पूना में इसके प्रथम अधिवेशन के समय स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने पर बल दिया गया और एक प्रस्ताव के द्वारा सरकार से माँग की गई कि सम्पत्ति, विवाह और नागरिकता सम्बन्धी स्त्रियों की परम्परागत निर्योग्यताएँ कानून के द्वारा समाप्त की जायें। स्त्रियों को शिक्षा देने के दृष्टिकोण से दिल्ली में 'लेडी इरविन कॉलेज' की स्थापना भी संस्था के द्वारा की गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक महिला संघों ने भी स्त्रियों में जागरूकता उत्पन्न करने तथा उन्हें रूढ़िगत जीवन से बाहर निकलकर संगठित रूप से कार्य करने को प्रोत्साहन दिया। ऐसे संगठनों में 'विश्वविद्यालय महिला संघ' 'भारतीय ईसाई महिला मण्डल' व 'अखिल भारतीय स्त्री-शिक्षा संस्था' तथा 'कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट' आदि के नाम से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लिंगभेद के सुधार-आन्दोलन का सुखद परिणाम आज हमारे सामने है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही सन 1948 में सरकार के सामने हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया गया लेकिन अनेक रूढ़िवादी तत्वों ने इसे नवीन संविधान निर्माण होने की अवधि तक टालने में सफलता प्राप्त कर ली। 1950 में नवीन संविधान के अन्तर्गत पुरुषों और स्त्रियों को समानता के अधिकार दिये गये लेकिन 'हिन्दू कोड बिल' की स्वीकृति को पुनः यह कहकर टाल दिया गया, कि 1952 में जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा ही इस प्रकार कोई निर्णय लेना उचित होगा। सन् 1952 में जब इसे पुनः नव-निर्वाचित लोकसभा में प्रस्तुत किया गया तब अनेक राजनीतिक दलों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उन स्त्रियों को ही इसके

विरोध में लाकर खड़ा कर दिया जिनकी स्थिति में सुधार करने के लिए इसे प्रस्तुत किया जा रहा था। इसके पश्चात् भी भारत में समाज-सुधार की आवश्यकता को देखते हुए इस बिल को अनेक खण्डों में विभाजित करके पास करना आरम्भ कर दिया गया। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे स्त्रियों की सभी परम्परागत निर्योग्यताएँ समाप्त हो गयीं और उन्हें विवाह, सम्पत्ति, संरक्षता और विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पुरुषों के सामने अधिकार प्राप्त करने तथा सामाजिक रूढ़ियों से छुटकारा पाने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे अधिनियमों में 'हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955', 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956', 'हिन्दू नाबालिग और संरक्षता अधिनियम, 1956', 'हिन्दू दत्तकग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956', 'विशेष विवाह अधिनियम, 1954' तथा 'दहेज निरोधक अधिनियम, 1961' आदि प्रमुख हैं।

11.3.4. स्वतन्त्रता पश्चात् लिंगभेद की स्थिति

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् लिंगभेद की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि पिछली एक शताब्दी में ही लिंगभेद की स्थिति में सुधार करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न होते रहे हैं लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् लिंगभेद की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है, उसकी सम्पूर्ण विश्व कल्पना तक नहीं कर सकता था। डॉ. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता ; को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।1 इसके अतिरिक्त स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार होने तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप भी उन्हें आर्थिक जीवन में प्रवेश करने के अवसर प्राप्त हुए। इससे स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता कम होने लगी और उन्हें स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर मिले। संचार के साधनों, समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में वृद्धि होने से स्त्रियों ने अपने विचारो को अभिव्यक्त करना आरम्भ किया। संयुक्त परिवारों का विघटन होने से स्त्रियों के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई और सामाजिक अधिनियमों के प्रभाव से एक ऐसे सामाजिक वातारण का निर्माण हुआ जिसमें बाल-विवाह, दहेज-प्रथा और अन्तर्जातीय विवाह की समस्याओं से छुटकारा पाना सरल हो गया। इस सभी कारकों के संयुक्त प्रभाव से लिंगभेद की स्थिति में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें निम्नांकित क्षेत्रों में स्पष्ट किया जा सकता है:

शिक्षा की प्रगति- शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियाँ इतनी तेजी से आगे बढ़ रही हैं कि 30 वर्ष पूर्व इसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। स्वतन्त्रता से पहले तक लड़कियों के लिए न तो शिक्षा सम्बन्धी समुचित सुविधाएँ प्राप्त थीं और न ही माता-पिता स्त्री-शिक्षा को उचित समझते थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री-शिक्षा में व्यापक प्रगति हुई। इस तथ्य को इसी बात से समझा जा सकता है कि सन् 1882 में भारत में ऐसे केवल 2,054 स्त्रियाँ थीं जो कुछ लिख-पढ़ सकती थीं जबकि 2001 की जनगणना के समय तक साक्षर स्त्रियों की संख्या बढ़कर 27 करोड़ से भी अधिक हो गयी। सन् 1883 में जहाँ पहली बार एक स्त्री ने बी.ए. पास किया, वहीं आज 7.5 लाख से भी अधिक लड़कियाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ रही हैं। लड़कियों के लिए आज कला और विज्ञान के अतिरिक्त गृहविज्ञान, हस्तकला, शिल्पकला और संगीत की शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधाएँ प्राप्त है। मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कॉलेजों में लड़कियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शिक्षा के प्रसार के कारण स्त्रियों को बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा से छुटकारा मिला ही है, साथ ही उन्होंने समाज-कल्याण और महिला-कल्याण में भी व्यापक रूचि लेना आदि कर दिया है। विश्वविद्यालयों तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त करके स्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनका मानसिक स्तर पुरुषों से किसी प्रकार भी नीचा नहीं है। स्त्री-शिक्षा की इस प्रगति को देखते हुए

श्री पणिक्कर ने यह निष्कर्ष दिया है कि ''स्त्री-शिक्षा ने विद्रोह की इस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना सम्भव हो गया है।''1

आर्थिक जीवन में बढ़ती हुई स्वतन्त्रता- स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा, औद्यागीकरण और नवीन विचारधारा के कारण स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता लगातार कम होती जा रही है। स्वतन्त्रता से पहले यद्यपि निम्न वर्ग की बहुत-सी स्त्रियाँ उद्योगों और घरेलू कार्यों के द्वारा जीविका उपार्जित करती थीं लेकिन मध्यम और उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा कोई आर्थिक क्रिया करना अनैतिकता के रूप में देखा जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् एक बड़ी संख्या में मध्यम वर्ग की स्त्रियों ने शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक क्षेत्र की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, समाज-कल्याण, मनोरंजन, उद्योगों और कार्यालयों में स्त्री कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जित करने वाली स्त्रियाँ आज अन्य स्त्रियों के लिए एक आकर्षण हैं और आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण परिवार में उनके महत्व को देखकर अन्य स्त्रियों को भी आर्थिक जीवन में प्रवेश करने का प्रोत्साहन मिला है। वास्तविकता तो यह है कि स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में इतनी प्रगति हुई है कि उनके व्यक्तित्व की तुलना उस स्त्री से किसी प्रकार नहीं की जा सकती जो आज से कुछ ही वर्ष पहले तक संसार की सम्पूर्ण लज्जा को अपने घूँघट में समेटे हुए और पुरुष के शोषण को सहन करती हुई घूँघट में ही अपना जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थी।

पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि- परिवारों में लिंगभेद की स्थिति में आज महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आज की स्त्री पुरुष की दासी नहीं बल्कि उसकी सहयोगी और मित्र है। परिवार में उसकी स्थिति एक याचिका की न हो बल्कि प्रबन्धक की है। आज की शिक्षित स्त्री संयुक्त परिवार में अपने समस्त अधिकारों का बलिदान करके शोषण में रहने के लिए तैयार नहीं है बल्कि वह एक स्वतन्त्र एकाकी परिवार की स्थापना करके अपने अधिकारों का पूर्ण उपयोग, संस्कारों का प्रबन्ध और पारिवारिक योजनाओं के रूप का निर्धारण करने में स्त्री की इच्छा का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अनेक स्त्रियाँ तो अपने पारिवारिक अधिकारों के लिए अन्तर्जातीय और प्रेम विवाह को भी प्राथमिकता देने लगी हैं। विलम्ब विवाह ;संजम उंततपंहमद्ध स्त्रियों में निरन्तर लोकप्रिय होता जा रहा है। कुछ व्यक्ति परिवार में स्त्रियों के बढ़ते हुए अधिकारों से इतने चिन्तित हो उठे हैं कि उन्हें पारिवारिक जीवन के विघटित हो जाने का भय हो गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि उनकी यह चिन्ता अपने एकाधिकार में होती हुई कमी के कारण ही उत्पन्न हुई है। आज की नयी पीढ़ी तो स्वयं स्त्रियों को उनके पारिवारिक अधिकार देने के पक्ष में है और यदि किसी कारण उन्हें इन अधिकारों से वंचित रखा भी गया, तब आने वाले समय में वे इन्हें अपनी शक्ति से स्वयं ही प्राप्त कर लेंगी।

राजनीनिक चेतना में वृद्धि- राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति जिस गति से ऊँची उठ रही है, वह वास्तव में एक आश्चर्य का विषय है। सन् 1937 के चुनाव में स्त्रियों के लिए 41 सीटें सुरक्षित होने पर केवल 10 स्त्रियाँ ही चुनाव के लिए सामने आयी थीं जबकि आज केवल राज्य सभा और लोक सभा में स्त्री-सदस्य की संख्या 62 तक पहुँच चुकी है।2 भारत में अनेक राज्यों में स्त्रियों का मुख्यमन्त्री बनना सम्पूर्ण संसार के लिए आश्चर्य की बात थी। सन् 1984 में स्वर्गीय इन्दिरा गाँधी ने जिस तरह के साहसपूर्ण निर्णय लेकर विदेशी चुनौतियों का सामना किया, उससे तथाकथित सभ्य समाजों की स्त्रियाँ जैसे हतप्रभ रह गयीं। उन्हें पहली बार यह महसूस हुआ कि उनकी राजनीतिक जागरूकता अभी बहुत पीछे है। श्री पणिक्कर का कथन है कि ''जब स्वतन्त्रता ने पहली अँगड़ाई ली तब भारत के राजनीतिक जीवन में स्त्रियों को पद प्राप्त हुआ, उसे देखकर बाहरी दुनिया चौंक पड़ी क्योंकि वह तो हिन्दू स्त्रियों को पिछड़ी हुई,

अशिक्षित और प्रति क्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई समझने की अभ्यस्त थी।''3 स्त्रियों ने अपनी राजनीतिक शक्ति का पूर्ण सदुपयोग करके मध्य-काल की रूढ़ियों को समाप्त करने तथा स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रशंसनीय कार्य किये हैं।

सामाजिक जागरूकता- हिन्दू स्त्रियों का सामाजिक जीवन आज स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले के समय से बिल्कुल भिन्न है। जिन परिवारों में कुछ ही वर्ष पहले तक स्त्रियों के लिए पर्दे में रहना अनिवार्य था, उन्हीं परिवारों की स्त्रियाँ आज खुली हवा में साँस ले रही हैं। जिन रूढ़ियों को स्त्रियों ने ही अपनी अज्ञानता के कारण अपने जीवन का 'आदर्श' बना रखा था, उन रूढ़ियों के प्रति स्त्रियों की उदासीनता बराबर बढ़ती जा रही है। हिन्दू स्त्रियाँ आज अनेक प्रगतिशील संघों की स्थापना कर रही हैं और ऐसे संगठनों की सदस्यता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पणिक्कर के अनुसार, ''कुछ मेधावी स्त्रियों ने जो उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, वह भारत के लिए उतने महत्व की बात नहीं है जितनी कि यह बात कि कट्टरपन्थी और पिछड़े समझे जाने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के विचार भी करवट लेने लगे हैं। यहाँ स्त्रियाँ उन सामाजिक बन्धनों से बहुत कुछ मुक्त हो चुकी हैं जिन्होंने उन्हें रूढ़ियों और 'बाबावाक्यं प्रमाण' की विचारधारा के द्वारा जकड़ रखा था।'' निश्चित ही भारतीय स्त्रियों की स्थिति में होने वाले ये परिवर्तन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इन सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सभी परिवर्तन प्रमुख रूप से लिंगभेद से ही सम्बन्धित हैं। ग्रामीण स्त्रियों के जीवन में कुछ सुधार अवश्य हुआ लेकिन अभी उनमें शिक्षा का बहुत अभाव होने के कारण वे परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन को तोड़ने में अधिक सफल नहीं हो सकी हैं लेकिन यह भी सच है कि नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होने से उनके विचारों में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो चुका है। कुछ व्यक्ति आज भी स्त्रियों की स्थिति में होने वाले इन परिवर्तनों को उनका सुधार नहीं मानते। उनका विचार है कि स्त्रियों की समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार मिलने से समाज में अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, विवाह-विच्छेद, अनैतिकता और शिक्षित लड़कियों के विवाह की समस्या में वृद्धि हुई है। इससे समाज के विघटित हो जाने का डर है। यह भ्रमपूर्ण धारणा है। ये सभी परिस्थितियाँ पुरुषों के 'अहम्' के विरुद्ध हो सकती हैं लेकिन स्त्री-जाति का वास्तविक हित तो इन्हीं परिवर्तनों में निहित है।

वास्तविकता यह है कि ''वर्तमान समय में स्त्रियों द्वारा हिन्दू जीवन में सिद्धान्तों का पुनरीक्षण हिन्दू समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के प्रति उनकी जागरूकता, धर्म की आड़ में उन्हें समस्त अधिकारों से वंचित कर देने वाले असन्तोषजनक आदर्शों के प्रति क्षोभ, शिक्षा से उत्पन्न होने वाली महत्वाकांक्षाएँ और राष्ट्रीय संघर्ष के समय विकसित होने वाले अनुभवों ने उन्हें हिन्दू जीवन के आदर्शों का पुनर्विवेचन करने की प्रेरणा दी है।'' जब भारतीय समाज के सबसे अधिक सहनशील और शान्ति-प्रिय स्त्री-वर्ग ने ही अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए व्यापक अधिकारों की माँग करना आरम्भ कर दिया है, तब इस माँग को अब दबाया नहीं जा सकता। स्त्रियों में उत्पन्न होने वाली चेतना को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दू भविष्यवाणी की है कि ''स्त्रियों को सम्पत्ति और विवाह के क्षेत्र मिलने वाले अधिकार हिन्दू समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर देंगे और उनके लिए एक ऐसी कानूनी संहिता, नयी नैतिकता और सामाजिक सम्पर्क के सिद्धान्तों की रचना करेंगे जिनके फलस्वरूप स्मृतिकारों की व्यवस्थाओं को स्थान नये विवेकपूर्ण शास्त्र ग्रहण कर लेंगे तथा धर्म की पोल में घुसी हुई प्रतिक्रियावादी रूढ़ियों और लोकाचारों को दूध में पड़ी मक्खी के समान निकालकर फेंक दिया जायेगा। इस प्रकार हिन्दू स्त्रियों ने सामाजिक समानता का जो दावा आज किया है, उसे देखते हुए यह न्यायपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दू समाज का पुनर्जीवन इन न्यायसंगत अधिकारों को मान लेने से ही सम्भव है।''

11.4. जाति व्यवस्था

भारतीय जाति-प्रथा एक अत्यन्त जटिल संस्था है ; और प्रायः एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्वक अनुसन्धान के पश्चात् भी हम निश्चित रूप यह नहीं कह सकते कि यह अनोखी सामाजिक संस्था अपने निर्माण और विकास में किन-किन अवस्थाओं की देन रहीं है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन भी सबसे अधिक हुआ है। वेद, महाकाव्य, पुराण आदि के लेखकों से लेकर अनेक यूरोपीय और भारतीय विद्वानों तक ने इसके बारे में अध्ययन किए हैं।

निश्चित अर्थ में भारत जाति प्रथा का आगार है और यहाँ शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो। मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फँस चुके हैं; चाहे उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं में है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में जाति-प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी बाद में हुई। समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई। आज भारत में लगभग 3,000 जातियाँ और उपजातियाँ हैं और उनके अध्ययन के लिए, जैसा हट्टन का कथन है, विशेषज्ञों की एक सेना की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि असंख्य विद्वानों ने इस जाति-प्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने इस जाति-प्रथा का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वनों ने जाति-प्रथा की उत्पत्ति को समझाया है तो कुछ ने जाति-प्रथा की गतिशीलता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आधुनिक समय में जाति-प्रथा में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण किया है। ऐसे भी अनेक विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जाति-प्रथा के महत्व या कार्यों का निरूपण किया है, फिर भी सम्पूर्ण भारतीय जाति-प्रथा का पूर्ण विश्लेषण व निरूपण पूर्ण रूप से आज भी प्रस्तुत किया जा रहा है या नहीं, इस विषय में अब भी सन्देह है। अतः इस अध्याय में हम जाति-प्रथा के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक एक विनम्र रूपरेखा ही प्रस्तुत कर सकेंगे।

11.4.1. ब्रिटिश कालीन जाति व्यवस्था

उपरोक्त तथ्यों में कुछ भी सत्यता नहीं है, यह कहना गलत होगा। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि जाति-प्रथा अपने चरम स्तर पर जिस भाँति पूर्णतया जन्म पर आधारित थी और इसके नियत व निषेध जितने कठोर थे, वह रूप वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत उतना कटु न था। जन्म के साथ-साथ कर्म और गुण का भी ध्यान रखा जाता था। कुछ विद्वान वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत पाए जाने वाले अन्तर्जातीय विवाह, जाति-परिवर्तन आदि के दो-चार उदाहरण प्रस्तुत करके यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि वर्ण-व्यवस्था वर्ग-व्यवस्था के ही समान थी और उसमें पूर्ण खुलापन भी था। दस-पन्द्रह उदाहरण जो इस मत के पक्ष में प्रस्तुत किए जाते हैं, वे अपवाद ;मगबमचजपवदेद्ध भी हो सकते हैं और अपवाद सामान्य नियम कदापि नहीं हो सकता। स्मरण रहे कि अन्तर्जातीय विवाह या जाति-परिवर्तन के दस, पन्द्रह या बीस उदाहरण जाति-प्रथा के इतिहास के किसी भी युग में ढूँढ़े जा सकते हैं, चाहे वह भगवान् श्रीकृष्ण का युग हो या राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का युग। इसका कारण भी स्पष्ट है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था चाहे वह जाति-प्रथा हो या वर्ग-व्यवस्था पूर्णतया बन्द या पूर्णतया खुली हो ही नहीं सकती है। पूर्णतया बन्द जाति-प्रथा भी भारत में कभी थी, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। उसी प्रकार पूर्णतया खुली वर्ग-व्यवस्था दुनिया के किसी समाज में है यह सोचा भी नहीं जा सकता। अतः यदि यह मान भी लिया जाए कि वर्ण-व्यवस्था कर्म और गुण पर आधारित थी तो हम

कह सकते हैं कि कर्म और गुण पर आधारित वर्ण-व्यवस्था का जन्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। यह सोचना अवैज्ञानिक होगा और साथ ही जन्म पर आधारित जाति-प्रथा में आज गुण और कर्म का कोई भी महत्व नहीं है यह निष्कर्ष भी अनुचित और सत्यता से परे है।

कुछ भी हो, इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि वर्ण-व्यवस्था ने समाज को विभिन्न समूहों में बाँट दिया था और इन समूहों में ऊँच-नीच का एक संस्तरण भी था। इस दृष्टिकोण से वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा का एक प्रारम्भिक या प्राथमिक रूप था। इसी वर्ण-व्यवस्था के तत्त्वों के साथ जब विभिन्न प्रजातियों और संस्कृतियों का एक ओर मिलन और दूसरी ओर संघर्ष हुआ और रक्त की शुद्धता, धार्मिक पवित्रता व अपवित्रता आदि के विचारों को सामाजिक विभाजन में छढ़तापूर्वक लागू किया गया तो उसी वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप दिन-प्रतिदिन बदलता रहा और काफी समय के पश्चात् ही भारतीय जाति-प्रथा के सभी लक्षण स्पष्ट हो सके। इस अर्थ में, भारतीय जाति-प्रथा का विकास हुआ है, जन्म या उत्पत्ति नहीं।

11.4.2. जाति-व्यवस्था में वर्तमान परिवर्तन व विघटन

अंग्रेजी राज्यकाल से लेकर अब तक पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से और साथ ही नई आर्थिक व्यवस्था, यातायात और संचार से साधनों में उन्नति, नगरों का प्रभाव, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जाति-प्रथा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने जाति-पाँति के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु वारेन हेस्टिंग्ज महला गवर्नर जनरल था जिसने इस विषय को भी नहीं छोड़ा। सन् 1850 में 'जाति-अनर्हता उन्मूलन अधिनियम' जाति-प्रथा के प्रभावों को रोकने के लिए सरकार का पहला कदम था। सन् 1829 में राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से बंगाल में 'बंगाल सती नियम' पारित हुआ था। सन् 1860 में बाल विवाह को रोकने के लिए सबसे पहला अधिनियम पारित किया गया, जिसमें लड़कियों के विवाह की आयु कम-से-कम 10 वर्ष रखी गई। सन् 1872 के 'विशेष विवाह अधिनियम' 1872 के द्वारा अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति दे दी गई। सन् 1955 में 'हिन्दू विवाह अधिनियम' 1955 पारित हुआ, जिसके अनुसार विवाह-सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध उठा लिए गए।

11.4.3. स्वतन्त्रता पश्चात् जाति व्यवस्था का स्वरूप

स्वतन्त्र भारत के संविधान ने जाति-पाँति के भेद और छुआछूत को बिल्कुल ही समाप्त कर दिया, जिससे जाति-प्रथा के परम्परागत स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में गाँधीजी के हरिजन आन्दोलन और काँग्रेस सरकार की नीति ने काफी योगदान दिया। शिक्षा और यातायात के साधनों में उन्नति, औद्योगीकरण और नगरीकरण ने पेशा, खाने-पीने और विवाह-सम्बन्धी सभी प्रबन्धों को अत्यधिक निर्बल कर दिया है। इस सम्बन्ध में उन कारकों की विस्तृत विवेचना आवश्यक है जिनके कारण आधुनिक युग में जाति-प्रथा निर्बल हो रही है और इसके स्वरूप में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं।

11.4.4. स्वतन्त्रता पश्चात् जाति व्यवस्था का विघटन के कारण

जाति-प्रथा को निर्बल या विघटित करने वाल तत्व या जाति-प्रथा में आधुनिक परिवर्तन के कारक

पाश्चात्य शिक्षा- अंग्रेजों के आने से पहले भारत में शिक्षा का आधार मूल रूप से धार्मिक था और वह भी केवल ऊँची जातियों तक ही सीमित था। इससे जाति-प्रथा को बल ही मिलता रहा, परन्तु अंग्रेजों ने भारत में ऐसी शिक्षा का प्रचलन किया जो पूर्ण रूप से धर्म-निरपेक्ष थी और जिसके माध्यम से हमारा सम्पर्क दुनिया से बढ़ता ही

गया। परिणामस्वरूप समानता, मित्रता और स्वतन्त्रता की विचारधाराएँ पनपीं और जाति-प्रथा दिन-प्रतिदिन निर्बल होती गई।

प्रोद्योगिक उन्नति- औद्योगिक उन्नति के साथ ही अधिकाधिक नगरों का विकास हुआ तथा विविध प्रकार के व्यवसाय तथा अनेक मिल, कारखाने आदि स्थापित हो गए। इन मिल, कारखानों तथा दफ्तरों में सभी जाति के लोगों को एक साथ मिलकर काम करना होता है। इनमें जाति-प्रथा के अनुसार न तो श्रम-विभाजन या पेशों का विभाजन होता है और न ही ऐसा होना सम्भव है। इससे एक ओर छुआछूत की भावना और दूसरी ओर पेशा-सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिन-प्रतिदिन दूर हटते जा रहे हैं। साथ ही नगरों की जनसंख्या की बहुलता के बीच, जहाँ न तो पड़ोसी, न परिवार, न पंचायत का दबाव होता है, जाति-प्रथा का शिथिल पड़ना स्वाभाविक ही है।

धन का महत्व- आज जाति से कहीं ज्यादा धन का महत्व है। एक निर्धन ब्राह्मण से एक चर्मकार पूँजीपति या मन्त्री का सम्मान हीं अधिक है। आधुनिक युग में जन्म के आधार पर नहीं, धन या व्यक्तिगत गुणों और विशेषताअें के आधार पर सामाजिक पद और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस कारण स्वभावतः ही हम जाति-प्रथा से दूर होते जाते हैं।

स्त्रियों की शिक्षा और अधिकार- पहले बाल-विवाह के कारण स्त्रियों के व्यक्तित्व की जड़ ही कट जाती थी। पर्दा-प्रथा, विधवा-विवाह पर प्रतिबन्ध आदि प्रथाएँ भी व्यक्तित्व के विकास में भारी रुकावट थीं, परन्तु आज महिला आन्दोलन का विस्तृत रूप हमारे सामने है। वे आज शिक्षित हो रही हैं, पर्दे का त्याग हो रहा है, विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार है, प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं और पुरुषों के साथ ही वे आज प्रत्येक क्षेत्र में मिलकर काम कर रही हैं। इससे देर से विवाह, अन्तर्जातीय विवाह और प्रेम-विवाह की ओर मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है जो जाति-प्रथा को अति निर्बल करती है।

यातायात और संचार के साधनों में उन्नति- यातायात के साधनों मे उन्नति होने से सामाजिक गतिशीलता ही नहीं बढ़ती, बल्कि नए-नए नगरों, उद्योगों, व्यवसायों, मिल और कारखानों की भी उत्पत्ति और विकास होता है। इससे विभिन्न प्रकार के जाति, धर्म, प्रदेश और देश के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित होता है और परस्पर विचार-विनिमय होता है। लोग दुनिया की पृष्ठभूमि पर आलोचना करते हैं, उनमें समानता की भावना जाग्रत होती है, उनकी संकुचित विचारधारा और दृष्टिकोण का अन्त होता है और उसी के साथ जाति-पाँति की कठोरता का भी। साथ ही टे"न, बस आदि मे सब जाति के लोगों का एक साथ यात्रा करना भी खाने-पीने के बन्धनों और छुआछूत से मुक्त करने में सहायक होता है।

प्रजातन्त्रीय सिद्धान्त और वैज्ञानिक ज्ञान- आज प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ये सिद्धान्त इस बात पर बल देते हैं कि जन्म और परिवार के आधार पर ऊँच-नीच का विभाजन उचित नहीं है। इससे जाति-प्रथा की असमानता और शोषण नीति को भारी धक्का पहुँचता है। साथ ही, विभिन्न प्रजाति, समूह आदि के सम्बन्ध में आधुनिक ज्ञान के आधार पर आज हमें यह विश्वास होता जा रहा है कि विभिन्न समूहों में ऊँच-नीच का भेद-भाव, शुद्धता-अशुद्धता की धारणा मनुष्य का अपना मनगढ़न्त विचार था और उसका कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है। इस ज्ञान ने भी जाति-प्रथा को निर्बल बनाने में काफी योग दिया है।

धार्मिक आन्दोलन- कुछ धार्मिक आन्दोलनों ने भी जाति-प्रथा को काफी धक्का पहुँचाया है। इसमें बंगाल में ब्रह्म समाज, बम्बई में प्रार्थना-समाज और पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आर्य-समाज द्वारा आयोजित आन्दोलन या प्रचार कार्य उल्लेखनीय हैं। ये सभी पाश्चात्य सामाजिक मूल्यों और ईसाई धर्म की समानता के सिद्धान्त से प्रभावित थे।

इन समाजों ने जाति-प्रथा के अन्तर्गत छुआछूत, भेद-भाव और ब्राह्मणों की कट्टरता का घोर विरोध किया, जिससे जाति-प्रथा की दृढ़ता कम होती गई। बाद में रामकृष्ण मिशन ने भी इस आन्दोलन में योग दिया। आज भी वह इस ओर प्रयत्नशील है।

राजनीतिक आन्दोलन- राजनीतिक आन्दोलन के क्षेत्र में भी, विशेषकर जब से उसमें महात्मा गाँधी ने प्रवेश किया, जाति-पाँति के भेद-भाव को दूर करने का एक सचेत प्रयत्न होता रहा। राजनीतिक आधार पर गाँधीजी का हरिजन आन्दोलन इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। राजनीतिक नेताओं के आह्वान से विभिन्न भाषा-भाषी, धर्म और जाति के लोग एक ही तिरंगे झण्डे के नीचे एकत्रित हुए, हाथ से हाथ और कन्धे से कन्धा मिलाकर सत्याग्रह किया, जुलूस निकाला, पुलिस के अत्याचार सहे और जेल गए। इनमें से किसी में भी न तो ऊँच-नीच का प्रश्न था और न ही जाति-पाँति के आधार पर भेद-भाव। जेल में एक साथ रहते हुए भोजन सम्बन्धी जातीय नियमों का भी पालन सम्भव न था।

सरकारी प्रयत्न- जाति-प्रथा के दुष्परिणाम से जनता की रक्षा करने के लिए सरकार की ओर से भी अनेक प्रयत्न हुए हैं। जाति-प्रथा विरोधी अनेक अधिनियम, जिनके विषय में ऊपर बताया जा चुका है, बनाये गए। 'हिन्दू-विवाह वैधकरण अधिनियम' 1949 में पारित हुआ। इसने इस अधिनियम के पारित होने के पहले और बाद में होने वाले विभिन्न धर्मों, जातियों और उपजातियों एवं सम्प्रदायों के व्यक्तियों में होने वाले विवाह को वैध कर दिया है। सन् 1954 के 'विशेष विवाह अधिनियम' 1954 ने अन्तर्जातीय विवाहों की वैधानिक अड़चनों को दूर कर दिया है। यह अधिनियम सन् 1872 के अधिनियम का ही विस्तृत रूप है। अस्पृश्यता दूर करने के लिए सन् 1955 का 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' 1955 सबसे पहला कानूनी कदम है, जिसके द्वारा हरिजनों की मरम्मत निर्योग्यताओं को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार, राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। अनुच्छेद 17 के अनुसार, अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। इन समस्त सरकारी प्रयत्नों ने जाति-प्रथा की दृढ़ता को कितना दुर्बल बना दिया है, इस बात को समझाने की शायद आवश्यकता नहीं। नागरिक संरक्षण अधिनियम, 1989 ने भी जाति-प्रथा के बन्धनों को काफी सीमा तक समाप्त कर दिया है।

11.5. सारांश

आधुनिक भारत के सामाजिक पुनर्रचना प्रयासों के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक बुराईयों का सम्यक बोध एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु था। लिंगभेद की पतित स्थिति एवं जाति प्रथा समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं वाह्य आडम्बर को दर्शाता है।

11.8. संदर्भ - ग्रंथ

(1) बी. डी. महाजन - आधुनिक भारत का इतिहास

(2) वी. एल. ग्रोवर - आधुनिक भारत का इतिहास

(3) डॉ. संजीव जैन - आधुनिक भारत का आर्थिक एवं राजनैतिक इतिहास

(4) डॉ. एस. आर. वर्मा - भारत का इतिहास

(5) डॉ. ए. के. मित्तल - आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
(6) आर. एल. शुक्ल - आधुनिक भारत का इतिहास
(7) हरीश कुमार खत्री - आधुनिक भारत का इतिहास
(8) पी. एल. गौतम - आधुनिक भारत
(9) एल. पी. शर्मा - आधुनिक भारत
(10) सूमित सरकार - आधुनिक भारत
(11) पुखराज जैन - स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास

11.9. अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) लिंगभेद के कारण एवं परिणामों की विवेचना करें?
(2) लिंगभेद को समाप्त करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका की विवेचना करें?
(3) भारत में जाति-प्रथा के विकास के कारणों की विवेचना करें?
(4) भारत में प्रचलित जाति-प्रथा के कुप्रभावों की विवेचना करें?
(5) स्वतंत्रता पश्चात् जाति-प्रथा के विघटन के कारणों की विवेचना करें।

इकाई बारह : समकालीन भारत की चुनौतियाँ

12.1 परिचय

12.2 उद्देश्य

12.3 आर्थिक चुनौतियाँ

12.4 महिलाओं की स्थिति

12.5 भारतीय लोकतंत्र

12.6 पर्यावरण अवक्रमण और प्रदूषण

12.7 आतंकवाद

12.8 भ्रष्टाचार

12.9 राष्ट्रीय एकता

12.10 साम्प्रदायिकता

12.11 नशे की लत

12.12 उपसंहार

12.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.14 अनुशंसित साहित्य

12.15 पाठ्यान्त प्रश्न

12.1परिचय

इस यूनिट का उद्देश्य समकालीन भारत में उभरी कुछेक महत्वपूर्ण चुनौतियों पर चर्चा करना है। इस यूनिट में न केवल इन चुनौतियों का वर्णन करने बल्कि इन्हें इनके ऐतिहासिक संदर्भ में स्थापित करने का भी प्रयास किया गया है। ये चुनौतियाँ और इनसे निपटने के तरीके इस यूनिट के केन्द्र बिन्दु रहेंगे।

समकालीन भारत की सामान्य समझ से भी आपको इस जानकारी को एक खास तरीके से प्रमाणित करने में सहायता मिलेगी। ऐतिहासिक घटनाक्रमों के बारे में आपकी पूर्व-समझ को, एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक फ्रेमवर्क प्रदान करने के लिए इन चुनौतियों पर विचार-विमर्श किया गया है।

चूंकि इनमें से अनेक चुनौतियाँ समकालीन राजनीति, अर्थनीति, समाज और संस्कृति के लिए प्रासंगिक मुद्दों से जुड़ी है, अतः उम्मीद है कि विद्यार्थीगण इन चुनौतियों को तत्कालीन परिस्थितियों से जोड़ सकेगें। इसके अलावा, संसाधनों और अवसरों की अत्यन्त कमी के बावजूद भारत में सकारात्मक घटनाक्रमों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा। यह समझना होगा कि लगभग 200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन की वजह से भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा संस्कृति का अपस्रजन और अपकर्ष हुआ। यह ध्यान रखें, कि भारत को आजाद हुए अभी केवल 70 वर्ष हुए हैं और उसने अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है।

12.2 उद्देश्य

- समसामयिक या समकालीन भारत में गरीबी, बेरोजगारी, सूखा, भुखमरी, कुपोषण और किसानों की आत्महत्या जैसे आर्थिक मुद्दों पर विमर्श करना। समाज में विषमताओं पर चर्चा करना और समानता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास लक्ष्य हासिल करने की आवश्यकता बताना। साथ ही, एक चुनौती के रूप में निरक्षता के मुद्दे तथा हमारे देश के विकास में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, इस मुद्दे पर चर्चा करना।
- महिलाओं की सुरक्षा, घरेलू हिंसा, दहेज, महिलाओं के खिलाफ अपराध, महिलाओं अश्लील रूप से प्रदर्शित करने से जुड़ी समस्याओं आदि जैसे सर्वोच्च मुद्दों पर चर्चा करना। बच्चे तथा वृद्ध लोग जैसे कमजोर समूहों से जुड़े मुद्दों पर परिचर्चा करना।
- भारत में लोकतंत्र की भूमिका और संकटकालीन परिस्थितियों में देश के अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोकतांत्रिक साधनों पर विचानविमर्श करना।-
- चूंकि ग्लोबल वार्मिंग या जलवायु परिवर्तन, नदियों में प्रदूषण, वनों की कटाई, जैसे मुद्दे न केवल वनस्पतियों और वन्यअस्तित्व के लिए भी -की अनेक प्रजातियों के लिए बल्कि मानव प्राणियों- खतरा बन गए हैं, अतः वर्तमान में पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं का उल्लेख करना। हवा, पानी और

ध्वनि प्रदूषण पर विचारविमर्श करना। साथ ही-, ऐसे मुद्दों की व्यापकता और इनके प्रति मानवीय संवेदनहीनता पर विचार करना।

- आतंकवाद और आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े मुद्दों की व्याख्या करना। ऐसी गतिविधियों से निपटने और ऐसी परिस्थितियों में जनसाधारण की दुर्बलता पर चर्चा करना।
- भ्रष्ट व्यवहार से जुड़े अनियंत्रित भ्रष्टाचार और समस्याओं का विश्लेषण करना।
- वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में राष्ट्रीय एकता के मुद्दे और राष्ट्रीय एकता के लिए यह किस प्रकार एक चुनौती है, इस पर प्रकाश डालना।
- साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक असहिष्णुता और यह प्रवृत्ति किस प्रकार समाज का समाधानहीन - विभाजन कर सकती है, इस पर चर्चा करना।
- नशे की लत से जुड़ी समस्याओं और समाज को इससे होने वाले नुक्सान के बारे में बताना।

12.3 आर्थिक चुनौतियाँ

भारत लगभम 200 वर्षों तक औपनिवेशिक शासन के आधीन रहा। औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ कर रख दी थी। इस शासन ने अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों, कृषि, उद्योग आदि के विकास को बाधित किया। इसने बेरोजगारी और बेकारी को जन्म दिया। बढ़ती गरीबी तथा अमीर और गरीब के बीच दिन पर दिन चौड़ी होती खाई, भूखमारी और कुपोषण का कारण बनी। भारत में, बच्चों में कुपोषण खतरनाक स्तर पर है। यह भी पता लगा है कि किशोर आबादी भी कुपोषण का शिकार हो रही है।

किसानों के सामने एक और बड़ी चुनौती सूखा है। किसानों की मेहनत की कमाई कृषि कार्यों में खर्च हो जाना और फसल खराब हो जाने की वजह से खुद का पेट पालना भी मुश्किल हो जाना, भारतीय कृषि की एक और दुखद गाथा है। किसानों द्वारा आत्महत्या की बढ़ती संख्या कृषि क्षेत्र में खराब कार्य-योजना को दर्शाता है। हालांकि सरकार ने किसानों को ऋण उपलब्ध कराने के लिए अनेक स्कीमें शुरू की हैं। लेकिन इन कदमों का कार्यान्वयन एक ऐसा पहलू है, जिसकी गहराई से पड़ताल होनी चाहिए।

बढ़ती जनसंख्या से कृषि, खनिज, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ा है। इन संसाधनों को हासिल करने की होड़ में खींचा-तानी इसका उदाहरण है। संसाधनों की बरबादी तथा कुप्रबंधन भी काफी दबाव डालता है और तनाव तथा विवादों का कारण बनता है। संसाधनों का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करना, ताकि विवादों से बचा जा सके, एक बड़ी चुनौती है।

भारत की आजादी के समय देश में साक्षरता स्तर काफी कम था। शोषणकारी औपनिवेशिक सत्ता ने शिक्षा के ढांचे को तहस-नहस कर दिया था। आजादी के समय देश में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के संस्थानों की भारी कमी थी। भारत सरकार द्वारा तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) और भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम) खोले जाने से इन क्षेत्रों में थोड़ा सुधार हुआ। लेकिन ऐसे संस्थानों में दाखिले की मांग

हमेशा अपेक्षाकृत ज्यादा बनी रही। सरकार ने और भी कई संस्थान खोले और यहाँ तक कि निजी क्षेत्र को भी शिक्षा में सहभागिता की अनुमति दी गई। पिछले कुछ समय से, चिकित्सा, अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) और प्रबंधन (मैनेजमेंट) जैसे व्यावसायिक क्षेत्रों में निजी संस्थानों की भरमार से शिक्षा के स्तर में गिरावट आई। हद तो तब हुई जब इन संस्थानों से शिक्षा प्राप्त पेशेवर रोजगार पाने में असफल रहे। भारतीय उद्योगों की हमेशा शिकायत रही है कि उन्हें कुशल या हुनरमंद कामगार नहीं मिलते हैं, इसके बावजूद इन डिग्री-धारकों को उद्योगों में काम के काबिल नहीं माना गया। हांलिया वर्षों में, स्थिति इतनी खराब हो गई है कि इन संस्थानों को छात्र ही नहीं मिल रहे हैं। स्थिति सुधारने के लिए सुधारात्मक उपायों की जरूरत है। नीति-निर्माताओं और सरकार को चाहिए कि वह इस मुद्दे पर गम्भीरता से पुनर्विचार करे।

अभ्यास: सही या गलत।

1.भारत में, बच्चों में कुपोषण खतरनाक स्तर पर है।

2.किसानों में आत्महत्या की संख्या में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में अच्छी कार्य-योजनाओं को दर्शाती है।

3.भारत की आजादी के समय देश में साक्षरता का स्तर काफी कम था।

4.भारत सरकार द्वारा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) तथा भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम) खोले जाने के बाद कोई प्रगति नहीं हुई।

उत्तर: 1. सही 2. गलत 3. सही 4. गलत

12.10 महिलाओं की स्थिति

समाज में महिलाओं की स्थिति और सुरक्षा भी सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। हालांकि, संविधान द्वारा महिलाओं को मताधिकार और मूल अधिकारों तथा दिशा निर्देशी सिद्धान्तों द्वारा समानता और स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है, इसके बावजूद समाज में उनकी स्थिति और ज्यादा सुधार की अपेक्षा रखती है। आजादी के 70 वर्ष बाद भी वे सड़कों पर सुरक्षित नहीं हैं। दहेज की मांग और मांग पूरी न होने पर उनके खिलाफ हिंसा अनेक भारतीय महिलाओं के लिए एक दुखद कहानी है। पति और ससुराल पक्ष द्वारा महिलाओं के साथ हिंसा एक और मुद्दा है। जिस पर मनन करना आवश्यक है।

सिनेमा, टेलीविजन तथा मीडिया में महिलाओं को अभद्ररूप से प्रस्तुत करना, स्पष्ट नजर आता है। महिलाओं को पुरूषों के उपभोग की वस्तु के रूप प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की प्रस्तुति और प्रदर्शन में तत्काल बदलाव लाने की जरूरत है, तभी जनसाधारण की सोच में बदलाव आयेगा।

नवजात कन्या की हत्या की कुप्रथा विगत में प्रचलित थी, इसकी जगह अब कन्या-भ्रूण हत्या ने ले ली है। प्रौद्योगिकी ने महिला हत्यारों को एक ऐसा हथियार दे दिया है, जिससे वे गर्भ में ही कन्या की हत्या कर देते है। इस संवेदनहीनता और नृशंसता के परिणाम-स्वरूप भारत के कई राज्यों में महिला-पुरूष अनुपात विकृत हो गया है। महिला-पुरूष

अनुपात में गिरावट की वजह से पुरूषों को विवाह के लिए वधू नहीं मिल रही हैं। सरकार ने अस्पतालों और डिस्पेंसरियों में भ्रूण का लिंग बताने पर प्रतिबंध लगा कर इस दिशा में प्रयास किए हैं। इसे एक दण्डात्मक अपराध घोषित कर दिया गया है। इसके बावजूद, समाज में अनेक तत्व ऐसे शर्मनाक कृत्य में अभी भी शामिल हैं। एक दूसरी चुनौती, बच्चों और वृद्धों जैसे कमजोर समूहों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है। भारत में बहुत से अनाथ बच्चे है। अनाथ बच्चे अपराधियों और असामाजिक तत्वों का आसानी से शिकार बन जाते हैं। उन्हें बहुत से अमानवीय कार्य करने के लिए मजबूर किया जाता है। गरीबी से ग्रस्त इन बच्चों से कम मजदूरी पर लम्बे समय तक काम कराया जाता है। इन बच्चों को प्यार, देखभाल, शिक्षा तथा फलने-फूलने के लिए बेहतर सुविधाओं की आवश्यकता है। हालांकि सरकार ने अनेक अनाथालय खोले है, लेकिन इससे समस्या का समाधान नहीं हुआ है। अनेक गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) ने भी इस दिशा में शानदार कार्य किया है। कैलाश सत्यार्थी को ''बच्चों और किशोरों के दमन के खिलाफ संघर्ष तथा बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार'' हेतु 2014 में नोबेल पुरस्कार से सम्मनित किया गया है। बच्चों के अधिकार सुरक्षित करने में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए दिया गया यह सम्मान, इस क्षेत्र में कार्यरत असंख्य कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनका बचपन बचाओ आन्दोलन प्रत्येक बच्चे का बचपन सुरक्षित करने की दिशा में एक कदम है।

एक दूसरी चुनौती है, वृद्धजनों की सुरक्षा सुनिश्चित करना। स्व-केन्द्रित परिवारों (न्यूक्लीयर फैमिलीज) के बढ़ते प्रचलन के कारण परिवार के वयोवृद्ध अपने आपको हाशिये पर पड़ा पाते है। कई बार, उन्हें अपना जीवन-बोझ स्वयं उठाना पड़ता है, क्योंकि उनके बच्चे उनके साथ नहीं रहते। इससे उनकी स्थित और ज्यादा नाजुक हो जाती है, क्योंकि उनमें अपनी रक्षा की क्षमता कम होती है। पुलिस तथा कुछ अन्य एजेंसियों ने ऐसे कार्यक्रम शुरू करने के प्रयास किए हैं, जिनके तहत इन वृद्धजनों पर किसी-न-किसी रूप में कुछ ध्यान दिया जाएगा नेबर-हुड वाच (पड़ोसी की निगरानी) ऐसा ही एक कार्यक्रम है। वृद्धजनों को आपराधिक तत्वों से बचाने के लिए, विभिन्न बस्तियों में क्लोज सर्किट टेलीविजन कैमरा (सीसीटीवी) लगाना भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अभ्यास: सही या गलत।

1.दहेज की मांग और मांग पूरी न होने पर महिलाओं के खिलाफ हिंसा, अनेक भारतीय महिलाओं के लिए एक दुखद कहानी है।

2.सिनेमा, टेलीविजन तथा मीडिया में महिलाओं को अभद्र रूप से प्रस्तुत करना स्पष्ट नजर आता है।

3.नवजात कन्या की हत्या की कुप्रथा विगत में प्रचलित थी, इसकी जगह अब कन्या-भ्रूण हत्या ने ले ली है।

4.कैलाश सत्यार्थी को ''बच्चों और किशोरों के दमन के खिलाफ संघर्ष तथा बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार'' के लिए वर्ष 2014 में नोबेल पुरस्कार से सम्भावित किया गया था।

उत्तर: 1. सही 2. सही 3. सही 4. सही

12.11 भारतीय लोकतंत्र

भारतीय राजनीति का एक सबसे उल्लेखनीय पहलू इसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था रहा है। इसलिए, भारतीय संदर्भ में, सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक परम्पराओं का संरक्षण है। अभी तक, इस संदर्भ में, शासन के सभी स्तरों पर भारत ने काफी परिपक्वता का परिचय दिया है। इसके वावजूद, स्वतंत्र सोच और अभिव्यक्ति के शत्रुओं द्वारा इन परम्पराओं को समाप्त करने का खतरा हमेशा बना रहा है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवाज उठाने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में गहरा विश्वास और सभी को समान अवसर प्रदान करना लोकतांत्रिक परम्पराओं की आधारशिला है। लोकतंत्र को अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने नागरिकों की उस सरकार के रूप में व्यक्त किया था जो उस देश के नागरिकों द्वारा नागरिकों के लिए चुनी जाती है (ऑफ दी पीपुल, बाई दी पीपुल, फॉर दी पीपुल) लोकतांत्रिक परम्पराओं की आकांक्षा उस राष्ट्रीय आन्दोलन में देखी जा सकती है, जिसमें स्वतंत्रता सेनानियों ने औपनिवेशिक सत्ता से आजादी पाने के लिए संघर्ष किया था। संविधान में भारत को लोकतांत्रिक देश घोषित किया गया है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। यह इस प्रकार की सरकार है जिसमें जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि जनता पर शासन करते है और जहाँ जनता ही सर्वोच्च और सम्प्रभु है। चयन की आजादी लोकतंत्र की धुरी है।

लोकतंत्र निम्नलिखित परिस्थितियों पर निर्भर करता है (क) सभी विचारधाराओं और पार्टियों (दलों) का सह-अस्तित्व (ख) सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (ग) स्वतंत्र संवाद और विचार-विमर्श का अधिकार तथा (घ) मुक्त और निष्पक्ष समयबद्ध (साइक्लिक) निर्वाचन,(ड) नागरिकों के लिए मूल-अधिकार होना।

भारतीय संविधान द्वारा देश को लोकतांत्रिक राष्ट्र घोषित किया गया है। भारत न्याय, उदारता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना से ओतप्रोत एक सम्प्रभु, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र बना। संविधान की प्रस्तावना, राज्य-नीति के दिशा निर्देशी सिद्धान्त, मूलभूत अधिकार और सार्वभौमिक (सभी को) मताधिकार संविधान निर्माताओं के आदर्शों तथा आकांक्षाओं को दर्शाते है। सभी को मताधिकार के आधार पर चुनाव कराए जाते है। सार्वभौमिक मताधिकार के अन्तर्गत, जाति, वर्ग, लिंग, नस्ल और धर्म के आधार पर बिना किसी भेदभाव के 18 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी वयस्कों को मत (वोट) देने का अधिकार दिया गया है।

वयस्क मताधिकार पर आधारित सरकार के प्रतिनिध्यात्मक ढांचे की शुरूआत भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। भारत की राजनीतिक प्रणाली एक बहुदलीय प्रणाली है। चुनावी मुकाबले में अनेक राजनीतिक दल भाग लेते हैं। ‘‘पहले लक्ष्य पार करो‘‘ (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट) वाले इस चुनाव में वह प्रत्याशी जीवता है जिसे अन्य प्रत्याशियों की तुलना में ज्यादा वोट मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, जिस प्रत्याशी को निर्वाचन क्षेत्र में सबसे ज्यादा वोट मिलते हैं, उसे विजेता घोषित किया जाता है, भले ही उस निर्वाचन क्षेत्र में कुल मतदान का प्रतिशत कुछ भी रहा हो। लेकिन, पिछले अनेक वर्षों से राजनीतिक दलों के कुछ प्रत्याशी (उम्मीदवार) भ्रष्टाचार और अवसरवादिता में लिप्त हो गए हैं, इससे राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। इससे कानून और व्यवस्था के लिए समस्या पैदा हुई है क्योंकि कानून तोड़ने वाले संसद और विधान सभाओं की सीटों के लिए चुनाव लड़ते है और इनके चुने जाने से प्रशासन और राजनीति को नुक्सान होता है।

सैद्धान्तिक रूप से, प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार और सुविधाऐं प्राप्त है लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं है क्योंकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में बहुत ज्यादा असमानता व्याप्त है। समाज में असमानता का एक प्रमुख कारण निरक्षरता है। अमीर ओर गरीब के बीच बहुत बड़ी खाई है। अर्थव्यवस्था उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण से जनसमुदाय में आर्थिक असमानता और बढ़ी है। अमीरों द्वारा गरीबों का शोषण एक वास्तविकता है। जहाँ सभी से समानता का व्यवहार हो, ऐसे सर्वनिहित लोकतंत्र के लिए, इन खामियों को दुरूस्त करना होगा।

निरक्षरता, संसाधनों का अभाव, गरीबी और पिछड़ेपन के बावजूद, भारत की राजनीतिक व्यवस्था ने सभी प्रकार के संकटों से निपटने और लोकतांत्रिक परम्पराओं के अनुरक्षण में असाधारण प्रतिकार क्षमता और लचीलेपन का परिचय दिया है।

राजनीतिक स्थिरता बनाए रखना, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की एक और अहम विशेषता रही है। 1970 के दशक के उथल-पुथल भरे वर्ष और 1989 से गठबंधन सरकारों का सिल-सिला भारतीय लोकतंत्र के लिए खतरे के संकेत दे रहा था। इस प्रकार के संकटों के बावजूद, राजनीतिक स्थिरता बनी रही है। भारत के नागरिकों ने संविधान और निर्वाचित सरकारों पर अपना विश्वास कायम रखा है।

सभी ने संविधान के बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। साम्यवाद और सम्प्रदायवाद जैसी विभिन्न राजनीतिक विचाराधाराओं द्वारा भारतीय संविधान को दी गई चुनौतियों से भी संविधान की ताकत से निपटा गया है संविधान के बुनियादी ढांचे: सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिर्पेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र की पुष्टि करने वाली प्रस्तावना (प्रीएम्बल) पर दृण विश्वास ही संविधान की ताकत है। भारतीय संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखने में भारतीय न्याय पालिका की भूमिका और विशेषताएं भी प्रशंसनीय हैं।

अभ्यास: सही अथवा गलत।

1.अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज वांशिगटन ने लोकतंत्र को नागरिकों की उस सरकार के रूप में व्यक्त किया था जो उस देश के नागरिकों द्वारा नागरिकों क लिए चुनी जाती है।
2.भारतीय राजनीतिक प्रणाली बहु-दलीय प्रणाली है।
3.संसद और विधान सभाओं के सदस्य ‘‘पहले लक्ष्य पार करो‘‘ प्रणाली के द्वारा चुने जाते हैं।
4.भारत हरित क्रान्ति के फलस्वरूप खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बना।

उत्तर: 1. गलत 2. सही 3. सही 4. सही

अभ्यास: रिक्त स्थान भरें।

1.भारतीय राजनीति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल, इसकी ..... व्यवस्था रहा है।
2.भारतीय ..... व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता राजनीतिक स्थिरता बनाए रखना रहा है।
3.संविधान की प्रस्तावना इसके बुनियादी ढ़ांचे: सम्प्रभु, ..., धर्मनिर्पेक्ष ..... गणतंत्र की पुष्टि करता है।

3.12पर्यावरण अवक्रमण और प्रदूषण

भारत के संदर्भ में, पर्यावरण अवक्रमण एक ज्वलंत मुद्दा है। गर्मियों में बढ़ता तापमान इस बात का संकेत है कि जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग एक वास्तविकता है, इससे पृथ्वी गर्म हो रही है। भारत में वनों की कटाई भी पर्यावरण के प्रति भारत की उदासीनता का संकेत है। वनों की कटाई के खिलाफ 1973 में चिपको आन्दोलन की शुरूआत, भारत में पर्यावरण से जुड़ी प्रमुख चिन्ताओं की ओर ध्यान खीचने का एक प्रयास था। स्वतंत्र भारत में, सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डीप्रसाद भट्ट, मेघा पाटकर आदि जैसे अनेक कार्यकर्ता पर्यावरणीय सरोकारों का चेहरा बने है। पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न विश्व-स्तरीय सम्मेलनों में भारत की सहभागिता लगातार बढ़ रही है। इसके वावजूद, पर्यावरण संरक्षण में संतोषजनक स्तर प्राप्त करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

प्रदूषण का बढ़ता स्तर, जिसमें वायु, जल, ध्वनि सब कुछ शामिल है, एक प्रमुख समकालीन चुनौती है। सभी जानते है ये सभी प्रकार के प्रदूषण बेताशा बढ़ रहे हैं। अनेक औद्योगिक शहरों और महानगरों में वायु की गुणवत्ता इस हद तक खराब हो गई है कि ऐसे क्षेत्रों में रहना अभिशाप बन गया है। युवाओं और वृद्धों के लिए यह जहरीली हवा स्वास्थ्य के लिए जोखिम बन गई है। अस्थमा जैसी सांस की बीमारी से ग्रस्त लोगों का जीना दूभर हो गया है। दिल्ली जैसे शहरों में, सड़कों पर वाहनों की संख्या कम करने के लिए सरकार को वाहनों की विषम-सम नम्बर प्लेट (ऑड-ईवन नम्बर प्लेट) स्कीम की शुरूआत करनी पड़ी। इससे पहले वायु प्रदूषण को रोकने के लिए शहर में चलने वाली कई फैक्ट्रियों को हटा दिया गया था। इन सबके बावजूद स्थिति नियंत्रण में नहीं है। 2017 में, वायु प्रदूषण इतने खतरनाक स्तर पर पहुँच गया था कि स्कूल बंद करने पड़े थे ताकि स्कूली बच्चे घरों से न निकलें। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में सर्दियों में फसल-अपशिष्ट को जलाने तथा वाहनों के प्रदूषित धूएं की वजह से हर वर्ष यह हालात बनते हैं।

वर्तमान भारत में जल प्रदूषण एक और बड़ी समस्या है। हमारे समाज में नदियों को पवित्र माना जाता है, लेकिन जनसाधारण और औद्योगिक इकाइयाँ जिस प्रकार इनका उपयोग करती है, उस पर पुनः गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। भारत अपने बहुत से नागरिकों को स्वच्छ एवं शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं करा पा रहा है। इन हालातों में, प्रत्येक नागरिक और सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस मुद्दे के लिए कुछ सुनिश्चित कदम उठाए जाएं।

औद्योगिक इकाइयां अपना कचरा जल-निकायों (तालाबों, नदियों, झीलों आदि) में फेंक कर इन्हें प्रदूषित कर रही हैं। हालांकि, सरकार ने ''स्वच्छ यमुना'' और ''स्वच्छ गंगा'' जैसे अभियान शुरू करके इस समस्या से निपटने के लिए विविध कदम उठाए है, लेकिन इनके कोई बहुत उत्साहवर्धक परिणाम नहीं मिले है।

ध्वनि प्रदूषण एक अन्य प्रकार का प्रदूषण है। आम लोगों को इस पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिए। वाहनों द्वारा व्यग्रता से और बेवजह हॉर्न बजाना, लाउडस्पीकरों का बेतहाशा उपयोग और ध्वनि-स्तर के प्रति उदासीनता, चिन्ता के ऐसे ही कुछ विषय है, जिनसे निपटा जाना चाहिए।

अभ्यास: सही अथवा गलत।

1.दिल्ली जैसे शहर में, सड़कों पर वाहनों की संख्या कम करने के लिए वाहनों की विषम-सम नम्बर प्लेट (ऑड-ईवन नम्बर प्लेट) स्कीम की शुरूआत करनी पड़ी थी।

2.समकालीन भारत में जल-प्रदूषण कोई चुनौती नहीं हैं।

3.औद्योगिक इकाइयाँ अपना कचरा जल-निकायों (तालाब, नदियाँ, झील आदि) में फेंक कर इन्हें प्रदूषित करती हैं।

उत्तर: 1. सही 2. गलत 3. सही

12.13 आतंकवाद

वर्तमान समय में, आतंकवाद एक ऐसा मुद्दे है, जिसने सभी का ध्यान खींचा है। भारत और साथ ही पूरे विश्व में आतंकवादी हिंसा की बढ़ती घटनाओं ने सर्व-साधारण में असुरक्षा की भावना पैदा कर दी है। भारत में, आबादी तथा इसका घनत्व बहुत अधिक होने से, हालात कुछ ज्यादा ही जटिल हैं। सुरक्षा में ढ़ील, गरीबी तथा सुरक्षा अभियानों में टैक्नॉलॉजी का कम इस्तेमाल भी इस जटिलता के कारणों में शामिल हैं।

आतंकवादी हिंसा में अनेक सुरक्षा कर्मियों और नागरिकों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। अलग-अलग समय में मुम्बई बम धमाके (1991), दिल्ली में बम विस्फोट, भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला, मुम्बई के विक्टोरिया टर्मिनले स्टेशन, ताज होटल में आतंकवादी हिंसा जैसी हालिया आतंकवादी घटनाओं ने ऐसे कृत्यों से स्वयं देश की रक्षा करने में सरकार की क्षमताओं पर जनता के विश्वास को हिला दिया है।

सुरक्षा के मुद्दे के अलावा, अपने प्रियजनों की मृत्यु ने आतंकवादी हिंसा से पीड़ित परिवारों के जीवन में एक स्थाई शून्यता पैदा कर दी है। ऐसे भी कई मामले हैं, जहाँ आतंकवादी हिंसा में मारे गए लोग, अपने परिवार के एकमात्र कमाऊ सदस्य थे और अब इन परिवारों का भरण-पोषण कठिन हो गया है। संकट की इस घड़ी में इन परिवारों को सरकार द्वारा राहत न पहुँचा पाना भी आम होता जा रहा है। इन परिस्थितियों तथा इनसे उत्पन्न विपत्तियों से निपटने में नौकरशाही और पूरी प्रशासनिक व्यवस्था की अक्षमता, नागरिकों की सुरक्षा और कल्याण के संदर्भ में कार्यप्रणाली की लचर हालत दर्शाती है।

आतंकवादी हिंसा विषय पर आधारित अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ है। ए वेडनस डे (2008), बेबी (2015), फिज़ा (2000), ज़मीन (2008) आदि ऐसी ही कुछ फिल्में हैं, जिन्हें लोगों ने खूब पसंद किया है। ये फिल्में आतंकवादियों और भारत को अस्थिर करने में जुटे उनके विदेशी आकाओं के बीच रिश्तों को उजागर करती हैं। आजकल यूरोप और अमरीका सहित दुनियाँ के अन्य हिस्सों में आतंकवादी हिंसा भी प्रमुख चिन्ता का कारण बनी है।

अभ्यास: रिक्त स्थान भरें।

1.भारत में, अधिक आबादी, आबादी का उच्च ..... सुरक्षा में ढील, गरीबी तथा सुरक्षा अभियानों में टैक्नॉलॉजी का ..... इस्तेमाल के कारण हालात अपेक्षाकृत जटिल हैं।

2.अलग-अलग समय पर ..... में बम धमाके (1993), दिल्ली में बम विस्फोट, भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला और मुम्बई में ..... टर्मिनस स्टेशन तथा ताज होटल में आतंकवादी हिंसा आदि आतंकवादी कृत्यों के कुछ ताजा उदाहरण है।

3..... हिंसा विषय-वस्तु पर बनी कुछ फिल्में है ए वेडनस डे (2008), बेबी (2015), फिजा (2000), ज़मीन (2003) आदि।

12.14 भ्रष्टाचार

वर्तमान भारत में, सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार समाज के लिए एक और बड़ी चुनौती है। यह दलील दी जाती है कि भ्रष्टाचार की वजह से सबसे ज्यादा नुक्सान विकास को पहुँचता है। भारत के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व0 श्री राजीव गाँधी ने यह स्वीकार किया था कि सरकार द्वारा विकास पर व्यय किए गए एक रूपये में से सरकारी मशीनरी में भ्रष्टाचार की वजह से केवल रंच मात्र ही लक्षित बिन्दु तक पहुँचता है। यह भारतीय सामाजिक जीवन का एक अभिशाप है। भ्रष्टाचार की वजह से भारत में कारोबार करना भी कठिन हो गया है। भारत में कारोबारी उद्यम शुरू करने में विलम्ब और बाधायें भी भ्रष्टाचार के मुद्दे से जुड़ी है। सरकारी एजेंसियों और दलालों के बीच मिली-भगत पारदर्शी और स्वच्छ प्रशासन के लिए खतरा है।

इसके अलावा, एजेंसियों द्वारा नागरिकों को बनी सेवाएं, इस प्रकार दी जाती हैं, जैसे उन पर एहसान किया जा रहा हो और इस अहसान का बदला लेना उनका हक है, जबकि ये सेवाएं प्राप्त करना नागरिक का हक है। ऐसे माहौल में भ्रष्टाचार पनपता है। इसके अलावा विभिन्न घोटालों और अपकृत्यों में राजनेताओं की संलिप्तता राजनीतिक प्रतिष्ठानों की कलंकित तस्वीर पेश करती है। न्यायपालिका के स्तर पर फैसलों में विलम्ब इस समस्या को और भी विकराल बना देता है। कहावत है - न्याय में विलम्ब भी न्याय वंचन के समान है।

अभ्यास: रिक्त स्थान भरें।

1.भारत के एक भूतपर्व प्रधानमंत्री ..... ने स्वीकार किया था कि, विकास पर व्यय किए गए एक रूपये का रंचमात्र ही लक्षित बिन्दु तक पहुँचता है और इसका कारण सरकारी एजेंसियों में व्याप्त भ्रष्टाचार है।

2.विभिन्न ..... और अपकृत्यों में राजनेताओं की संलिप्तता ..... प्रतिष्ठानों की कलंकित तस्वीर पेश करती है।

12.15 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता बनाए रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जैसा कि हम सभी जानने हैं, भारत अनेक-भाषाओं, अनेक-क्षेत्रों, अनेक-धर्मों, अनेक-जातियों, अनेक-संस्कृतियों वाला समाज है, इसलिए हर समय एकजुटता बनाए रखना थोड़ा कठिन हो जाता है। राष्ट्रीय एकता के लिए जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा और संस्कृति के नाम पर विवादों के रूप में अनेक खतरे विद्यमान हैं।

इन सबके बावजूद भारत ने अभी तक अपनी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखा है। विभिन्न राज्यों के बीच विषमताओं के बावजूद स्थिति हमेशा नियंत्रण में रही है। अनेक क्षेत्रीय पार्टियों अथवा किसी एक राज्य पार्टी का राज्य में दबदबा रहा है। इन दलों ने अनेक बार राष्ट्रीय स्तर की पार्टियों के साथ गठबंधन से केन्द्र में भी सत्ता का आनन्द लिया है। अनेक बार ये दल अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय दलों के साथ गठबंधन के भी अंग रहे है।

साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। भारत एक धार्मिक विविधता वाला देश है। यदि विभिन्न धार्मिक मान्यताओं वाले लोग शान्ति और सद्भाव के साथ मिल कर रहेंगे, तब ही भारत विकास करेगा और समृद्ध बनेगा। अनन्तकाल से मिली-जुली संस्कृति भारतीय सभ्यता की पहचान रही है। भारत की सांस्कृतिक विरासत तभी संरक्षित रह सकती है, जब हमारी सभ्यता की धर्मनिरपेक्ष परम्परा को विकसित और पल्लवित होने का अवसर दिया जाय। इसके अलावा जनसाधारण में यह विश्वास पैदा करना होगा कि धार्मिक सहनशीलता और एक दूसरे के धर्म के प्रति सम्मान के द्वारा ही भारत के बहुलवाद को बनाए रखा जा सकता है।

अभ्यास: सही अथवा गलत।

1.भारत अनेक भाषा, क्षेत्र, धर्म, जाति एवं संस्कृतियों वाला समाज है।

2.भारत की राष्ट्रीय एकता को जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, और संस्कृति के नाम पर विवाद के रूप में अनेक खतरे हैं।

3.राष्ट्रीय एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा साम्प्रदायिकता है।

उत्तर: 1. सही 2. सही 3. सही

12.10 साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता शब्द का बहुधा उपयोग होता है। यह शब्द बड़ा आसान या निश्छल प्रतीत होता है, लेकिन यह अत्यन्त विरोधाभाषी शब्द है। यह 20वीं शताब्दी में विभाजन का सबसे बड़ा कारण बना और इसी की वजह से सन् 1947 में भारत का विभाजन हुआ। विपिन चन्द्र (1993) का कहना है कि सम्प्रदायवाद एक ऐसा मत या विचारधारा है, जो एक के बाद एक चरण में तीन मूलभूत तत्वों या सिद्धान्तों पर कार्य करता है।

1.पहले चरण में यह इस दृष्टिकोण का प्रचार करता है कि एक ही धर्म के अनुयायी एक समान धर्मनिरपेक्ष हित रखते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी भी एक धार्मिक समुदाय के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक जैसे होते हैं। उदाहरण के लिए एक हिन्दू जमींदार और एक हिन्दू भूमिहीन श्रमिक दोनों के हित एक जैसे होते हैं, क्योंकि दोनों हिन्दू (अथवा मुस्लिम या सिख, जैसा भी मामला हो) हैं। यह इस विचारधारा पर जोर देता है कि सामाजिक-राजनीतिक समुदाय धर्म पर आधारित होते हैं।

2.साम्प्रदायिक विचारधारा का दूसरा चरण इस विचार पर आधारित होता है कि एक ही धार्मिक समुदाय के अनुयायी के धर्मनिरपेक्ष हित यानि सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित दूसरे धर्म के अनुयायियों के हितों से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि मुस्लिमों के हित हिन्दुओं के हितों के समान और हिन्दुओं के हित मुस्लिमों के हितों के समान नहीं होते हैं।

3.साम्प्रदायिकता के तीसरे और अन्तिम चरण में यह तर्क दिया जाता है कि विभिन्न धार्मिक अनुयायियों के धर्मनिरपेक्ष हित परस्पर मेल नहीं खाते हैं और विद्वेषी होते हैं। इस चरण में साम्प्रदायिकतावादियों का तर्क होता है कि हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के साथ सद्भावपूर्ण तरीके से मिल-जुल कर नहीं रह सकते हैं, क्योंकि उनके साम्प्रदायिक हित एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। इस प्रकार धर्म को किसी समुदाय विशेष या धार्मिक समूह के धर्म निरपेक्ष हितों को तय करने का कारक माना जाता है। धर्म व्यक्ति विशेष की पहचान में निर्धारक कारक बन जाता है। इस तथ्य को नकारा

जाता है कि इस दुनिया में मनुष्य की अनेक पहचान होती हैं और उसका धर्म उसकी पहचान तथा धर्म निरपेक्ष हितों का मानक (बैंचमार्क) बन जाता है। किसी मनुष्य की उसकी जाति, क्षेत्र, देश, महाद्वीप आदि के रूप में भी पहचान हो सकती है। उदाहरण के लिए, एक राजस्थानी ब्राह्मण राजस्थान में ब्राह्मण कहा जायेगा, भारत के किसी अन्य राज्य में राजस्थानी कहा जाएगा, किसी अन्य एशियाई देश में भारतीय और यूरोप या अमरीका में एशियाई कहा जाएगा। इस तरह स्थान बदलने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष की पहचान बदलती रहती है।

हम कह सकते हैं कि ये तीन चरण हितों की गलत अवधारणा पर आधारित थे और वास्तविकता से कोसों दूर थे। साम्प्रदायिक चश्मे से चीजों को देखने से धार्मिक पहचान अन्य प्रकार की पहचानों पर हावी हो जाती है और यहीं से साम्प्रदायिकता की शुरूआत होती है।

भारत में सम्प्रदायवाद धार्मिक नहीं बल्कि राजनैतिक मुद्दा था, औपनिवेशिक ताकतों के बल पर साम्प्रदायिकता का शैतान टिका हुआ था। ''बाँटो और राज करो'' की ब्रिटिश नीति की आधारशिला पर साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त को प्राधान्यता मिली। सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने महसूस किया कि अपने लक्ष्यों को हासिल करने में उन्हें सबसे बड़ा खतरा हिन्दू-मुस्लिम एकता से होगा। इसलिए सन् 1857 के विद्रोह के बाद के शुरूआती वर्षों में उन्होंने हिन्दुओं को संरक्षण दिया और उसके बाद उन्होंने मुस्लिमों को संरक्षण देना शुरू कर दिया, ताकि दोनों समुदायों के बीच दरार पैदा की जा सके। इसके बाद ''बाँटो और राज करो'' की साम्राज्यवादी नीति को कारगर तरीके से लागू किया गया ताकि सन् 1857 जैसे विशाल विद्रोह की पुनरावृत्ति न हो।

विपिन चन्द्र (1993) का तर्क है कि साम्प्रदायिक विचारधारा पहले चरण से शुरू होती है। इस चरण में लोगों ने स्वयं को राष्ट्रवादी हिन्दू या राष्ट्रवादी मुस्लिम आदि के रूप में, न कि केवल राष्ट्रवादी के रूप में अभिव्यक्त किया। हालांकि उन्होंने साम्प्रदायिकता के दूसरे और तीसरे चरण का बहिष्कार किया। दूसरे चरण अथवा मध्यमार्गी या उदार सम्प्रदायवाद में, हालांकि व्यक्ति साम्प्रदायिकता में विश्वास रखता था और इसका पालन करता था, लेकिन वह अब भी कुछेक लोकतांत्रिक, राष्ट्रवादी, उदार एवं मानवतावादी मूल्यों का समर्थन करता था। हालांकि वह धर्म आधारित समुदायों में मतभेदों को महत्व देता था, लेकिन सार्वजनिक तौर पर वह यह मानता और स्वीकार करता था कि इन अलग-अलग साम्प्रदायिक हितों को राष्ट्र के सर्वांगीण हितों तथा भारत को एक राष्ट्र के रूप में निर्मित करने के हितों के अन्तर्गत धीरे-धीरे समायोजित किया जा सकता है। सन् 1937 से पहले अधिकांश सम्प्रदायवादी मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, सन् 1925 के बाद अली ब्रदर्स, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना, लाला लाजपत राय और सन् 1922 के बाद एन.सी. केलकर, इन सभी ने उदारवादी साम्प्रदायिक ढाँचे के अन्तर्गत कार्य किया।

तीसरे चरण में भय और नफरत पर आधारित चरम साम्प्रदायिकता नजर आती है, जो अपने राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ आक्रामक और वैमनस्य की भाषा का उपयोग करती है। इस चरण में साम्प्रदायिकतावादियों ने उद्घोषित किया कि हिन्दू-हिन्दू संस्कृति, पहचान, धर्म, सम्मान और मुस्लिम-मुस्लिम संस्कृति, इस्लाम और पहचान को एक दूसरे के धर्म के द्वारा समूल नष्ट किये जाने का खतरा है। इसके अलावा साम्प्रदायिकतावादियों का तर्क था कि हिन्दू और मुस्लिम दो राष्ट्र (दो राष्ट्र का सिद्धान्त) हैं और इनके विराधाभासों को नहीं सुलझाया जा सकता तथा दो अलग-अलग

राष्ट्रों के रूप में रहना ही इनकी नियति है। सन् 1937 के बाद हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग दोनों ने इस नजरिये पर विश्वास व्यक्त किया।

साम्प्रदायिकता और इसके उपस्कर (उपकरण)

एक विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता ''साम्प्रदायिक भावना'' और तनाव को जन्म देती है और जब इसमें साम्प्रदायिक राजनीति मिला दी जाती है, तो इसका परिणाम होता है - साम्प्रदायिक हिंसा। अतः हम देखते हैं कि साम्प्रदायिकता से फायदा उठाने वाले लोग, अपना हित साधने वाले लोग, अपेक्षित राजनीतिक लक्ष्य हासिल करने की मंशा रखने वाले लोग इसे हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं।

सम्प्रदायवाद उन लोगों के लिए भी एक जीवन ''मूल्य'' की तरह था, जो धर्म पर विश्वास रखते थे तथा जिन्होंने धर्म के आदर्शों को अपने जीवन में शामिल और आत्मसात कर लिया था। साम्प्रदायिक विचारधारा और प्रचार से ऐसे लोगों को कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि साम्प्रदायिकता के एजेंटों ने इन्हें अपनी कठपुतली बना कर अपने हितों के लिए इनका इस्तेमाल किया।

सभी समुदायों के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक समान थे। वे अपने धर्म के सह-अनुयायियों से भाषा, सामाजिक स्तर, वर्ग, क्षेत्र, सामाजिक सांस्कृतिक प्रथाओं, भोजन और पहनावे के आधार पर अलग थे और इन पहलुओं के नजरिये से अन्य धर्मों के अनुयायियों से सम्बद्ध थे। एक ऊँची जाति के हिन्दू और उच्च वर्ग के मुस्लिम में ज्यादा समानता थी। यहाँ तक कि सांस्कृतिक तौर पर भी समानता थी। साथ ही पंजाबी हिन्दू, सांस्कृतिक रूप से गुजराती हिन्दू की तुलना में पंजाबी मुस्लिम के ज्यादा नज़दीक था। इसी प्रकार गुजराती मुस्लिम, पंजाबी मुस्लिम की तुलना में गुजराती मुस्लिम के ज्यादा नज़दीक था।

साम्प्रदायिकता के बारे में मिथक

साम्प्रदायिकता एक विरोधाभाषी शब्द है, इसलिए इसके साथ अनेक मिथक जुड़े हैं -

1.साम्प्रदायिकता धार्मिक मुद्दा नहीं है। साम्प्रदायिकता धार्मिक मतभेदों का परिणाम है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक मतभेद मध्यकाल के दौरान भी मौजूद थे, लेकिन औपनिवेशिक काल में ही इन पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ा।

2.साम्प्रदायिकता भारतीय समाज में अन्तर्निहित नहीं थी। आधुनिक काल में कुछ विशेष परिस्थितियों और ताकतों के प्रसार (परम्यूटेशन) ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। यह औपनिवेशिक शासन के दौरान राजनीतिक और आर्थिक घटनाक्रमों का फायदा उठाने का प्रयास करने वाली साम्राज्यवादी सोच और विचारधारा का परिणाम है। दूसरे शब्दों में, यह अनेक कारकों के समूहीकरण (मिल कर एक होने) का परिणाम है। अतः साम्प्रदायिकता का प्रादुर्भाव और पोषण समकालीन सामाजार्थिक ढांचे ने किया।

साम्प्रदायिकता और धार्मिक असहिष्णुता से निपटना

वर्तमान समय में एक महत्वपूर्ण कार्य साम्प्रदायिकता की अमिट बुराई से निपटना है। इस मुद्दे से तत्काल ऐसे तरीके से निपटने की आवश्यकता है ताकि इससे भारतीय समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को नुकसान न पहुँचे। प्रत्येक भारतीय की व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से यह जिम्मेदारी है कि वह अपने साथी भारतीयों का विश्वास करे और किसी भी आधार पर भेदभाव पैदा न करे। राज्य का भी यह दायित्व है कि वह ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों का अनुकरण करे जो देश में साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देती हैं। साथ ही मीडिया, प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी समाज में साम्प्रदायिक सद्भाव का माहौल पैदा करने में अपनी भूमिका निभाए और सहयोग दे। वर्तमान काल में सोशल मीडिया की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि बहुत से संदेश इसी मंच पर परिचालित (सर्क्यूलेट) होते हैं और यह मीडिया समाज में सभी स्तरों पर समरसता (सद्भाव) लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अभ्यास: सही अथवा गलत

1.आधुनिक काल में कुछ विशिष्ट परिस्थितियों और ताकतों के संयोजन की वजह से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ।

2.साम्प्रदायिकता एक धार्मिक मुद्दा है।

3.''बाँटो और राज करो'' की ब्रिटिश नीति साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त के लिए प्रासंगिक नहीं थी।

4.सभी धार्मिक समुदायों के सामाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित अलग-अलग होते है।

उत्तर: 1. सही 2. गलत 3. गलत 4. गलत

12.11 नशे की लत

नशीले पदार्थों का सेवन समकालीन समाज की सबसे गम्भीर चुनौती है। युवा राष्ट्र की जीवन रेखा होते हैं। यदि वे ऐसे कृत्यों में लिप्त होंगे, तो इससे न केवल देश का नैतिक ताना-बाना कमजोर होगा, बल्कि युवाओं की पीढ़ी दर पीढ़ियाँ हमेशा के लिए बर्बाद हो जायेंगी। इसका समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। यह असामाजिक व्यवहार, भ्रष्टाचार, चोरी, हिंसा, नैतिक उदासीनता और आपराधिक घटनाओं में वृद्धि का कारण बन सकता है। हाल ही में उड़ता पंजाब नामक फिल्म (2016) में इस मुद्दे को प्रभावशाली तरीके से दर्शाया गया था। देश के युवाओं को विभिन्न मीडिया माध्यमों के जरिये नशे की लत के दुष्परिणामों के बारे में जागरूक बनाया जा सकता है। नशे की लत से लोगों को बचाने के लिए देश के कानूनों को सख्त बनाया जाना चाहिये। साथ ही इन कानूनों को कारगरता से लागू भी किया जाना चाहिये ताकि वे समाज को अपना सकारात्मक योगदान दे सकें।

12.12 उपसंहार

आजादी के इतने दशकों के बाद भी गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, सुरक्षित एवं स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता, अरोग्यता अथवा समुचित स्वास्थ्य सुविधायें लोगों के लिए बुनियादी मुद्दा बनी हुई हैं। जाति के मुद्दे को वोट-बैंक की राजनीति से जोड़ना आम हो गया है। 21वीं सदी के स्वतंत्र भारत में दलितों पर अत्याचार चिंता का विषय बना हुआ है। देश में आतंकवाद के रूप में हिंसा का नया चेहरा गम्भीरतम हो गया है। समकालीन भारत में आतंकी हमलों और आतंकी कृत्यों में जनहानि चिन्ता का विषय है। पर्यावरण क्षरण तथा जलवायु परिवर्तन अथवा ग्लोबल वॉर्मिंग का मुद्दा मानव सहित सभी प्राणियों और वनस्पतियों के अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है। दहेज और घरेलू हिंसा की खबरें लगातार आ रही हैं, इसलिए आज भी समाज में महिलाओं की स्थिति पर प्रश्नवाचक चिन्ह मौजूद हैं। कन्या भ्रूण

हत्या भारतीय समाज के लिए एक दूसरा बड़ा खतरा है। बलात्कार के अनेक मामले, पीड़िताओं के साथ अमानवीय कृत्य करने वाले अपराधियों की ''बीमार मानसिक सोच'' की ओर इशारा कर रहे हैं। दिल्ली में 2012 में 'निर्भया केस' नाम से प्रसिद्ध जघन्य कृत्य से पैदा हुई जागरूकता फिर कम होती जा रही है, क्योंकि आज भी भारत में ऐसी ही प्रकृति के अनेक अपराधों की खबरें अब भी प्राप्त हो रही हैं। लोगों की मानसिक सोच बदलने की आवश्यकता है।

लेकिन साथ ही भारत ने कई मामलों में अच्छी प्रगति की है। देश ने 'हरित क्रान्ति' के द्वारा खाद्यान्न में आत्म-निर्भरता हासिल की है। हालांकि इससे कीटनाशकों तथा पानी के जरूरत से ज्यादा उपभोग और मिट्टी में क्षार तत्व की वृद्धि यानि उर्वरकता कम होना, स्वास्थ्य समस्यायें, भू-जल स्तर में गिरावट तथा अमीर और गरीब किसानों के बीच असमानता में वृद्धि के रूप में इसके पर्यावरणीय नुकसान भी नजर आए हैं। इसके अलावा चुनावों में लोगों की सक्रिय भागीदारी से वे अपनी सरकार चुनने में और ज्यादा सक्षम हुए हैं। पिछले दशक में आर्थिक वृद्धि दर भी अच्छी रही है, लेकिन इस वृद्धि दर को साक्षरता, स्वास्थ्य और आरोग्यता से सम्बन्धित मानव विकास सूचकांक में वृद्धि के साथ संतुलित करना होगा। इसके अलावा, पर्यावरण क्षरण को कम करने के लिए पर्यावरण के बारे में जागरूकता पैदा की गई है। भविष्य को ध्यान में रखते हुए विकास केन्द्रित स्थायी विकास के मॉडल का अनुकरण किया जाना चाहिये। व्यवस्थित जागरूकता अभियानों के द्वारा लोगों को नशे की लत के दुष्परिणामों से अवगत कराया गया है।

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अलगाववाद, आतंकवाद तथा कोई भी विभाजनकारी प्रवृत्ति लोकतांत्रिक परम्पराओं के लिए खतरा है और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए इन पर लगाम लगाना जरूरी है। सरकारी, गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) तथा नागरिकों को चाहिये कि वे देश के समग्र विकास के लिए मिलकर काम करें। यह बदलाव शांतिपूर्ण, लोकतांत्रिक और विधियुक्त (कानूनी) तरीकों से लाया जाना चाहिये।

12.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.चन्द्र बिपन एट. अल (1999) इण्डिया आफ्टर इण्डीपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली।
2.ज्योति बसु, इण्डिया एण्ड दी चैलेन्जेज़ ऑफ ट्वेन्टी फर्स्ट सैन्चुरी, 30वाँ जवाहर लाल नेहरू मैमोरियल लैक्चर, 13 नवम्बर, 1998, नई दिल्ली, भारत अखबार, दिल्ली मैगज़ीन।

12.14 अनुशंसित साहित्य

1.इण्डिया आफ्टर गाँधी: दी हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्डर्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी, (2008), हार्पर कॉलिन्स, न्यूयॉर्क।
2.जोशी, ललित मोहन एड0 (2004), साउथ एशियन सिनेमा, इश्यू 5-6, लन्दन।

12.15 पाठ्यान्त प्रश्न

1.भारतीय समाज में पर्यावरणीय चुनौतियों पर एक निबन्ध लिखें।
2.स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति पर चर्चा करें।